The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

स्मार्ट सेल फोन का भारतीय समाज पर प्रभाव : एक समाजवैज्ञानिक विश्लेषण

प्रो. ब्रजेश कुमार सिंह
समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांश–

पिछले दशक में स्मार्ट फोन का उपयोग बहुत तेजी से बढ़ा है, खासकर युवाओं में। स्मार्टफोन फोन के आ जाने से मनुष्य का हर कार्य आसान हो गया है एवं समय से पूर्व होने लगा है। इस वैज्ञानिक आविष्कार ने समाज का रूप ही परिवर्तित कर दिया है, इसने देश–विदेश की दूरियों को ही मिटा दिया है। आमने–सामने का सम्मुख वार्तालाप के अवसर भी इसके माध्यम से मिलने लगे हैं। मानवीय सम्बन्धों में नजदीकियां एवं माधुर्यता का पर्याय इसे माना जाने लगा है। इसकी वजह से विभिन्न सेवाओं को समयानुकूल अवसर मिलने लगे हैं, विभिन्न कठिनाइयों का निराकरण समय रहते होने लगा है। सेलफोन ने समाज को आर्थिक एवं व्यावसायिक रूप से भी सक्षम बनाने में पूरा सहयोग दिया है। समाज का हर वर्ग एवं हर आयु के लोग इसे अपनाने लगे हैं। सेलफोन सभ्यता एवं संस्कृति का दूसरा रूप लगने लगा है। सेलफोन समाज पर नकारात्मक प्रभाव भी डाल रहा है। हर आयु वर्ग के लोग सेलफोन को अपनी प्रतिष्ठा का प्रतीक समझने लगे हैं। पीढ़ियों में दूरी उत्पन्न करने वाला भी सेलफोन माना जाने लगा है। सामाजिक अपराध में वृद्धि का एक बड़ा कारक भी सेलफोन बन गया है। व्यक्ति के नैतिक व चारित्रिक पतन का कारण भी सेलफोन बनने लगा है। सेलफोन का स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार सेलफोन के सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव समाज पर देखने को मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से सेलफोन का भारतीय समाज पर पड़ने वाले सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभावों को देखने का प्रयास किया गया है, प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।

मुख्य शब्द– स्मार्टफोन, इंटरनेट, वर्ल्डवाइडबेब, इंटरनेट डाटा, प्रभाव

प्रस्तावना

हमारे दैनिक जीवन में सूचनाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। सूचनाओं का एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए नित नये उपयोग एवं प्रयत्न होते रहे हैं। डाक सेवा, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, राडार एवं उपग्रह आदि संचार प्रणाली इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम है।[1]

वर्तमान में विज्ञान की सबसे बड़ी देन सेलफोन है, यह बिल्कुल उसी प्रकार है जैसे दो दशकों पहले टी.वी. की स्थिति थी। संचार क्रांति के प्रत्येक चरण के फलस्वरूप समाज में परिवर्तनों की नयी श्रृंखला का आरंभ होता है जो समाज के प्रत्येक अंग पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि संचार क्रांति के ये चरण नयी सामाजिक स्थितियों का निर्माण करते हैं और इस प्रकार भविष्य में समाज का निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

टेलीफोन से स्मार्ट मोबाइल तक का सफर

आज भले ही मोबाइल फोन दूर संचार का सबसे आधुनिक साधन बन गया है लेकिन मोबाइल फोन की शुरूआत भी टेलीफोन के एडवांस रूप वायरलेस टेलीफोन से ही हुई है। सर्वप्रथम ग्राहमवेल ने 1876 ई. में टेलीफोन का आविष्कार किया जो एक वायरलेस से संबंधित था। टेलीफोन के द्वारा व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर बसे अपने परिजनों से बात कर सकता है, मगर यह सेवा किसी स्थान विशेष तक ही

सीमित होता था, क्योंकि यह एक वायरलेस के माध्यम से कार्य करता था। समय के साथ आवश्यकता ऐसे यंत्र की हुई जो स्थान विशेष के दायरे से हटकर कार्य करे तब बेल लेबोरेटरीज के इंजीनियरों द्वारा सेलफोन बेस स्टेशनों के लिए 1947 में सेल का आविष्कार किया गया और 1960 के दशक में बेल लेबोरेटरीज ने इसे आगे विकसित किया। 10 जून 1969 में पहला वायरलेस फोन अमेरिका में जारी किया गया। मार्टिन कूपर को पहला सेलफोन का आविष्कारक माना जाता है। 3 अप्रैल 1973 को उन्होंने डॉ. थोएल एस एंगेल को एक हाथ के सेलफोन पर अपना पहला काल किया। तब से लेकर 90 के दशक तक सेलफोन आवश्यक होने पर ही उपयोग किया जाता रहा। 1990 के दशक से 2000 तक सेलफोन केवल उच्च वर्ग के हाथों तक सीमित रहा, 2001 से लेकर आज तक सेलफोन का उपयोग गुणात्मक रूप से बढ़ रहा है। आज भारत में लगभग 75 करोड़ सेलफोन उपभोक्ता हैं।

एक आंकलन के अनुसार भारत में हर घंटे 10 हजार सेलफोन बिक रहे हैं। पिछले ही दिनों सेलफोन उपभोक्ता की संख्या के लिहाज से भारत ने अमेरिका को पीछे छोड़ दिया है, अब सिर्फ चीन भारत से आगे है। भारत में औसतन एक परिवार में एक से ज्यादा सेलफोन है। एक जमाना था जब सेलफोन का मतलब सिर्फ इतना था कि इससे फोन किया और सुना जा सकता था हांलाकि तब भी यह एक आश्चर्य की तरह था, क्योंकि इसे हाथ में लेकर कहीं भी आ–जा सकते थे। लेकिन अब सेलफोन का उपयोग बदल गया है। अब सिर्फ फोन करने या सुनने का साधन नहीं बल्कि यह एक साथ कई इलेक्ट्रानिक्स गैजेट्स का काम करता है और इसे स्मार्टफोन के नाम से जानते हैं।

स्मार्टफोन की विशेषताएं

वर्तमान युग स्मार्टफोन क्रांति का युग है। सेलफोन में सूचना का आदान–प्रदान ध्वनि के रूप में ही होता है। सेलफोन से व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर बसे अपने परिजनों व मित्रों से बातचीत कर सकता है। स्मार्ट फोन उस मोबाइल फोन को कहते हैं जिनकी कम्प्यूटिंग तथा संयोजन क्षमता आधारभूत फोन की तुलना में अधिक उन्नत होती है। इसमें सेलफोन की विशेषताओं के अलावा कई भौतिक विशेषताएं हैं जो उन्हें नियमित मोबाइल फोन से अलग करती है। बल्कि एक सीमा तक इसने व्यक्तिगत कम्प्यूटर, लैपटॉप और अन्य उपकरणों को प्रतिस्थापित किया है।[2] आज के स्मार्टफोन की मुख्य विशेषताएं हैं– टच स्क्रीन, उपयोगी ऐप जैसे पीडीएफ, मीडिया प्लेयर, डिजिटल कैमरा, वीडियो प्लेयर, जीपीएस फोन आदि के गुण। इन सभी विशेषताओं के अलावा स्मार्ट फोन की लोकप्रियता का कारण सेलफोन द्वारा ऐसी कई चीजें करना है जो एक कम्प्यूटर कर सकता है जैसे– ईमेल भेजना, तस्वीरें लेना, वीडियो गेम, फिल्म और संगीत, नियुक्तियों और सम्पर्कों का ट्रैक, इंटरनेट सर्फ, साथ ही साथ मित्रों से चैट करना, मनोरंजन, वेब ब्राउजिंग, बैंकिंग, शॉपिंग, वाई–फाई, अन्य पार्टियों के मोबाइल अनुप्रयोग ऐप, गति–संसूचक, गूगलमैप, मोबाइल पेमेण्ट, टिकट बुकिंग आदि सुविधाएं भी उपलब्ध है। इसने हमारे जीवन शैली को नाटकीय रूप से परिवर्तित किया है और ऐसे विभन्न अनुप्रयोगों को विकसित किया है जो कभी हमारी कल्पना से परे थे। जैसे ध्वनि खोज, मीलों दूर बैठे मित्रों और प्रियजनों के साथ निःशुल्क वीडियो या वॉयस कॉल, सोशल मीडिया एप्लिकेशन का उपयोग आदि।[3]

भारत में मोबाइल का आगमन

भारत में मोबाइल का आगमन दुनिया के पहले मोबाइल बनने के 12 साल बाद 31 जुलाई 1995 को हुआ। दूर संचार सेवाओं के विस्तार के लिए भारत में 20 फरवरी 1997 में ट्राई की स्थापना की गयी। भारत में मोबाइल सेवा प्रारंभ करने का प्रयास वर्ष 1994 के मध्य में ही भारत के उद्यमी भूपेन्द्र कुमार मोदी द्वारा किया जाने लगा था। उन्हीं की कम्पनी ने देश में पहली बार मोबाइल सेवा का प्रारंभ किया तथा पहला

मोबाइल कॉल इसी कम्पनी के नेटवर्क (जिसे मोबाइल नेट कहा जाता है) पर कोलकाता से दिल्ली किया गया था। इसी कम्पनी को आगे चलकर Spice moblies के नाम से जाना गया।

वर्तमान में भारत तथा विश्व में मोबाइल फोन यूजर्स

इण्टरनेशनल टेली कम्पयूनिकेशन यूनियन के मुताबिक दुनिया में मोबाइल फोन की संख्या इंसानों की आबादी से भी ज्यादा है, 2022 तक दुनियाँ में इंसानों की आबादी 7.95 अरब थी, जबकि मोबाइल फोन की संख्या 8.59 अरब। साल 1973 में मोटोरोला कम्पनी के कर्मचारी मार्टिन कूपर ने पहला मोबाइल फोन बनाया था, उस समय कूपर ने शायद सोचा भी नहीं होगा कि भविष्य में ये डिवाइस इतनी विकेगी कि उसकी संख्या इंसानों की संख्या से भी कहीं ज्यादा हो जायेगी।

आई.टी.यू. के मुताबिक दुनिया में हर 100 लोगों पर 110 मोबाइल फोन है, इसका मतलब हुआ कि कई लोग ऐसे हैं जिनके पास एक से ज्यादा मोबाइल फोन है।[4]

स्मार्टफोन पहुंच के आधार पर देशों की सूची

क्रम	देश	कुल जनसंख्या	स्मार्टफोन उपयोगकर्ता	स्मार्टफोन की पैठ
1	चीन	1.43 B	974.69M	68.4%
2	भारत	1.42 B	659.00M	46.5%
3	अमेरिका	338.29M	276.1M	81.6%
4	इंडोनेशिया	275.50 M	187.70M	68.1%
5	ब्राजील	215.31 M	143.43M	66.6%
6	रूस	144.71 M	106.44M	73.6%
7	जापान	123.45 M	97.44M	78.6%
8	नाइजीरिया	218.54 M	83.34M	38.1%
9	मैक्सिको	127.50 M	78.37M	61.5%
10	पाकिस्तान	275.82 M	72.99M	31%

स्रोत– ग्लोबल मोबाइल मार्केट रिपोर्ट, 2022

टेलीकॉम रेगुलेटरी अथारिटी ऑफ इण्डिया (ट्राई) द्वारा वर्ष 2018 में जारी आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में भारत में लगभग 1 अरब 5 करोड़ मोबाइल फोन यूजर्स है जिसमें से लगभग 38 करोड़ 69 लाख 39 हजार स्मार्टफोन यूजर्स हैं। इसी वर्ष 2018 तक भारत विश्व में निजी क्षेत्र का सबसे दूसरा ज्यादा मोबाइल फोन प्रयोग करने वाला तथा उत्पादन करने वाला देश बन गया। वर्ष 2014 में 30 लाख मोबाइल फोन भारत में बनाये गये जो वर्ष 2017 में बढ़कर 1.1 करोड़ तक पहुँच गया। वर्तमान में चीन मोबाइल प्रयोग तथा उत्पादन करने वाला दुनिया का सबसे बड़ा देश है।

डेलॉयर की रिपोर्ट के अनुसार भारत में वर्ष 2021 तक मोबाइल फोन के 1.2 अरब उपयोगकर्ता थे, इसमें से 75 करोड़ स्मार्टफोन का इस्तेमाल करते हैं। 2026 तक स्मार्टफोन इस्तेमाल करने वालों की संख्या 1 अरब हो जायेगी।

इंटरनेट/वर्ल्ड वाइड वेब

20वीं शताब्दी में कम्प्यूटर एवं संचार तकनीक की उन्नति से इलेक्ट्रानिक सूचना स्रोत, डिजिटल अथवा इलेक्ट्रानिक ग्रंथालय, इंटरनेट या वेब का प्रादुर्भाव हुआ। इंटरनेट, कम्प्यूटर नेटवर्क के अंदर परस्पर जुड़ाव भी वैश्विक व्यवस्था है जो कि पूरे संसार के करोड़ों उपयोगकर्ताओं को सेवा प्रदान करती है।

इंटरनेट का उद्भव सन् 1960 से माना जाता है, जब अमेरिका के रक्षा विभाग ने विपरीत परिस्थितियों में भी निर्वाह कर सकने वाली कम्प्यूटर नेटवर्क वाली परियोजना अरपानेट, एडवांस रिसर्च प्रोजेक्ट एजेंसी नेटवर्क का प्रारंभ किया। सन 1970 तक कम्प्यूटर की शक्ति, गति एवं स्मरण शक्ति को बढ़ाया गया। उस समय इंटरनेट पर आनलाइन डायल पर ऑनलाइन खोज बहुत महंगी थी। वर्ड वाइड वेब के 1990 तक आगमन से पहले इंटरनेट का उपयोग बहुत सीमित था। वेब के उद्गम के साथ ही भारी संख्या में अनेक इंटरनेट सेवा प्रदाता लोगों को इंटरनेट सेवाएं प्रदान करने लगे और संसार में इंटरनेट उपयोग का विस्तार हुआ। इंटरनेट पूरे विश्व में करोड़ों लोगों को आपस में सम्पर्क करने व सूचना साझा करने की अनुमति देता है।

वर्ल्ड वाइड वेब, इंटरनेट पर वेबसाइट का समूह है जो आपकी इच्छानुसार किसी भी प्रकरण पर सूचना प्रदान करता है। प्रत्येक प्रकरण पर कोइ न कोई वेबसाइट नियमित रूप से वेब पर उपलब्ध रहती है। वेब आपको दुनिया के किसी भी भाग में, किसी भी आयोजित कार्यक्रम के संबंध में नवीनतम समाचार देते हैं। प्रायः ये अन्य माध्यमों पर प्रसारित होने से पूर्व ही वेब पर उपलब्ध हो जाते हैं। वेब, संस्थाओं, व्यापारिक घरानों, शैक्षिक संस्थानों, शासकीय विभाग एवं व्यक्ति के लिए सूचना के स्रोत है। देश और विदेश के अनेक शिक्षण संस्थान अपनी गतिविधियां, पठ्यक्रम, शुल्क एवं अन्य विवरण इस माध्यम पर उपलब्ध कराते हैं। इस माध्यम पर व्यक्ति विचार विनिमय, सूचना साझा करना, सामाजिक सहायता प्रदान करना व व्यापार से सम्बन्धित कार्यक्रम संप्रेक्षित कर सकते हैं। आप वेब का प्रयोग करके खरीददारी, बैंक में खाता खोलने, व्यापार चलाने, हवाई जहाज व रेल टिकट की खरीद, सिनेमा टिकट, खेल–खेलना, पिक्चर देखना, संगीत सुनना व कई अन्य कार्य कर सकते हैं।

भारत में मिलता है दुनिया का सबसे सस्ता इंटरनेट डाटा

दुनिया में सबसे सस्ता इंटरनेट डाटा भारत में है, जबकि सबसे महंगा डेटा दक्षिण अटलांटिक महासागर में बसे अफ्रीकी देश सेन्टहलेना में है। भारत में 1 जीबी डाटा के लिए औसतन 7 रुपये चुकाने पड़ते हैं जबकि सेन्टहेलना में यह खर्च लगभग 3852 रुपये है। पाकिस्तान में इंटरनेट डाटा भारत से सात गुना महंगा है। यहां 1 जीबी के लिए औसतन 50.37 रुपये खर्च करने पड़ते हैं।

इंटरनेट खर्च का डाटा प्रति जीबी

क्रम	देश	कीमत (व्यय) रूपये में
1.	भारत	7.00
2.	श्रीलंका	37.23
3.	चीन	44.53
4.	पाकिस्तान	50.37
5.	बांग्लादेश	51.00
6.	नेपाल	62.78
7.	भूटान	84.68

स्रोत : दैनिक पत्रिका समाचार पत्र रीवा, दिनांक 4 मार्च 2021

डिजिटल इकोनॉमी की भागीदारी बढ़ी

भारत दुनिया में डिजिटल अनुकूलन के लिहाज से दूसरे क्रम में है। आई.टी. मंत्रालय के अनुसार डिजिटल इकोनॉमी 2018 में 200 अरब डालर की रही जो देश की जीडीपी का करीब 8 प्रतिशत होती है। 2025 तक जीडीपी में हिस्सेदारी बढ़कर 18 से 23 प्रतिशत हो जाने की संभावना है।

कोरोना काल के दौरान स्मार्ट फोन उपभोक्ताओं की संख्या में बढ़ोत्तरी

टेलीकॉम रेगुलेटरी अथॉरिटी आफ इंडिया (ट्राई) के आंकड़ों के मुताबिक भारत में मोबाइल उपभोक्ताओं की संख्या 1.2 अरब के करीब है, जिनमें से स्मार्ट फोन उपभोक्ताओं की संख्या 75 करोड़ के करीब है। रिपोर्ट में कहा गया है कि 2018 में लगभग 36 प्रतिशत परिवारों के पास स्मार्ट फोन था, जो 2022 में बढ़कर 74.8 प्रतिशत हो गया। सर्वेक्षण के अनुसार स्मार्ट फोन के साथ इंटरनेट कनेक्टीविटि वाले परिवारों का प्रतिशत लगभग 88 प्रतिशत है।[5]

नवीनतम वार्षिक शिक्षा सर्वेक्षण रिपोर्ट (एएसईआर) के अनुसार लाकडाउन के दौरान ग्रामीण भारत में स्मार्ट फोन की संख्या दो गुनी से अधिक बढ़ गई। मोबाइल उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि दर का सबसे बड़ा कारण बच्चों के स्कूल बन्द होने और उनकी आनलाइन कक्षाओं के चलते बढ़ी है। क्योंकि हर व्यक्ति लैपटॉप व ब्राडबैंड कनेक्शन का खर्च नहीं उठा सकता था इसलिए एंड्रायड फोन खरीदकर उसमें सिम डालकर बच्चे कक्षाओं से जुड़कर पठन–पाठन का कार्य करने लगे थे। शहरी क्षेत्र में पहले से मोबाइल हर व्यक्ति के पास था, अब ग्रामीण क्षेत्रों में जिनके पास मोबाइल नहीं थे वे भी खरीद रहे हैं।

स्मार्टफोन का भारतीय समाज पर सकारात्मक प्रभाव

मोबाइल फोन के आने से जीवन शैली काफी हद तक सरल हो गयी है, लोगों का हर काम आसानी से कम समय व कम पूंजी में हो जा रहा है। जैसे बैंक के काम और एक दूसरे से जुड़े रहना और ऐसे और भी काम है। मोबाइल के महत्वपूर्ण लाभ निम्नलिखित हो सकते हैं–

मल्टी टास्किंग– मोबाइल आज सिर्फ बात करने का जरिया नहीं है, इसकी जगह स्मार्ट फोन ने ले ली है जो मनुष्य की तरह स्मार्टली काम करता है। मोबाइल न केवल समय बताता है बल्कि अलार्म के द्वारा आपको प्रत्येक आगामी इवेन्ट्स की सूचना सही समय पर दे देता है। मोबाइल के द्वारा अच्छी सी अच्छी फोटो खींच सकते हैं और उसे सेव व फारवर्ड कर सकते हैं। मोबाइल से वीडियो बना सकते हैं, मोबाइल में तरह–तरह के गेम भी होते हैं। मोबाइल के माध्यम से आप मेल चेक कर सकते हैं, इसे छोटा कम्प्यूटर कहा जाता है। एफ.एम. म्यूजिक, प्लेयर मूवी सब इसमें आसानी से चलती है।

आसान कम्युनिकेशन

बात करने के लिए आज हर कोई छोटा या बड़ा सस्ता या महंगा मोबाइल रखता है, मोबाइल को कहीं भी ले जाया जा सकता है। साथ ही किसी मुसीबत में होने प इसके द्वारा हम आसानी से किसी से कांटेक्ट कर सकते हैं, खासकर महिलाएं अपनी सुरक्षा हेतु इसका उपयोग कर सकती हैं।

टेक्नोलॉजी से जुड़ाव

मोबाइल टेक्नोलॉजी का नायाब नमूना है, जो विज्ञान का चमत्कार है। मोबाइल में इंटरनेट की सहायता से देश–दुनिया के बारे में जाना जा सकता है। सोशल मीडिया के द्वारा दूर बैठे दोस्त रिश्तेदार से जुड़ा जा सकता है, उनके बारे में हमेशा अपडेट रहती है। मोबाइल जीपीएस नेविगेशन का भी कार्य करता है, जिससे हम रास्ता पता कर सकते हैं, कहीं किसी जगह भटकने पर मोबाइल हमें सही रास्ता भी दिखा देता है। मोबाइल से विडियो कान्फ्रेसिंग भी कर सकते हैं अर्थात् आप एक दूसरे को देखकर बात कर सकते हैं, विडियो भी भेज सकते हैं।

ज्ञान बढ़ता है

पहले किसी चीज को जानने के लिए या तो हम अपने टीचर से पूछते थे, या बड़े या मां–बाप से, पहले ज्ञान किसी के द्वारा या सिर्फ किताब से मिलता था। पुस्तकालय जाकर किताब से ज्ञान लेना होता था, लेकिन अब बात अलग है। अब किसी भी बात को जानने के लिए क्या बच्चा क्या बूढ़ा सब तुरंत गूगल सर्च करते हैं। मोबाइल में इंटरनेट के द्वारा हम ज्ञान की बातें, यहां वहां की न्यूज और सब कुछ जान सकते हैं। बच्चे पुस्तक की बजाय मोबाइल खोजते हैं। किसी सब्जेक्ट में परेशानी होने पर बच्चे तुरंत अपने दास्त को फोन करके उनका जबाब पता कर लेते हैं, और लाइव चैट के द्वारा आमने–सामने बैठकर पढ़ाई भी कर लेते हैं।

स्मार्टफोन का भारतीय समाज पर नकारात्मक प्रभाव

किसी भी आविष्कार का समाज पर सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ता है। कहा जाता है कि विज्ञान एक वरदान है तो एक अभिशाप भी, जब हम विज्ञान का सही रूप में एवं सही स्थान पर उपयोग करते हैं तो यह वरदान साबित होता है, मगर जब इसका उपयोग गलत रूप में एवं गलत जगह करते हैं तब यह एक अभिशाप बन जाता है। मोबाइल के साथ भी यही लागू होता है, यहां मोबाइल के समाज पर नकारात्मक प्रभावों की चर्चा की जा रही है।

ध्यान भटकता है– मोबाइल होने से सारा ध्यान उसी पर लगा रहता है, विद्यार्थी के जीवन में तो ये सबसे अधिक दुष्प्रभाव डालता है। आजकल छोटे–छोटे बच्चे मोबाइल चला लेते हैं और दिन भर पढ़ाई का बहाना बनाकर गेम व विडियो चलाते हैं। बच्चों में इसकी बहुत गंदी आदत लग गयी है, जिससे वे पढ़ाई व दूसरी चीजों पर ध्यान ही नहीं लगा पाते हैं, बच्चे बाहर जाकर खेलने की बजाय मोबाइल में ही लगे रहते हैं। बच्चों को मोबाइल की गंदी आदत से बचाना चाहिए, उनके लिए मोबाइल चलाने का निश्चित समय तय कर देना चाहिए।

सेहत के लिए नुकसानदेह– लगातार मोबाइल चलाने से आंखों को नुकसान होता है, बच्चे एक टकटकी लगाए गेम खेलते हैं या वीडियो चलाते हैं जिससे कम उम्र में ही बच्चों की आंखे खराब होने लगती है। मोबाइल से निकलने वाली किरणों शरीर पर बुरा प्रभाव डालती है। मोबाइल के बैट्री के फटने से लोगों की जान तक चली जाती है, ऐसी खबरे आये दिन समाचार पत्रों में दिखती है।

समय का दुरूपयोग– मोबाइल को हमेशा देखना एक गंदी लत होती है, जिसको पड़ जाये तो छुड़ाना मुश्किल है। मेरे ख्याल से नशा मुक्ति केन्द्र की तरह मोबाइल मुक्ति केन्द्र भी होना चाहिए।

दिन भर मोबाइल में लगे रहने से बच्चे ढंग से पढ़ाई नहीं करते। लोग अपना काम छोड़कर मोबाइल की दुनिया में लगे रहते हैं, जिससे समय बर्बाद होता है। लोग देर रात तक मोबाइल का इस्तेमाल करते हैं जिससे अनिद्रा की शिकायत होने से शारीरिक परेशानियां बढ़ जाती है।

अपनों से दूर करता है– मोबाइल में लगे रहने से लोग अपने परिवार से दूर होते जा रहे हैं आजकल सभी की आदत होती है कि दिनभर काम करके घर लौटकर मोबाइल हाथ में लेकर बैठ जाते हैं और परिवार वालों के साथ बैठकर भी किसी और दुनिया में रहते हैं। कहते हैं मोबाइल बाहरी दुनिया से तो जोड़ता है लेकिन अपने अस–पास की दुनिया से दूर करता जा रहा है। लोग फैमिली टाइम को जरूरी नहीं समझते हैं, लेकिन ये बहुत जरूरी है।

एक्सीडेंट व अपराध होते हैं– लोग गाड़ी चलाते हुए या पैदल चलते हुए मोबाइल का प्रयोग करते रहते हैं जिससे दुर्घटना बराबर होती रहती है, आये दिन ऐसी दुर्घटना की खबर आती रहती है। गाड़ी चलाते समय मोबाइल का बिल्कुल प्रयोग नहीं करना चाहिए, इससे ध्यान भटकता है।

मोबाइल में बहुत सी अवांछित चीजें होती हैं, जिन्हें बच्चों को नहीं देखना चाहिए। आजकल कम उम्र में ही बच्चे गंदे–गंदे मैसेज, विडियो देखते हैं और दोस्तों को भी भेजते हैं, जिससे बच्चे समय से पहले ही बिगड़ने लगते हैं। कुछ बच्चे तो अपराध व आत्महत्या के गुर भी मोबाइल से ही सीख लेते हैं और बड़े होने पर अपराधी हो जाते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं। आजकल अकाउण्ट हैकर मोबाइल हैक करके लोगों का पैसा निकाल लेते हैं इससे भी सभी लोगों को बचना चाहिए।

कुछ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय शोध के परिणाम

गोयल, सुब्रमन्यम एवं कारथ[6] द्वारा भारतीय किशोरों में इंटरनेट की लत और मनोचिकित्सा के साथ इसके जुड़ाव के प्रसार पर अध्ययन के अनुसार, 1000 छात्रों ने इस अध्ययन में भाग लिया था। अध्ययन में महिलाओं की तुलना में पुरूषों में इंटरनेट की लत ज्यादा देखने को मिली थी।

अंशारी[7], ने अपने अध्ययन में पाया कि लड़के, लड़कियों की तुलना में उच्च तकनीकी वाले उपकरणों का अधिक उपयोग करते हैं और लड़कियों की तुलना में कम्प्यूटर, लैपटॉप और स्मार्टफोन पर अधिक समय बिताते हैं।

सिंह, रश्मि[8] ने अपने अध्ययन में पाया कि स्मार्टफोन व्यसन का व्यक्ति के स्वास्थ्य, शैक्षणिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं कैरियर के प्रति रूझान पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वहीं आधुनिकता के प्रति रूझान सम्बन्धी जीवनशैली की दशा में स्मार्टफोन व्यसन विपरीत परिणामों को परिलक्षित करता है। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि जिन उत्तरदाताओं में स्मार्टफोन व्यसन की मात्रा अधिक थी उनमें आधुनिक जीवन शैली के प्रति रूझान अधिक पाया गया।

एक अन्य वीयर[9] के अध्ययन में पाया गया कि पुरूष स्मार्टफोन का उपयोग मनोरंजन, गेम और काम के लिए करते हैं जबकि महिलाएं इनका उपयोग कैमरे व पारस्परिक बातचीत के लिए करती हैं।

सिंह[10] ने अपने अध्ययन में पाया कि स्मार्ट फोन के दुरूपयोग का उनके शैक्षणिक, कैरियर, सामाजिक और पारिवारिक जीवन शैली पर भी गंभीर प्रभाव पड़ता है। दिलचस्प बात यह है कि ये युवा थे जो उच्च आधुनिकता के साधक थे।

निष्कर्ष

आजकल स्मार्टफोन हमारे दैनिक जीवन का अंग बन गया है, इस वास्तविकता को नकारा नहीं जा सकता। शुरूआत में मोबाइल का उपयोग सिर्फ संचार के माध्यम के रूप में किया जाता था लेकिन सरकारी एजेंयिों द्वारा आज इसका उपयोग लोगों तक न सिर्फ महत्वपूर्ण जानकारियां पहुंचाने के लिए किया जा रहा है बल्कि उन्हें 'कभी भी कहीं भी' सरकारी सेवाएं उपलब्ध कराये जाने के उद्देश्य से भी किया जा रहा है। आज मोबाइल के माध्यम से लोगों को स्वास्थ्य, शिक्षा, बैंकिंग, व्यवसाय आदि से सम्बन्धित सेवाएं उपलब्ध करायी जा रही है। जाहिर तौर पर ऐसी इबारत लिखी जा रही है जिससे रोजमर्रा की जिंदगी डिजिटल क्रांति पर आश्रित हो गयी है। डिजिटलाइजेशन एक प्रकार से हमारे रोजमर्रा की जिंदगी में आने वाली उन तमाम चीजों को एकीकृत तकनीक से जोड़ने का प्रयास है जिससे सुविधा व सभी समस्याओं का समाधान एक साथ हो जाए। डिजिटलाइजेशन के इस युग में स्मार्टफोन हमारे रोजमर्रा के जीवन में कई तरीकों से हमारी मदद कर रहा है जिससे हमारी जिंदगी आसान व सुविधाजनक हो गयी है। लेकिन मोबाइल फोन एक आशीर्वाद है जब तक कि वे केवल उपयोगी उद्देश्यों के लिए प्रयोग किये जाते हैं। एक निश्चित सीमा से परे इसका उपयोग करना हानिकारक भी है। स्मार्टफोन से अत्यधिक चिपके रहने का अभिशाप इसके संयमित और सही उपयोग के साथ वरदान बन सकता है क्योंकि स्मार्टफोन में ज्ञान विज्ञान का अथाह भंडार भरा है जिसके सही उपयोग से आश्चर्यजनक उपलब्धियों को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. गोयल हेमन्त कुमार, कम्प्यूटर शिक्षा, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ, पृ. 249
2. https://hi.wikipedia.org/S/66y
3- Samala, M. and Hawi, N., To excel or not to excel : strong evidance on the adverse effect of smartphone addiction on academic performance, Computer Education, 98, (2016), p. 81-89
4- https://www.aajtak.in
5- https://navbharattimes.indiatimes.com
6- Goel, D., Subramanyam, A.K. Kamth, S., 'A Study on the prevalence of internet addiction and its association with Psychopathology in India, Adolescents : Indian Journal of Psychiatry 55(2):(2013), 6-140-3.
7- Ansari, N., et.al., Edgelo T. : 'Mobile Edge Computing for the internet of Things'. IEEE communication Magazine, 54(12), (2016). 22-29
8. सिंह रश्मि, 'भारतीय युवाओं में स्मार्टफोन व्यसन और जीवनशैली का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण,' राधाकमल मुखर्जी, चिंतन परम्परा, समाज विज्ञान विकास संस्थान, बरेली (उ.प्र.), जुलाई–दिसम्बर, 2021, पृ.सं. 115
9. Weiser, E.B., 'Sex differences in internet use patterns and internet application preferences : A two sample comparision'. Cyber Psychology and Behavior, 3(2), 2000, 167-178
10- Singh, R. 'Life style of Adolescents : An exploration; www.researchgate.net/ publication/354628072, DOI : 10.13140/RG2.2.13440.15369. (2017).

सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार की भूमिका

डॉ0 अजय कुमार सोनकर
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज आजमगढ़

सारांश

मनुष्य के अस्तित्व में आने के साथ ही उसे संचार की आवश्यकता का अनुभव हो गया होगा क्योंकि अभिव्यक्ति मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। बात–चीत या संचार प्रक्रिया अभिव्यक्ति का माध्यम है। सामाजिक प्राणी होने के नाते संचार करना मनुष्य की प्रकृति है और प्रत्येक व्यक्ति कुछ समझना तथा समझाना चाहता है। इस प्रकार संदेशों को भेजना और ग्रहण करना एक अनिवार्य प्रक्रिया हो जाती है। सामान्यतः लोग समूह संचार को जनसंचार मान लेते हैं क्योंकि जन समूह या भीड़ दोनो ही प्रकार के संचारों में होता है। वास्तव में समूह संचार एवं जनसंचार में मुख्य भेद यही है कि जब संचार की प्रक्रिया दो–तीन या उससे कुछ अधिक संख्या में उपस्थित लोगों के बीच होती है तो वह समूह–संचार कहा जाता है किन्तु जब किसी यंत्र का प्रयोग करके बहुत बड़े मिश्रित जनसमूह को सम्बोधित किया जाता है तब उसे जनसंचार प्रौद्योगिकी कहा जाता है। यह उपकरण के माध्यम से एक बहुत बड़े जनसमूह को संदेश भेजने की प्रणाली है। मुद्रण यंत्र के आविष्कार के साथ ही जनसंचार युग का प्रारम्भ हो गया था। बीसवीं सदी की शुरूआत में रेडियो, टेलीविजन, इलेक्ट्रानिक माध्यम के प्रचलन के साथ ही जनसंचार सामाजिक शक्ति के रूप में प्रकट हुआ। बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक उपग्रह प्रणाली, कम्प्यूटर, इन्टरनेट इत्यादि पर आधारित जनसंचार माध्यमों ने विश्व को सूचना क्रान्ति के युग में पहुँचा दिया। इस प्रकार समाज की दिशा और दशा दोनो को जनसंचार माध्यमों ने प्रभावित कियां इसलिए सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का अध्ययन करना आवश्यक हो गया।

शब्द कुंजीः– जनसंचार, इन्टरनेट, मुद्रण, बेवसाइट्स, संदेश।

प्रस्तावना

शाब्दिक दृष्टि से संचार के लिए अंग्रेजी मैं ''कम्यूनिकेशन'' शब्द का प्रयोग किया जाता है जो लैटिन भाषा के शब्द ''कम्यूनिश'' (Communis) से बना है जिसका अभिप्राय है, ''मन के किसी विचार या भाव को दूसरे के साथ बाँटना'' निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संचार अपने भावों एवं विचारों को दूसरों से बाँटनें की महत्वपूर्ण एवं सार्थक प्रक्रिया है।

जनसंचार की यदि हम बात करते हैं तो जनसंचार को ''मास कम्यूनिकेशन'' भी कहते हैं। इसके द्वारा अनेक वर्गो, जातियों, समुदायों और विचारधाराओं के लोगों के साथ संचार या बातचीत की जा सकती है। इसके अन्तर्गत मुद्रण माध्यम (समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पोस्टर, पैम्पलेट आदि) श्रव्य एवं दृश्य–श्रव्य माध्यम (रेडियो, ऑडियो, फिल्म, टेलीविजन, वीडियो, कैसेट, सीडी, डी0वी0डी0) तथा नव इलेक्ट्रानिक माध्यम (उपग्रह एवं कम्प्यूटर प्रणाली अर्थात् इनटरनेट से जुड़े माध्यम) आते हैं।

आजकल तेजी से प्रचलन में आई सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट्स जैसे–फेसबुक, वाट्सएप, ट्विटर आदि को भी जनसंचार के माध्यम के अन्तर्गत रखा गया है।

जनसंचार की विशेषताएंः–

(1) जनसंचार प्रक्रिया में विशाल क्षेत्र में बिखरे हुए प्रापकों तक शीघ्रता से सम्पर्क हो जाता है। बिखरे प्रापकों से तात्पर्य यह है कि प्रापक एक स्थान पर सीमित नहीं होते हैं बल्कि दूर–दूर तक फैले होते हैं। उनकी पृष्ठभूमि भी अलग–अलग होती है।

(2) जनसंचार किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति विशेष के लिए कार्य नहीं करता। जनसंचार द्वारा प्रेषित सूचना समस्त जनता के लिए सामान्य रूप से खुली होती है।

(3) जनसंचार की प्रक्रिया सुस्पष्ट होती है तथा उसका ढ़ांचा भी स्पष्ट होता है।

(4) प्रतिपुष्टि (Feedback) जनसंचार प्रक्रिया को प्रभावी बनाती है। जनसंचार माध्यम से मिली सूचनाओं पर प्रापक की क्या प्रतिक्रिया है और सूचनाओं पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है, आदि की जानकारी प्रतिपुष्टि के द्वारा हो जाती है।

(5) जनसंचार में सदेश चूँकि मिश्रित जनसमूह को लक्ष्य करके भेजा जाता है, परन्तु जनसमूह की स्थितियाँ एवं रूचियाँ विभिन्न प्रकार की होती है। अतः संचार की विष्यवस्तु का चुनाव एवं विवेचन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसी कारण जनसंचार की एक महतवपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमें व्यक्ति उस संदेश का चयन करता है, जो उसकी मान्यताओं एवं विशेषताओं के अनुकूल होता है।

(8) जनसंचार के विकास ने भौगोलिक एवं समय की सीमाओं को तोड़ दिया है। जनसंचार के कारण ही आज ग्लोबल विलेज की परिकल्पना साकार हो रही है।

जनसंचार के साधनः– जनसंचार के विभिन्न साधनों का काम देश के अलग–अलग हिस्सों में घटित होने वाली घटनाओं, राजनीतिक गतिविधियों, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, तरह–तरह की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं, विकास कार्यक्रमों और विभिन्न वर्गों की भूमिकाओं की जानकारी देने के साथ जन साधारण को मनोरंजन की सुविधाएँ देना है। विभिन्न समाचार पत्र और पत्रिकाएं लोगों में अपने कैरियर, स्वास्थ्य और सामाजिक जीवन के प्रति चेतना भी पैदा करते हैं। रेडियो और टेलीविजन द्वारा ऐसे कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं जिसमें जीवन की नीरसता को कम किया जा सके। इन सभी साधनों का वास्तविक उद्देश्य समाज में उपयोगी परिवर्तन लाना होता है।

1– परम्परागत माध्यम।

2– आधुनिक एवं विशिष्ट माध्यम।

परम्परागत माध्यमः– परम्परागत माध्यम को लोक माध्यम भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत कथाएं, वार्ता, लोकगीत, नाटक, मेले, उत्सव (रासलीला, रामलीला, कठपुतली, तमाशा, नौटंकी आदि) शिलालेख, लोककलाएं, मूर्तिकला (अजन्ता, एलोरा) वास्तुकला, ललित कलाएं, विशेष संदेश प्रेक्षक पक्षी (कबूतर) आदि आते हैं। ये माध्यम लोक संचार अथवा जनसंचार के माध्यम के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित होते रहे हैं। इन माध्यमों ने भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित कर उसे आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। समय परिवर्तन के साथ इनके स्वरूप एवं महत्व में परिवर्तन हुये हैं परन्तु इनकी प्रासंगिकता पूरी तरह समाप्त नहीं हुयी है। इसका कारण यह भी है कि इसका सीधा जुड़ाव सामान्य जनजीवन से है।

आधुनिक एवं विशिष्ट माध्यमः–

(1) **प्रिन्ट या मुद्रण माध्यमः–** इसके अन्तर्गत समाचार–पत्र, पत्रिकाएं, हैंडबिल, पैम्पलेट इत्यादि।

(2) **इलेक्ट्रानिक माध्यमः–** संचार प्रक्रिया का यह ऐसा माध्यम है, जिसमें विद्युत उपकरणों द्वारा संदेश पहुंचाया जाता है। जैसे–रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, इन्टरनेट, टेलीफोन, मोबाइल फोन, ट्रांसमीटर, फैक्स, पेजर, टेलीप्रिंटर आदि।

सामाजिक परिवर्तन एवं जनसंचारः– सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक सम्बन्धों और समाज के ढ़ाँचे में होने वाले सभी तरह के परिवर्तनों से होता है संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों को हम सांस्कृतिक परिवर्तन कहते हैं संचार के लिए हम जिन प्रौद्योगिक उपकरणों का प्रयोग करते हैं वे हमारी संस्कृति के विभिन्न पक्ष हैं। इनमें से किसी भी पक्ष में जब कोई बदलाव आता है तो इसी दशा को हम सांस्कृतिक परिवर्तन कहते हैं उदाहरण के लिए सामाजिक सीख के तरीके, लोगों के विचार और मनोवृत्तियाँ संस्कृति से सम्बन्धित व्यवहार के विभिन्न ढंग, नैतिक मूल्य, धार्मिक विश्वास, विभिन्न प्रकार की कलाएँ तार्किक ज्ञान और बहुत से प्रौद्योगिक उपकरण संस्कृति के विभिन्न पक्ष हैं। सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है।

वर्तमान समाज आकार में इतने बड़े और जटिल हैं कि सभी लोगों से प्रत्यक्ष सम्पर्क करके उनके जीवन में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। इस दशा में जनसंचार के विभिन्न साधन सभी लोगों के विचारों मनोवृत्तियों और व्यवहार करनें के तरीकों में परिवर्तन ला कर एक नये समाज का निर्माण करनें में योगदान करते हैं आज जनसंचार ने हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन पैदा किये हैं। जिसे हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

विचारों और मनोवृत्तियों में परिवर्तनः– जनसंचार माध्यमों से हमारे विचारों और मनोवृत्तियों में परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए जब हम टेलीविजन और रेडियो के विभिन्न कार्यक्रमों या फिल्मों के कथनांक द्वारा परम्परागत, अंधविश्वासों और दुर्बल वर्गों के शोषण से समबन्धित दुष्परिणामों को देखते हैं तो धीरे–धीरे हमारे विचार अपने आप बदलने लगते हैं। आज भारतीय समाज में बेकार की रूढ़ियों, कर्मकांडों और जाति व्यवस्था के असामान्यताकारी, नियमों तरह–तरह की कुप्रथाओं और समाज में स्त्रियों की परिस्थितियों के बारे में हमारे विचार बदल रहे हैं वे किसी न किसी रूप में जनसंचार के साधनों से ही प्रभावित हैं।

आधुनिकीकरण को प्रोत्साहनः– आज दुनिया के सभी समाज आर्थिक और सामाजिक विकास के द्वारा आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। जनसंचार के साधन लोगों को यह बताते हैं कि वर्तमान युग में किस तरह के व्यवहार अधिक उपयोगी हैं उदाहरण के लिए बच्चे अपने जीवन के आरम्भ से ही जब बड़े–बड़े अभिनेताओं, खिलाड़ियों और कलाकारों को कुछ विशेष ढंग से व्यवहार करते हुए देखते हैं तो वे उन व्यवहारों से सम्बन्धित मूल्यों और मनोवृत्तियों को जल्दी ही ग्रहण कर लेते हैं।

सामाजिक सामानता में वृद्धिः– समाज का विकास तभी सम्भव है जब समाज में सभी तरह के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक विभेदों को कम से कम किया जा सके। समाचार–पत्र और पत्रिकाओं के लेख एक ऐसी तर्कवृद्धि विकसित करते हैं जिनमें मानवतावाद का अधिक महत्व होता है। फिल्मों में यह दिखाया जाता है कि सामंतवादी तरीके किस तरह हमारी प्रगति में बाधक है विभिन्न वर्गों से उत्पीड़न को देखकर हम स्वयं यह समझने लगते हैं कि हमारे अपने व्यवहारों में किस तरह का परिवर्तन लाना चाहिए। उत्पादकों और मजदूरों के बीच सहयोग बढ़ाने में जनसंचार के साधन उपयोगी भूमिका निभाते हैं।

समाज सुधार में योगदानः– सामाजिक समस्याओं के समाधान में जनसंचार के साधन उपयोगी भूमिका निभाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज में तरह–तरह की कुरीतियाँ, अंधविश्वास और पारिवारिक विघटन से सम्बन्धित बहुत ही समस्यायें थी जनसंचार के साधनों के द्वारा लोगों को इन समस्याओं के

दुष्परिणामों से परिचित कराया गया, जिसके फलस्वरूप लोगों के मनोवृत्तियों में परिवर्तन होने लगा और इन समस्याओं का समाधान करना सम्भव हो सका।

नियोजित परिवर्तन का आधारः– अशिक्षा और परम्परागत जीवन के कारण समान्य लोग किसी भी परिवर्तन को संदेह की दृष्टि से देखते हें। इस दशा में जनसंचार के साधन ही व्यवहार के नये ढंगो की उपयोगिता को स्पष्ट करके विकास कार्यक्रमों में लोगों के सहभाग को बढ़ाने में मदद करते हैं। भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम और सामाजिक कानूनों को भी जनसंचार के द्वारा ही अधिक प्रभावपूर्ण बनाना सम्भव हो सका।

लोकतांत्रिक व्यवस्था का दृढ़ीकरणः– लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत बनाने में जनसंचार के साधन बहुत उपयोगी होते हैं। इन साधनों के द्वारा विभिन्न राजनीतिक दलों के व्यवहारों से इस तरह परिवर्तन लाया जाता है कि जिससे वे सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के प्रति अधिक जागरूक रह सकें। जनसंचार के साधन राजनैतिक दलों के दोषों को जनता के सामने लाकर उनके व्यवहारों पर नियंत्रण रखते हैं। साथ ही सरकार को जनता से किये गये वायदों को याद दिलाते रहते हैं। जनसंचार के द्वारा समय–समय पर विभिन्न राजनीतिक दलों की लोकप्रियता में होने वाली वृद्धि अथवा कमी को भी स्पष्ट किया जा सकता है। इससे सरकार और विपक्षी दलों के बीच शक्ति का संतुलन बना रहता है। एक लोकताांत्रिक समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लाने के लिए यह सभी दशाएँ बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। इसी कारण मीडिया को ''लोकतंत्र का पहरेदार'' (Wathdog of Democracy) भी कहा जाता है।

विश्व समुदाय का विकासः– जनसंचार के साधनों ने बाहरी दुनिया के लोगों को जानकारी देकर पूरे विश्व को एक समुदाय के रूप में विकसित किया है। जहाँ समाज में अधिकांश लोगों के सम्बन्ध अपने पड़ोस, गाँव, जाति और क्षेत्र तक ही सीमित थे वहीं अब पूरा विश्व एक समुदाय बन गया है। यही दृष्टिकोण वैश्विककरण की वर्तमान प्रक्रिया का आधार है।

मनोरंजन द्वारा परिवर्तनः– आज समाचार–पत्रों, रेडियों, टेलीविजन तथा फिल्मों को मनोरंजन के साधन के रूप में देखा जाता है। वास्तविकता यह है कि संचार के यह साधन लोगों को मनोरंजन देने के साथ ही इस तरह के कार्यक्रम प्रयोजित करते हैं जिससे समाज में परिवर्तन के लिए एक उपर्युक्त वातावरण बन सके। परिवर्तन के बिना न तो संस्कृति का विकास सम्भव होता है और न ही समाज में उपयोगी व्यवहार प्रभावपूर्ण बन पाते हैं। अब विभिन्न समाचार–पत्रों में समाचारों के अलावां मनोरंजन सम्बन्धी सामग्री भी प्रकाशित की जाने लगी है जिससे सूचना के साथ मनोरंजन का मिश्रण होने से इनमें सभी तरह के पाठकों की रूचि बनी रहे।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि संस्कृति का सम्बन्ध जिन सीखे हुये व्यवहारों से है उन सभी व्यवहारों में परिवर्तन लाने में जनसंचार के साधन एक प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं। जनसंचार के साधनों द्वारा लाया जाने वाला परिवर्तन नियोजित प्रकृति का होता है नियोजन एक उपयोगी प्रक्रिया होने के साथ ही वर्तमान समाजों की प्रमुख आवश्यकता है, यही कारण है कि सभी सरकारें जनसंचार के साधनों को व्यवस्थित रूप देकर इन्हें प्रभावपूर्ण बनाने की कोशिश करती हैं। इस प्रकार जनसंचार माध्यमों का सामाजिक परिवर्तन में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. समाजशास्त्र डॉ0 जी.के. अग्रवाल, विवेक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–354
2. भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन–एस.एल. दोषी, पीसी जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर–05 तृतीय संस्करण, वर्ष–2005, पृष्ट–98
3. कुरूक्षेत्र, 2015, ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार।
4. शर्मा, कुमुद (2003), भूमंडलीकरण और मीडिया ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली।
5. रावत, हरिकृष्ण (2006), उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
6. शर्मा, डॉ0 राकेश (2000) संचार एवं सामाजिक परिवर्तन, आदित्य पब्लिशर्स बीना (मध्य प्रदेश)

कबीर की उपस्थिति के मायने

डॉ0 सुरेन्द्र प्रताप सिंह,
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
ईमेल : surendrahindi@mgkvp.ac.in

सारांशिका

कबीर भक्तिकाल के ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। कबीर हिन्दी साहित्य में क्रान्तिकारी विचारो के संवाहक कवि के रूप में चर्चित रहे हैं। इनका पूरा काव्यलोक समाज के विघटनकारी तत्त्वों का खुलकर विरोध करता है तथा ऐसे समतामूलक समाज के निर्माण पर बल देता है जहाँ सद्भाव, प्रेम एवं भाईचारा का महत्त्व हो। उपर्युक्त विषयक शोध पत्र कबीर के क्रान्तिकारी विचारों की उपादेयता पर प्रकाश डालता है। इस शोध पत्र में समीक्षात्मक, विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध प्रविधियों का उपयोग किया गया है। इस शोध पत्र में इस बात की गहन पड़ताल की गयी है कि कबीर के विचार वर्तमान समय में कितने प्रासंगिक हैं ?

बीज शब्द : पाखण्ड, अन्ध विश्वास, ऊँच–नीच, भेदभाव, बाह्य आडम्बर, मिथ्याचार, कर्मकाण्ड, भाईचारा, प्रेम, सद्भाव इत्यादि।

हिन्दी साहित्य में कबीर का आगमन एक चमत्कारिक घटना है। मध्यकालीन भारतीय समाज विडम्बनाओं से भरा हुआ था। कबीर का समाज अनेक प्रकार के अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों से भयाक्रान्त था। समाज में ऊँच–नीच की भावना विद्यमान थी। सभी धर्म के मतावलम्बी अपने–अपने धर्म की श्रेष्ठता को लेकर मार–काट में लगे हुए थे। ऐसी स्थिति में कबीर ने अपनी प्रखर वाणी के तेज से समाज को जगाने का प्रशंसनीय कार्य किया, साथ ही अपने विचारों के प्रभाव से खोखले समाज को चेतावनी एवं जागरण का संदेश भी दिया। कबीर विलक्षण प्रतिभा लेकर उत्पन्न हुए थे, उन्होंने मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे कर निम्न श्रेणी की जनता में आत्म गौरव का भाव जगाया तथा भक्ति के ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए लोगों को प्रेरित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

कबीर भक्ति काल के ज्ञानमार्गी काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में बहुचर्चित एवं प्रसिद्ध हैं। उनका जन्म ऐसे समय में हुआ। जब समाज साम्प्रदायिकता, धार्मिक वैमनस्यता, अस्पृश्यता, अंधविश्वास एवं ऊँच–नीच की भावना से ग्रसित था। कबीर ने अपने समय में प्रचलित बुराइयों एवं कुरीतियों पर प्रहार कर समतामूलक समाज के निर्माण में सार्थक प्रयास किया।

कबीर के दार्शनिक विचारों को अग्रलिखित बिंदुओं के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। सर्वप्रथम हम कबीर के साम्प्रदायिकता सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण करेंगे। वर्तमान सामाजिक–राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में साम्प्रदायिकता एक बड़ी समस्या के रूप में विद्यमान है। भारत विभाजन से लेकर, अयोध्या में राम जन्मभूमि विवाद, गुजरात दंगे से लेकर मुजफ्फरपुर के दंगे तक साम्प्रदायिक हिंसा की एक लम्बी फेहरिस्त मौजूद है। कबीर के काव्य में इस भयावह समस्या पर भी विचार किया है। कबीर ने ईश्वर को जीवन में तथा सृष्टि के कण–कण में रमा हुआ बताकर शिव तत्त्व (ब्रह्म) का उद्घाटन किया है। इसी विश्वास को आधार बनाकर उन्होंने हिंदू–मुस्लिम दोनों ही धर्म के लोगों के कर्मकांडों एवं वाह्य आडम्बरों पर करारा प्रहार किया है। उन्होंने अपने समय की सामाजिक जड़ता को खुले नेत्रों से देखा था। वे कागज की लेखी के बजाय आंखों देखी पर विश्वास करते थे। इसी आस्था के बल पर कबीर ने मध्यकालीन समाज में

धार्मिक अत्याचारों, वाह्य आडम्बरों की जमकर खबर ली। कबीर ने अपने ढंग से कर्मकाण्डों एवं वाह्य आडम्बरों का विरोध ही नहीं किया बल्कि उन पर व्यंगों का कुठाराघात भी किया। कबीर की दृष्टि में माला पहनना, जप करना, काबे जाना आदि सभी व्यर्थ की बात है, मिथ्या है। उनका मानना है– ''पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार/ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।''[1]

कबीर हिन्दुओं की खोखली मानसिकता के प्रति व्यंग वर्षा करके ही संतुष्ट नहीं थे बल्कि वे मुसलमानों की खबर लेना भी अच्छी तरह जानते थे– ''काकर पाथर जोरि करि, मस्जिद लियो बनाय/ता चढ़ी मुल्ला बाग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।''[2] इस प्रकार कबीर ईश्वर की खोज को उसी प्रकार व्यर्थ मानते हैं जिस प्रकार मृग द्वारा कस्तूरी की खोज करना व्यर्थ माना गया है।उनका ऐसा मानना है कि ईश्वर जीव के अंतः करण में विद्यमान है और उसे जान लेना परम सत्य को जानना है – ''मोको कहाँ ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में/ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबा कैलाश में।''[3]

कबीर का समय परम्परा से गिरा हुआ तथा ढकोसलों से परिपूर्ण था। कबीर क्रांतिकारी चेतना के संवाहक पुरुष थे। तत्कालीन सामाजिक अन्याय के विरोधी और सामाजिक विकास के सिपाही के रूप में कबीर जिस गंगा जमुनी तहजीब की बात करते हैं, उसमें विवेक सम्मत जीवन दृष्टि, दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने विरोधी ताकतों को आड़े हाथों लिया– ''हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना/आपस में दोउ लड़े मरत है, मरम कोई नहीं जाना।''[4]

कबीर का पूरा जीवन और साहित्य सत्य के अन्वेषण एवं सत्य के उद्घाटन का जीवंत उदाहरण रहा है। यही कारण है कि कबीर ने दिन भर रोजा रहने वाले मुसलमानों की खबर इस प्रकार ली है– ''दिन भर रोजा रहत है, राति हनत है गाय। यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुदी खुदाय।''[5] दूसरी तरफ उन्होंने हिन्दूओं के द्वारा गाय के प्रति माता का स्वभाव रखने के बावजूद बकरी खाने की प्रवृत्ति को धिक्कारा है– ''बकरी पाती खात है, ताको काली खाल/जो नर बकरी खात है, तिनका कौन हवाल।''[6]

कबीर ने समाज में फैली धार्मिक कुरीतियों पर जमकर आलोचना किया है, उन्होंने अपने समय की सामाजिक जड़ता को खुले नेत्रों से देखा था। वह कागज की लेखी के बजाय आंखों देखी (प्रत्यक्ष) पर विश्वास करते थे। दूसरे अर्थों में हम कह सकते हैं कि वे भोगे हुए यथार्थ पर बल देते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि–''वे निर्भीक, स्पष्ट वक्ता, विवेकशील और पक्षपात रहित व्यक्ति थे। उन्होंने किसी की कभी खुशामद नहीं की। योगी हो या पंडित, मुल्ला हो या मौलवी, नबी हो या औलिया, पीर हो या शैव या शाक्त, हिन्दू हो या मुसलमान। उन्होंने सभी की दुर्बलताओं पर समान भाव से प्रहार किया। उनका विद्रोह अंधविश्वास, मिथ्याचार, जातिगत भेदभाव तथा धार्मिक एवं साम्प्रदायिक संकीर्णता के विरुद्ध था। वे सहज जीवन के समर्थक थे और मनुष्य मात्र की एकता में विश्वास करते थे। वैभव, शक्ति और सत्ता के प्रति उनके मन में तनिक भी आकर्षण नहीं था।''

वर्तमान समय में लोगों को कबीर के दर्शन से यह प्रेरणा लेने की जरूरत है कि आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह ही दुख का कारण है। जब हम आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह करते हैं तो निश्चित रूप से हम किसी दूसरे व्यक्ति के हक का दोहन करते हैं। कबीर हमेशा संग्रह की भावना से विरत होकर, जो कुछ प्राप्त है, उसी में संतोष करने की प्रेरणा देते हैं। कबीर का दर्शन हमें इस बात के लिए प्रेरित करता है कि हमें अपनी रोजी–रोटी स्वयं अर्जित करनी चाहिए तथा आवश्यकता से अधिक संग्रह की भावना त्याग देनी चाहिए– ''साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय/मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय।''[7]

कबीर का समय नाना प्रकार के अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों से ग्रस्त था। समाज में ऊँच–नीच की भावना विद्यमान थी। कबीर की महत्ता इस बात में है कि उन्होंने अपने क्रांतिकारी विचारों के प्रभाव से खोखले समाज को जागरण का संदेश दिया। कबीर ऐसे व्यक्ति थे जो स्पष्ट शब्दों में सच को सच और झूठ को झूठ कहने का साहस रखते थे। यही कारण है कि वह अपने समय में प्रचलित बुराइयों एवं कुरीतियों पर प्रहार करके एक समतामूलक समाज के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण सहयोग ज्ञापित कर सके। कबीर का व्यक्तित्व बहुआयामी था। ''कबीर भक्ति के बिना सारी साधनाओं को व्यर्थ मानते थे। इसी प्रेम एवं भक्ति के बल पर वे अपने युग के सारे मिथ्याचार, कर्मकांड, अमानवीयता, हिंसा एवं परपीड़ा को चुनौती देते हैं। वे वाह्य आडम्बर एवं पाखंड के प्रबल विरोधी थे। वे ऊँच–नीच, जात–पॉत, धर्म सम्प्रदाय आदि की संकीर्णताओं का आजीवन विरोध करते रहे।''[8]

मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या के वशीभूत होकर ही अनैतिक कार्यों में संलिप्त होता है, इसीलिए मानव ह्रदय में जब तक भक्ति का प्रवाह नहीं होगा, समाज कल्याण सम्भव नहीं है। सामाजिक विषमताओं को दूर करने और नैतिक बलों के प्रसार के निमित्त ही कबीर ने भक्ति भावना पर अत्यधिक बल दिया है। इतना ही नहीं, भक्ति भावना के बल पर साम्प्रदायिक वैमनस्यताओं को दूर करने का सार्थक प्रयास भी कबीर ने किया है क्योंकि उनकी दृष्टि में हरि भक्त तो हरि का ही हो सकता है, किसी धर्म, सम्प्रदाय और जाति विशेष का नहीं। उनका मानना है– ''जाति पाति पूछै नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।''

आज के समय में हर एक व्यक्ति एक दूसरे से आगे निकलना चाहता है। आगे निकलने की होड़ में वह यह भूल जाता है कि अधिक तेज चलने वाला व्यक्ति ठोकर खाकर गिर जाता है। कबीर का मानना है– 'धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।' कबीर ने अपने साखियों के माध्यम से हमें यह शिक्षा दी है कि हर कार्य कुशलतापूर्वक लगन से करना चाहिए। साथ ही जीवन में समय का सदुपयोग करना चाहिए। उनका मानना है कि मनुष्य को आलस्य के कारण आज का कार्य कल पर नहीं टालना चाहिए, बल्कि उस कार्य को तुरन्त कर लेना चाहिए– ''काल करे सो आज कर, आज करे सो अब/पल में प्रलय होएगी, बहुरी करोगी कब।''

कबीर का पूरा साहित्य प्रेम के महत्व को बतलाता है। कबीर का मानना है कि यदि मनुष्य प्रेम के ढाई अक्षर के मर्म को समझ ले तथा हर एक व्यक्ति एक दूसरे से सच्चे अर्थों में प्रेम करें तो उससे बड़ा मानव इस धरती पर कोई नहीं। उनका कहना है– ''पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय/ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।''[9]

कबीर का पूरा दर्शन विश्व बन्धुत्व की भावना पर आधारित है। उनका समय सामाजिक रूप से जातिगत, वर्णगत, धर्मगत, सम्प्रदायगत विभिन्नताओं के उत्कर्ष पर था। वैष्णवों, शाक्तों, नाथों, सिद्धों, सूफियों तथा इस्लाम सम्प्रदायों ने अपना–अपना राग अलापने का अंदाज बदल दिया था। संकीर्णताएँ घर कर रही थीं। मनुष्य टूट रहा था, समाज धीरे–धीरे बदल रहा था। कबीर युगपुरुष थे। उनकी दृष्टि मनुष्य की संकीर्ण विचारधाराओं के खण्डन तक ही सीमित नहीं रही, वरन विश्व बन्धुत्व की स्थापना में भी सचेत रही, जिसके निर्माण के लिए कबीर ने व्यक्ति आह्वाहन का मंत्र फूंका– ''कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ/जो घर जाड़े आपना, चलै हमारे साथ।''[10]

कबीर ऊँचे कुल में जन्म लेने मात्र को श्रेष्ठ नहीं मानते थे, उनका मानना था कि यदि कोई व्यक्ति निम्न कुल में भी पैदा हुआ है, यदि उसके कर्म श्रेष्ठ हैं तो वह व्यक्ति श्रेष्ठ है और वन्दनीय है। कबीर ने

उच्च वर्गीय मानसिकता की स्थिति पर व्यंग करते हुए लिखा है– ''ऊँचे कुल क्या जनमियॉ, जो करणी ऊँच न होइ।''[11]

कबीर ने समाज के बेहतर निर्माण के लिए आत्मचिंतन करने पर बल दिया है। उनका मानना है कि दूसरों की निंदा और हंसी उड़ा कर हम कभी भी अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, इसलिए हमें दूसरों की कमी निकालने के बजाय अपने अंदर की कमी देखने की जरूरत है। उनका स्पष्ट मंतव्य है कि ''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोई/जो दिल खोजा आपना, मुझ से बुरा न कोय।''

कबीर आचरण की शुद्धता पर खास ध्यान देते थे। वे खोखली दलीलों एवं थोथे बकवासों पर विश्वास नहीं करते थे। उनका मानना था कि जब तक मनुष्य के आचरण में शुद्धता नहीं होगी तब तक समाज के कल्याण की बातें सोचना व्यर्थ है। आचरण की शुद्धता के साथ–साथ कबीर वाणी के संयम पर विशेष बल देते थे– ''ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय/औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।''[12]

कबीर मानवता के सच्चे समर्थक थे। उन्होंने अपने पूरे साहित्य में मानवता के स्थापना की पुरजोर वकालत की है। कबीर का 'ढाई आखर प्रेम' शत्रु–मित्र के भाव से परे रहकर किया जाने वाला मानवतावादी प्रेम है– ''कबीरा खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर/ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।''

कबीर का पूरा जीवन और साहित्य नव समाज निर्माण की प्रभात बेला में रवि किरणों की तरह दीप्त है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर के व्यक्तित्व के बारे में लिखते हैं– वह सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग से दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय थे। वह युगावतार की शक्ति और विश्वास लेखक कहलाए। युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी, इसलिए वे युग प्रवर्तक थे। कबीर की महत्ता इस बात में है कि वे ज्ञान के जिस अखंडित विश्वास का प्रचार करना चाहते थे उसके प्रकाश पुंज से आधुनिक विश्व को एक मानवोचित विश्व निर्माण का चरित्र मिल सकता है। सच्चे अर्थों में कबीर एक साथ चिंतक, सुधारक एवं दार्शनिक थे। ''कबीर ऐसे समाज की स्थापना में संलग्न थे जिसमें न कोई हिन्दू हो, न मुसलमान, न पूजा हो न नमाज, न पण्डित हो न मुल्ला, बल्कि सिर्फ इन्सान हो।''[13] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीर के क्रान्तिकारी विचार विश्व मानव के कल्याण की बात करता है, जिसमें समता एवं बन्धुत्व की भावना विद्यमान हो।

सन्दर्भ :

1. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दी सहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ0 125
2. हरिश्चन्द्र अग्रवाल (संपा0), कबीर का महत्व, पृ0 05
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ0 179
4. वही, पृ0 272
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2059, पृ0 43
6. वही, पृ0 43
7. शिवकुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, पृ0 54
8. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का इतिहास, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2003, पृ0 17

9. विजयेन्द्र स्नातक (सम्पा0), कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ0 125
10. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, 2009, पृ0 39
11. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ0 228
12. विजयेन्द्र स्नातक (सम्पा0), कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ0 228
13. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ0 88

वर्तमान भारतीय समाज में श्वेतवसन अपराध

आशुतोष पाण्डेय
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
डॉ. राहुल गुप्ता
सह० आचार्य, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांशः *सामान्यतः कोई भी समाज ऐसा नही है जहाँ पर आपराधिक कृत्य न होते हो। यह संभावित हो सकती है कि अपराध की तीव्रता कम या ज्यादा हो सकती है। अपराध के सामान्य प्रकारों के विषय में लगभग सभी लोग जागरूक होते है तथा उससे बचाव का कोई न कोई रास्ता निकाल लेते है या उनके विषय में सामान्य ज्ञान तो होता ही है परन्तु जैसे जैसे विकास की प्रक्रिया से समाज ओत–प्रोत होता जा रहा है, अपराध के नवीन स्वरुप भी दिखाई पड़ने लगे है इन्ही नवीन स्वरूपों में से एक स्वरुप सफेदपोश अपराध या श्वेतवसन अपराध है।जिसके विषय में सर्वप्रथम अमेरिकन अपराधशास्त्री एडविन सदरलैंड ने अमेरिकन सोशियोलॉजिकल एसोसिएशन के बैठक में जानकारी दिया था। किन्तु श्वेतवसन अपराध के विषय में जानकारी होने के बाद से ही विद्वानों के सामने आने वाली सैद्धान्तिक चुनौतियों में से एक प्रमुख चुनौती सफेदपोश अपराध की एक स्वीकृत परिभाषा का विकास करना है। इसकी मुख्य विशेषता यही है कि यह किसी व्यवसाय के दौरान एक प्रतिष्ठित और उच्च सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त व्यक्ति द्वारा किया गया आर्थिक अपराध है। एडविन सदरलैंड के सफेदपोश अपराध की अवधारणा ने समाजशास्त्रीयो तथा अपराधशास्त्रीयो को प्रबुद्ध कर दिया है। इस अवधारणा ने प्रबंधन शोधकर्ताओ,न्यायधीश और कानून निर्माताओ तथा वकीलों को भ्रमित कर दिया है। इस उलझन का एक कारण ये सभी सफेदपोश भी है जो स्वयं आर्थिक गतिविधियों से जुड़े कृत्यों में शामिल होते है। सदरलैंड के शोध में यह अपराध विशिष्ट व्यक्ति द्वारा किया गया एक विशिष्ट प्रकार का अपराध है जो समाज में उच्च प्रस्थिति प्राप्त सम्मानित व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। जो शिक्षित होते हुए भी अपनी शिक्षा एवं पद का गलत उपयोग करते है तथा अवैध तरीकों से धन की प्राप्ति करने हेतु भ्रष्टाचार का सहारा लेते है। ऐसे सभी सफेदपोश व्यक्ति जो समाज के उच्च स्तर पर विराजमान होते है उनका नाम इस प्रकार के अपराध में नही आता क्योंकि वे अपनी पहुँच, पैसा तथा रसूख का इस्तेमाल करके भ्रष्टाचार के रास्ते अपना नाम सामने नही आने देते है।*

आज के समय में जो व्यक्ति अपने परिवारजनों की पढाई तथा रोजगार में जितना अधिक धन व्यय करता है। बाद में वही व्यक्ति अधिक से अधिक धन कमाने की चाहत में सफेदपोश अपराध ,जिनमे घूसखोरी,गबन,घोटाला,कालाधन संचय, भ्रष्टाचार इत्यादि करने लगते है। जिसकी वजह से समाज के मध्यम तथा गरीब वर्ग के व्यक्ति देश को हांनि पहुंचाता है और इन सबका विकास नही हो पाता है। जिससे हमारा देश विकास के पथ पर बहुत पीछे दिखाई देता है। सफेदपोश अपराध की व्यापकता इस कदर होती है कि जब तक इस कृत्य के विषय में जानकारी होती है तब तक यह पीड़ित को अत्यधिक प्रभावित कर चुका होता है और अधिकतर मामलों में इसके पीड़ितो को अपने आपको पुर्नस्थापित करने का अवसर प्राप्त ही नही हो पाता है।

प्रस्तुत शोधपत्र का लेखन उपलब्ध द्वितीयक स्रोतों के आधार पर किया गया है जिसमें यह देखने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान भारतीय समाज में श्वेतवसन अपराध किस तरह से आम जनमानस के लिए हांनिकारक है।

बीज शब्द: सदरलैंड, सफेदपोश अपराध, सामाजिक विकास, भ्रष्टाचार

प्रस्तावना: वैधानिक दृष्टिकोण से अपराधी केवल एक व्यक्ति है,जिसके द्वारा किया गया कानून का उल्लंघन न्यायालय द्वारा प्रामाणिक हो जाता है तथा इसके लिए उसे राज्य की ओर से दंड दिया जाता है। इसके विपरीत अपराध की समस्या का वास्तविक संबंध उन व्यक्तियों से है जो समाज में संभ्रांत वर्ग के सदस्य होते हैं। उच्च राजनीतिक तथा प्रशासनिक पदों पर आसीन होते हैं। बड़ी–बड़ी व्यापारिक फर्मों का संचालन करते हैं। समाज सुधार में बहुत बढ़–चढ़कर भागीदारी लेते हैं तथा नीतियों का निर्माण करने के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इनकी आर्थिक शक्ति तथा प्रतिष्ठा के कारण कोई इन पर उंगली उठाने का साहस भी नहीं कर पाता,यद्यपि इनमें बहुत से व्यक्ति जघन्य से जघन्य अपराध करने में भी संकोच नहीं करते। संक्षेप में, सुंदर और संभ्रांत वेशभूषा में रहने वाले इन उच्च वर्गीय व्यक्तियों द्वारा अपने पद एवं व्यवसाय की आड़ में किए जाने वाले अपराधों को हम 'श्वेतवसन अपराध'कहते हैं।

श्वेतवसन अपराध की धारणा को सुव्यवस्थित ढंग से एक सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य सर्वप्रथम 'एडविन सदरलैंड' ने किया। सदरलैंड ने सन 1939 में श्वेतवसन अपराध की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए अमेरिका के 70 बड़े व्यापारियों एवं पूंजीपतियों का विस्तृत अध्ययन किया और बताया कि इन उद्योगपतियों में से अधिकांश व्यक्ति झूठे विज्ञापनों, कानून के उल्लंघन,श्रमिकों के साथ धोखे,करों की चोरी,धोखाधड़ी,रिश्वतों तथा आपराधिक षडयंत्रों के द्वारा अधिक से अधिक लाभ कमा रहे थे। इन्हें ही श्वेतवसन अपराधी के रूप में जाना जाता है। जो समाज में उच्च पदों पर आसीन होते हैं अथवा जिनके पास आर्थिक साधनों की कोई कमी नहीं होती। यह लोग अपने वेशभूषा से सम्भ्रांत प्रतीत होते हैं, व्यवहार तथा स्वभाव से स्वयं को नम्र प्रदर्शित करते हैं लेकिन फिर भी अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कानूनों का उल्लंघन करते हैं तथा अपनी चालाकी और शक्ति से समाज में अपनी प्रतिष्ठा को भी बनाए रखते हैं। यह व्यक्ति कभी पकड़े नहीं जाते और यदि पकड़े भी गए तो साधारणतया दंड से साफ–साफ बच जाते हैं। इस प्रकार अपराध की वास्तविक समस्या श्वेतवसन अपराधियों द्वारा किए जाने वाले कानूनों के उल्लंघन और समाज–विरोधी कार्यो से संबंधित है। इस प्रकार के अपराध में जान से मारना, धमकी देना या अपहरण की समस्या शामिल नहीं होती है बल्कि इसमें आर्थिक तथा धन–संपत्ति से संबंधित कृत्यों को शामिल किया गया है।जिसमें डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक तथा राजनेता व प्रशासनिक कर्मचारी जैसे शिक्षित सफेदपोश व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है। जो समाज के संभ्रांत वर्गों में आते हैं। एक अवधारणा के रूप में श्वेतवसन अपराध को परिभाषित करते हुए सदरलैंड ने बताया कि 'श्वेतवसन अपराध को एक ऐसे अपराध के रूप में परिभाषित किया जा सकता है,जिसे एक प्रतिष्ठित तथा उच्च सामाजिक स्थिति वाला व्यक्ति अपने पेशे के दौरान करता है।' क्लीनार्ड ने कालाबाजारी से संबंधित व्यवहारों के संदर्भ में श्वेतवसन अपराध को परिभाषित करते हुए बताया कि 'श्वेतवसन अपराध कानून का वह उल्लंघन है,जो मुख्य रूप से व्यापारियों और राजनीतिज्ञों जैसे समूह द्वारा अपने व्यवसाय के संबंध में किया जाता है।' फ्रैंक हार्टुंग ने लिखा है कि 'श्वेतवसन अपराध व्यापार से संबंधित कानूनों का ऐसा उल्लंघन है जो किसी कंपनी,कारखाने, प्रतिष्ठान या उसके प्रतिनिधियों द्वारा अपना व्यापार चलाने के लिए किया जाता है।'

साहित्य की समीक्षा :

- बेकर (2000) भारत में अपराध दर में वृद्धि की जांच करते हैं। इस अध्ययन में उन्होंने सफेदपोश अपराध का भी विश्लेषण किया है।यह अध्ययन कानून के क्षेत्र में सफेदपोश अपराध को रोकने के प्रयासों की पहचान करता है। साथ ही यह आर्थिक अपराधों के कारण देश को होने वाले नुकसान की भी जांच करता है।
- क्रॉल (2001) ने अपने अध्ययन में सफेदपोश अपराध के विभिन्न पहलुओं और प्रकारों के बारे में चर्चा की है। उनका कहना है कि सफेदपोश अपराध अब अपराध के पारंपरिक रूपों से आगे बढ़ गया है, इसलिए औद्योगिक समाज में अपराध की प्रकृति बदल रही है। अध्ययन समग्र रूप से समाज पर सफेदपोश अपराधों के हानिकारक प्रभावों का भी विश्लेषण करता है। अधिकांश प्रयास सफेदपोश अपराध को परिभाषित करने पर केंद्रित है क्योंकि इसकी परिभाषा अस्पष्ट प्रतीत होती है। सफेदपोश अपराध की अवधारणा और अनुसंधान के दायरे से संबंधित कई मुद्दों पर विस्तार से चर्चा की गई है।
- जयशंकर (2009) का कहना है कि वैश्वीकरण और इंटरनेट में तकनीकी प्रगति ने व्यापारिक लेनदेन में क्रांति ला दी है। तकनीक के विकास के साथ अब किसी भी क्षेत्र के अपराधी बिना पहचाने अपराध कर सकते हैं। साइबर स्पेस सबसे असुरक्षित जगह है जहां अपराधी दुनिया भर में उपयोगकर्ताओं को भारी नुकसान पहुंचा सकता है। इस प्रकार यह एक स्पष्ट तथ्य है कि वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी में प्रगति ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक अपराधों को अंजाम देने में सहायता की है।
- यादव (2011) सफेदपोश अपराधों का पता लगाने में लिखावट के महत्व की जांच करता है। अध्ययन से पता चला कि लिखावट शैली से चोरी, जालसाजी, आत्महत्या पत्र आदि का पता चल सकता है। इस प्रकार कानून प्रवर्तन एजेंसियों के लिए ऐसे आर्थिक अपराधों का पता लगाना आसान होगा।
- असनर एट अल. (2011) इस बारे में चर्चा करते है कि उच्च पद पर बैठे सरकारी अधिकारी कैसे अपने पद का अनुचित लाभ उठाते हैं। अपने निजी लाभ के लिए लेन–देन में हेरफेर करते हैं और निर्दोष लोगों को परेशानी में डालते हैं। इनका यह अध्ययन भी सफेदपोश अपराधों से जुड़े अंतर्राष्ट्रीय अवैध व्यापार का विश्लेषण करता है।
- ठाकुर (2012) ने आर्थिक अपराधों का पता लगाने में चंडीगढ़ पुलिस के प्रदर्शन पर अपने विश्लेषणात्मक अध्ययन में बढ़ते आर्थिक अपराधों के कारणों की पहचान करने का प्रयास किया है। जिसमे यह पाया गया कि वैश्वीकरण प्रक्रिया के कारण व्यापार, यात्रा, चिकित्सा, अर्थव्यवस्था आदि में भारी परिवर्तन हो रहा है। इस प्रकार वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण अपराध की प्रकृति भी बदल रही है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने आर्थिक अपराधों को अंजाम देना आसान बना दिया है, इस प्रकार आर्थिक अपराध पारंपरिक की तुलना में बढ़ रहे हैं।
- बियांको एट.एल (2012) ब्रिक्स देशों में भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी की जांच करता है। अध्ययन में पाया गया कि वहाँ तीसरी दुनिया के देशों में धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार के मामलों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। यह भी सफेदपोश अपराधों से निपटने के लिए आवश्यक उपायों की पहचान करता है।

- रोहरा (2013) भारत में सफेदपोश अपराध और इसके विकास का विश्लेषण करता है। नई तकनीकों का धोखाधड़ी से निपटने के लिए लगातार विकास किया गया है लेकिन साइबर स्पेस आर्थिक अपराध करने के लिए अधिक अवसर प्रदान करता है।
- प्रताप (2013) सफेदपोश अपराध के बारे में जागरूकता में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का पता लगाने का प्रयास करता है।इस अध्ययन में आगे पता चला कि सूचना प्रौद्योगिकी ने सफेदपोश अपराधों को अंजाम देना आसान बना दिया है। यह साइबर में होने वाले अपराधों के संबंध में सूचना और प्रौद्योगिकी अधिनियम 2012 का भी विश्लेषण करता है।

भारत में शीर्ष 7 सफेदपोश अपराध मामले :

भारत में हुए शीर्ष सफेदपोश अपराध इस प्रकार हैं– हर्षद मेहता सिक्योरिटीज धोखाधड़ी (1988–1995), सत्यम घोटाला, अब तक का सबसे बड़ा कॉर्पोरेट अकाउंटिंग धोखाधड़ी, केतन पारेख सुरक्षा घोटाला, सारदा चिट फंड मामला, पंजाब नेशनल बैंक धोखाधड़ी, 2जी घोटाला, राष्ट्रमंडल खेल घोटाला।

1. हर्षद मेहता सिक्योरिटीज धोखाधड़ी (1988–1995)– स्टॉक ब्रोकर हर्षद मेहता ने 1990 में एक सुरक्षा कंपनी, 'ग्रो मोर रिसर्च एंड एसेट मैनेजमेंट लिमिटेड' की स्थापना की। निवेशकों ने मेहता के नेतृत्व का आँख बंद करके अनुसरण किया क्योंकि वह शेयर बाजार में एक जाना–माना नाम थे और उन्हें 'दलाल स्ट्रीट के सुल्तान' के रूप में जाना जाता था। उन्होंने बैंक से बड़ी रकम उधार लेकर और अत्यधिक कीमतों पर स्क्रिप्ट खरीदकर एक काल्पनिक बाजार बनाया। उन्होंने अपने लाभ के लिए कुछ शेयरों की स्टॉक कीमतों में हेरफेर करने के लिए अपनी स्थिति का लाभ उठाया। इससे शेयर बाजारों में नकदी का अप्राकृतिक रूप से प्रवाह हुआ, जिससे इन शेयरों की कीमत में असामान्य रूप से वृद्धि हुई। अनैतिक होते हुए भी हर्षद मेहता का यह कृत्य वैध था।

2. सत्यम घोटाला : अब तक का सबसे बड़ा कॉर्पोरेट अकाउंटिंग धोखाधड़ी है। सत्यम कंप्यूटर्स सर्विसेज लिमिटेड के संस्थापक और अध्यक्ष बी. रामलिंगम राजू द्वारा लिखे गए और 7 जनवरी 2009 को टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित एक स्वीकारोक्ति पत्र से इस घोटाले का खुलासा हुआ। पत्र में, उन्होंने संपत्ति को बढ़ा–चढ़ाकर और देनदारियों को कम करके अपने खातों की किताबों में छेड़छाड़ करने की बात स्वीकार की। कंपनी की वित्तीय स्थिति खातों की पुस्तकों में परिलक्षित होती है। निवेश करने से पहले, निवेशक एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में उन पर भरोसा कर सकते हैं। शेयरधारकों और निवेशकों को धोखा देने के लिए लेखा पुस्तकों में हेराफेरी की गई।धोखाधड़ी की कुल लागत लगभग 14,000 करोड़ रुपये थी और माना जाता है कि इसने 2009 की मंदी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।इस घोटाले के जवाब में, सेबी ने जोरदार प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए रामलिंगा राजू और नौ महत्वपूर्ण सहयोगियों को अंदरूनी व्यापार के साथ–साथ बेईमान और अनुचित व्यापार प्रथाओं में शामिल होने का दोषी पाया। सेबी ने आरोपी को 14 साल की अवधि के लिए किसी भी तरह से सुरक्षा बाजार में प्रवेश करने से प्रतिबंधित करने के अलावा, आरोपी को 45 दिनों के भीतर लगभग 3000 करोड़ रुपये का भुगतान करने का आदेश दिया। यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसा घोटाला दोबारा न हो, सेबी दृढ़ता से प्रतिक्रिया देने में सक्षम था।

3. केतन पारेख सुरक्षा घोटाला–1999 से 2001 तक, पारेख सर्कुलर ट्रेडिंग और स्टॉक हेरफेर में लगे रहे। उन्होंने ग्लोबल ट्रस्ट बैंक और माधवपुरा मर्कंटाइल को–ऑपरेटिव बैंक जैसे वित्तीय संस्थानों से पैसा उधार लिया और इसका इस्तेमाल कई शेयरों में हेरफेर करने के लिए किया। इस घोटाले की लागत लगभग 1,250 करोड़ रुपये थी। जेल में केवल एक साल की सजा काटने के बावजूद, उन्हें 2017 तक भारतीय शेयर बाजार में व्यापार करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। हालाँकि उन पर पर्दे के पीछे से प्रदर्शन करने

का आरोप लगाया गया है लेकिन उनका नाम अभी भी सड़क पर गूंजता है। इंटेलिजेंस ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार, पारेख और उनके सहयोगी कथित तौर पर प्रमुख कंपनियों के माध्यम से इनसाइडर ट्रेडिंग और सर्कुलर ट्रेडिंग में शामिल थे।

4. शारदा चिट फंड मामला–200 निजी कंपनियों का एक समूह, जो कथित तौर पर सामूहिक निवेश योजनाएं चला रहा था, जिसे लोकप्रिय और गलत तरीके से चिट फंड कहा जाता है, द्वारा संचालित पूंजी योजना के पतन के परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण वित्तीय धोखाधड़ी के साथ–साथ एक कथित राजनीतिक घोटाला भी हुआ। नकदी या अचल संपत्ति और अन्य परिसंपत्तियों के रूप में बदले में कई गुना बड़ी राशि के वादे के साथ, इस समूह ने 17 लाख से अधिक जमाकर्ताओं से लगभग 30,000 करोड़ रुपये एकत्र किए। यह दावा किया गया था कि सारदा समूह की कम से कम 10 संस्थाओं ने धन–पूलिंग योजनाओं में भाग लेकर जनता को धोखा दिया था। समूह की कथित धोखाधड़ी के खिलाफ चल रहे सार्वजनिक विरोध के बावजूद, सेबी ने शारदा रियल्टी इंडिया और उसके प्रबंध निदेशक सुदीप्त सेन को प्रतिभूति बाजार से तब तक प्रतिबंधित कर दिया जब तक कि समूह ने सभी सामूहिक निवेश योजनाओं (सीआईएस) को बंद नहीं किया और रिफंड नहीं कर दिया, क्योंकि यह सीआईएस के उल्लंघन के बराबर गतिविधियाँ है।

5. पंजाब नेशनल बैंक धोखाधड़ी– भारत के 85वें सबसे अमीर व्यक्ति हीरा कारोबारी और प्रख्यात आभूषण डिजाइनर नीरव मोदी हैं। बैंक ने दावा किया कि मोदी और उनसे जुड़े व्यवसायों ने खरीदारों के ऋण को वित्तपोषित करने में मदद के लिए अन्य विदेशी बैंकों से गारंटी या वचन पत्र प्राप्त करने के लिए बैंक के प्रतिनिधियों के साथ साजिश रची।पीएनबी की प्रारंभिक जांच के अनुसार, दो बैंक कर्मचारियों ने उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना धोखाधड़ी से उपरोक्त फर्मों को लूस जारी कर दिया। फिर, इन लॉस के आधार पर, स्विफ्ट मैसेजिंग सिस्टम के माध्यम से उपरोक्त फर्मों को क्रेडिट दिया गया। पीएनबी ने दावा किया कि हीरे खरीदने और बेचने के उद्देश्य से कथित तौर पर जुटाए गए पैसे का इस्तेमाल नहीं किया गया। पीएनबी ने अनधिकृत और धोखाधड़ी वाले लेनदेन की पहचान के संबंध में स्टॉक एक्सचेंज को सूचना जारी की। पीएनबी में 11,400 करोड़ रुपये की धोखाधड़ी का पता चला, जिससे यह भारतीय बैंकिंग उद्योग में सबसे बड़ी धोखाधड़ी में से एक बन गई।

6. 2जी घोटाला– इस योजना में 2जी स्पेक्ट्रम के लिए लाइसेंस की निश्चित कीमत पर बिक्री शामिल है। ए. राजा ने भी यह कार्रवाई की क्योंकि नीलामी का उपयोग करने से कम लाभ होता था। उन्होंने उन आवेदकों को लाइसेंस दिए जो योग्य नहीं थे। झूठ बोलने के अलावा, इन आवेदकों ने गलत जानकारी और गुम जानकारी प्रदान की और उन्हें छुपाया। परिणामस्वरूप, 1.76 लाख करोड़ रुपये का नुकसान हुआ। 16 नवंबर 2010 को भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ने उनके अपराध पर एक रिपोर्ट जारी की। साथ ही, आरोप पत्र 80,000 पेज लंबा था क्योंकि अपराध इतना जघन्य था। इसके अतिरिक्त, सीएजी रिपोर्ट में कहा गया है कि ये महत्वपूर्ण हिस्सेदारी भारतीय और विदेशी दोनों कंपनियों को उच्च प्रीमियम पर बेची गईं फिर, उन्होंने बहुत ही कम समय में कार्य पूरा कर लिया। अंत में, वे दावा करते हैं कि इन अयोग्य आवेदकों द्वारा अर्जित मूल्य और स्पेक्ट्रम का वास्तविक मूल्य बिल्कुल समान था।

7.राष्ट्रमंडल खेल घोटाला– राष्ट्रमंडल के एथलीट राष्ट्रमंडल खेलों में विभिन्न प्रकार के खेलों में प्रतिस्पर्धा करते हैं, जो एक अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता है। यह साल में एक बार होता है. इसका संचालन राष्ट्रमंडल खेल महासंघ द्वारा किया जाता है। कॉमनवेल्थ गेम्स घोटाला सुरेश कलमाड़ी ने किया था. उन्होंने अध्यक्ष के रूप में खेलों की योजना समिति की देखरेख की। परिणामस्वरूप, उन्होंने स्विस टाइमिंग्स को 141 करोड़ रुपये का अनुबंध दिया। इसके अलावा, स्विस टाइमिंग के टाइम उपकरण की कीमत 95 करोड़ रुपये

है। इसके अतिरिक्त,खेल अधिकारियों को अध्यक्ष द्वारा घटिया आवास में रहने की व्यवस्था की गयी थी। इसी समय केंद्रीय सतर्कता आयोग को सीएमडब्ल्यू घोटाले के बारे में पता चला। एथलीटों के लिए कम सुविधाएं प्रदान करने के साथ–साथ इस घोटाले के परिणामस्वरूप 70,000 रुपये की चोरी हुई। उन्हें धोखाधड़ी, साजिश, भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी के इरादे से जाली दस्तावेज बनाने के आरोप में हिरासत में लिया गया था। भारत में, यह निःसंदेह एक गंभीर सफेदपोश अपराध है।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य वर्तमान भारतीय समाज में घटित हो रहे सफेदपोश अपराध के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है। साथ ही यह भी ज्ञात करना कि सदरलैंड द्वारा प्रतिपादित श्वेतवसन अपराध का सिद्धांत वर्तमान भारतीय समाज में प्रासंगिक है या नही।

निष्कर्ष :

सफेदपोश अपराध एक बड़ी वैश्विक चिंता का विषय बन चुका है। विभिन्न अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि सफेदपोश अपराध से समाज में होने वाली आर्थिक हानि अन्य अपराधो से कही अधिक होती है। भारत एक विकासशील देश है और सफेदपोश अपराध न केवल देश की आर्थिक वृद्धि के लिए हानिकारक है बल्कि यह हमारे देश की छवि को भी धूमिल करते है। सरल भाषा में यह कहा जा सकता है कि सफेदपोश अपराध को खत्म करना बिलकुल भी आसान नहीं है,क्योकि यह कई सदियों से अस्तित्व में है। हालाँकि,हमें सरकार और कानूनी संस्थाओ के साथ मिलकर ऐसे अपराधो को कम करने का प्रयास करना चाहिए। जैसा कि पहले चर्चा किया गया है कि,सख्त कानून और विशेष न्यायाधिकरण बनाये और लागू किये जाने चाहिए ताकि अपराधी को सजा का डर हो और कोई भी अपराध करने से पहले दो बार सोच–विचार करे। साथ ही सरकारी एजेंसियों को हमारे देश से ऐसे अपराधो को खत्म करने हेतु संयुक्त प्रयास भी करने होंगे, जिससे सफेदपोश अपराध करने वाला एक बड़ा शिक्षित एवं चालाक वर्ग सजा एवं अपनी छवि बिगड़ने के डर से इस प्रकार का जघन्य अपराध करने से रुक जाये। यदि भारत अपने वर्तमान आर्थिक प्रक्षेप पथ को बनाये रखना चाहता है,तो उसे सार्वजानिक और निजी दोनों क्षेत्रो में धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार को कम करना होगा। धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार जैसा कि पहले कहा गया है,बहुराष्ट्रीय निगमों को देश में निवेश करने से रोकते है। धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार के नकारात्मक प्रभावों का स्पष्ट प्रमाण 2011 में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में कमी और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों द्वारा शेयर बाजारों से पूंजी की निकासी है। इसलिए,भारत सरकार को शासन में सुधार करके कानून तोड़ने वालो को सख्त से सख्त सजा देने का प्रावधान करना होगा।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सफेदपोश अपराध अपने विभिन्न स्वरूपों में निरंतर वृद्धि करता जा रहा है जिससे कोई भी क्षेत्र या सरकारी तंत्र अछूता नही है। श्वेतवसन अपराध के द्वारा न सिर्फ राष्ट्र को आर्थिक हाँनि पहुँचता है बल्कि जनता का भी मनोबल टूट जाता है। वस्तुतः इस प्रकार के अपराधो पर नियंत्रण पाने का निरंतर प्रयास किया भी जा रहा है परन्तु सरकार द्वारा जो भी व्यवस्थाये बनायी गयी है उनका उचित ढ़ंग से अनुपालन नही हो रहा है जिस कारण से कही न कही सफेदपोश अपराधो पर लगाम नही लग रहा है।

सुझावः

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ अधिकांश लोग अशिक्षित और गरीबी से पीड़ित हैं, अपराधों का बाहुल्य होना स्वाभाविक ही है। अतः आपराधिक न्याय प्रशासकों के लिए अपराध निवारण, विशेषतः सफेदपोश

अपराधों का निवारण, एक विकट समस्या बनी हुई है। तथापि सफेदपोश अपराधों की रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय प्रभावी हो सकते हैं–

- प्रचार–प्रसार के माध्यमों द्वारा जनता में इन अपराधों के प्रति लोक चेतना जागृत करना आवश्यक है। यह कार्य विधिक साक्षरता अभियान द्वारा अधिक अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है। इसके लिए दूरदर्शन, रेडियो, फिल्म, रंगमंच आदि श्रव्य–दृश्य माध्यमों का प्रयोग भी किया जा सकता है। इनके द्वारा लोगों को सफेदपोश अपराधों के गम्भीर परिणामों से अवगत कराया जाना चाहिए ताकि वे इनसे दूर रहें।
- सफेदपोश अपराधों की सुनवाई और विचारण के लिए विशेष अधिकरण गठित किये जाए जिन्हें पाँच वर्ष तक की सजा देने की अधिकारिता हो।
- इन अपराधों के निवारण हेतु कठोर कानूनी प्रावधान कठोर दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि लोग इन अपराधों को करने से डरें और इनसे परावृत्त रहें। इन अपराधों के लिए ऐसे विधायन भी उचित एवं वैध माने जाएं जो भूतलक्षी प्रभाव रखते हों।
- कुछ विधिज्ञों का मानना है कि सफेदपोश अपराधियों को कारावास का दण्ड देने की बजाय कठोरतम अर्थ दण्ड देना उचित होगा जो वास्तविक हानि से कई गुना अधिक हो ।
- भारतीय दण्ड विधि में 'सफेदपोश अपराध' नामक शीर्षक का एक नया अध्याय जोड़ा जाना चाहिए ताकि इन अपराधों में लिप्त अपराधी सामान्य अपराधी की भाँति दण्डित किये जा सकें। इसके लिए वर्तमान दण्ड विधि में संशोधन करना आवश्यक होगा। इसके पूर्व सफेदपोश अपराध की निश्चित विधिक परिभाषा तय करना नितान्त आवश्यक है।
- भारत में निरन्तर बढ़ती हुई आपराधिकता को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय अपराध निवारण आयोग का गठन किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है जो अपराध और अपराधियों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का सर्वेक्षण करता रहे और इन पर नियन्त्रण के प्रभावी उपचारात्मक उपाय सुझाता रहे।
- सफेदपोश अपराध विरोधी अभियान में जनता की सक्रिय भागीदारी सबसे अधिक प्रभावकारी सिद्ध होगी। जब तक जनता इन अपराधों के प्रति रोष और तिरस्कार नहीं दर्शाती, तब तक सफेदपोश अपराधों का निवारण कठिन है। यह कार्य शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा नैतिक आचरण तथा चरित्र–निर्माण पर बल देकर किया जा सकता है। ईमानदारी, निष्ठा, राष्ट्रीय भावना, ये सब चरित्र निर्माण से ही सम्भव हैं जिन्हें बच्चों से ही प्रारम्भ किया जाना चाहिए। अतः इस कार्य में शालाएँ सक्रिय भूमिका निभा सकती हैं। आज का बालक कल का सजग नागरिक होंगा, अतः यदि बचपन से ही उचित शिक्षा द्वारा बालक–बालिकाओं में अच्छे नागरिक के गुण विकसित किये जाएँ, तो निःसन्देह ही आगे चलकर ये बच्चे आदर्श नागरिक बनेंगे और आने वाली पीढ़ी में आपराधिकता की प्रवृत्ति स्वयमेव कम होती जाएगी।
- भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 के प्रावधानों को और सख्त एवं तत्कालीन समाज के लिए प्रासंगिक बनाया जाना अति आवश्यक है जिससे सफेदपोश अपराध करने वालो के मन में उसका भय बना रहे।
- सुचना प्रोद्योगिकी अधिनियम 2000 के कानूनों को और अधिक कठोर बनाया जाये जिससे इन्टरनेट के माध्यम से हो रहे श्वेतवसन अपराध को रोका जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- महाजन, धर्मवीर, महाजन ,कमलेश (2013), अपराधशास्त्र , विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- सिंह, श्यामधर (2008), अपराधशास्त्र के सिद्धान्त, सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी।
- परांजपे,ना.वि. (2018), अपराधशास्त्र, दण्ड प्रशासन एवं प्रपीड़नशास्त्र, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।
- समाचार पत्र दी इंडियन एक्सप्रेस, पृ0स0ं–11, फरवरी 15, 2018, बृहस्पतिवार
- सदरलैंड ,ई0,एच0 (1940), व्हाइट कॉलर क्रिमिनालिटी, अमेरिकन सोशियोलॉजिकल एशोसिएशन
- सदरलैंड, ई0,एच0 (1983), व्हाइट कॉलर क्राइम, एम.पी.पी. हाउस पृ0सं0–40
- आबर्ट,वी0 (1952), व्हाइट कॉलर क्राइम एंड सोशल स्ट्रक्चर, अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी, वोल्यूम 58,, पृ0सं0 263–271
- Paranjape, N.V. (2017), Criminology, Penology and Victimology, Central Law Publications, Allahabad.
- Siddique, Ahmad (2017), Criminology, Penology and Victimology, Eastern Book Company, Lucknow.
- https://vakilsearch.com/blog/top-white-collar-crime-cases-in-india

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

राही मासूम रजा के उपन्यासों में धार्मिक स्वरूप का चित्रण

अभिषेक कुमार
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

रचनाकार युग द्रष्टा होता है। उसकी रचनाओं में उसके वातावरण से सम्बन्धित जीवन की घटनाएँ जुड़ी होती हैं। राही मासूम रजा भी इसके अपवाद नहीं थे। बल्कि उन्होंने अपने आस–पास के जीवन पद्धतियों–परिस्थितियों को बखूबी समेटा है। एक अच्छे व प्रासंगिक रचनाकार की यह प्रमुख विशेषता है। राही के उपन्यासों का परीक्षण करने पर हम पाते हैं कि उन्होंने जिस जीवन को जिया, जिस वातावरण व परिस्थितियों में पले–बढ़े वही सब उनके कथा सूत्र में उद्घाटित भी हुआ है। उन्हीं सब परिस्थितियों की उपज इनका साहित्य है।

इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'आधा गाँव' आजादी के दौर को माध्यम बनाकर उसके पूर्व एवं पश्चात् की कथा का व्यापक वर्णन प्रस्तुत करता है। पाकिस्तान के निर्माण के बाद हिन्दू मुस्लिम जनता के हृदय में उत्पन्न भावभूमि का सफल चित्रण 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में बखूबी चित्रित किया गया है। 'हिम्मत जौनपुरी' के माध्यम से लेखक ने अपने समय के भारतीय मुसलमानों के धर्म, संस्कार, अंतर्द्वंद को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। 'ओस की बूँद' उपन्यास हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिकता को यथार्थ के धरातल पर विष्लेषित करता है।

वस्तुतः राही मासूम रजा का कथा संसार उनके जीवन काल के दौरान भारत की बदलती सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का ही अभिव्यक्तिकरण है।

राही मासूम रजा ने अपने उपन्यासों में हमेशा मानव धर्म को प्रमुखता दी है। धर्म से अभिप्राय श्रद्धा, विश्वास तथा दर्शन आदि पर आधारित मनुष्यों का समूह जिनका उद्देश्य समाज में भलाई, सेवा आदि के कार्य करना है। धर्म जनकल्याण से संबन्धित है। वह मनुष्य को शुद्ध आचरण की शिक्षा देता है। अनेक विद्वानों ने भी धर्म को अपने–अपने ढंग से व्याख्यायित किया है।

मानक हिन्दी कोश में धर्म की परिभाषा दिया गया है। ''अलौकिक क्षेत्र में वह सब कर्म तथा कृत्य जिनका आचरण या पालन किसी विशिष्ट स्थिति के लिए निहित हो।''[1] भारत का धार्मिक परिवेश विभिन्न वर्गों में विभक्त था, इन वर्गों में, हिन्दू–जैन, मुस्लिम, बौद्ध, सिक्ख और ईसाई प्रमुख थे।

राही मासूम रजा ने धर्म को मानव सेवा धर्म के निमित्त ही देखा उनमें कहीं भी कट्टरता नजर नहीं आती है। राही के उपन्यासों में हिन्दुओं और मुसलमानों के सामाजिक संबंध कटुतापूर्ण नहीं थे। 'गांव के सीमित घेरे के अंदर हिंदुओं और मुसलमानों में मधुर संबंध है। हिन्दू मुसलमानों का यहाँ दीर्घ काल तक, विशेषतः उत्तरी हिंदुस्तान में, साथ रहा, दोनों के बीच बहुत सी आम बातें, आदतें, रहन–सहन के ढंग और रूचियाँ पैदा हो गयी थीं। वे मिलजुल कर शांति के साथ एक कौम के लोगों की तरह रहा करते थे एक दूसरे के जलसों और त्यौहारों में सम्मिलित होते थे, एक सी बोली बोलते थे ।

धार्मिक भावनाओं पर भी हिन्दू मुसलमानों के बीच अलगाव के बीज बोये गये। दोनों धर्मों के बीच के अन्तर पर अधिकाधिक बल दिया जाने लगा। दोनों के धार्मिक आचार–व्यवहार, रस्म–रिवाज में जो पार्थक्य था, उसे साम्प्रदायिक दूरी पैदा करने का हथियार बनाया जाने लगा। यह कहा जाने लगा कि दोनों के धर्म

बिल्कुल विरोधी हैं, एक मूर्तिपूजा में विश्वास रखता है, दूसरा नहीं, एक मुर्दे को जलाता है, दूसरा दफन करता है। ऐसे ही तर्कों के आधार पर दोनों सम्प्रदायों में दूरियाँ बढ़ाने की चेष्टा की जाती थी।

'ओस की बूँद' के अंतर्गत राजनीतिक चर्चा धार्मिक आधार पर है, जिसमें कहा गया है कि आज वोट मजहब के नाम पर मांगा जाता है, टिकट का बँटवारा भी इसी आधार पर आधारित है। ओस की बूँद की कथा हिन्दुस्तान–पाकिस्तान के बँटवारे से प्रारंभ होकर हिन्दू–मुस्लिम सवाल के घेरे में कैद हो जाता है। फलतः साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न होता है। समाज में दंगा होने लगता है, परिणाम निकलता है कि इंसान, इंसानियत को भूलकर एक दूसरे के जान के प्यासे हो जाते हैं, रात को हिंसा और रक्तपात होता है। प्रातः सूर्य की किरणें ओस की बूँद पर चमकती हुयी साम्प्रदायिक दंगो को इंगित करती हैं।

हिन्दी साहित्य में कई साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से समाज सुधार का कार्य किया है। राही मासूम रजा भी इससे अछूते नहीं थे, इसलिए राही की धार्मिक भावना धर्मनिरपेक्ष है।

राही धार्मिक व्यक्ति थे। धर्म के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। वे ईश्वर और अल्लाह को एक ही मानते थे। उन्होंने अपने उपन्यासों के पात्रों में धार्मिक आधार पर भेदभाव नहीं किया उनके उपन्यास के पात्र समाज के हर वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं।

राही के उपन्यास 'टोपी शुक्ला' में छुआछूत जैसी अंधविश्वास दिखाई पड़ता है। इमरान की परदादी हिंदुओं का छुआ भी नहीं खाती क्योंकि वह हिंदुओं को अछूत मानती है वह अपने बेटे की बिमारी को देखकर चिंतित हो जाती है। ''जब उसके बेटे को चेचक निकलती है तो वह चारपाई के पास एक टांग पर खड़ी हो जाती है और माता से उसके ठीक होने की दुआएँ माँगती है। माता मेरे बच्चे को माफ कर दियो।''[2]

'नीम का पेड़' उपन्यास में भी लेखक ने अंधविश्वास का वर्णन किया है। दुनिया एक पुरातन विचारों वाली नारी है। जो अंधविश्वास में डूबी हुयी है। अपनी बहू शारदा की जचगी घर पर ही होगी, क्योंकि अस्पताल पर उसका भरोसा नहीं है– ''उसकी दलील थी कि सुखीराम की पैदाइश भी तो घर में ही हुयी थी और वह इतना बड़ा आदमी बना। लेकिन शारदा को अपनी सास की इस जाहिलाना दलील पर गुस्सा आ रहा था, दुखिया कह रही थी कि अस्पताल का क्या भरोसा, वहाँ तो बच्चे बदल दिये जाते हैं।''[3]

राही मासूम रजा ने अपने उपन्यासों में धर्म के नाम पर हो रहे आडम्बरों के विरुद्ध आवाज उठाई है वे धर्म में विश्वास करते थे, लेकिन वाह्य आडंबरों से नफरत करते थे उनके अनेक उपन्यासों में आडंबरों का चित्रण किया गया है, जैसे– आधा गांव, ओस की बूँद, असंतोष के दिन, दिल एक सादा कागज, कटरा बी आरजू आदि।

उपन्यास मे लोग अपने कार्यों सिद्धि के लिए मनौतियां करते हैं। अपनी इच्छा पूर्ति के लिए मनौतियाँ मानना भारतीय समाज की विशेष परंपरा रही है। 'आधा गाँव' उपन्यास में जब फुन्नन मियां को जेल हो जाती है तब उनकी रिहाई के लिए उनकी पत्नी कुलसुम मन्नत मांगती है। ''उसने तो बड़े ताजिए के चौक पर मन्नत मांग डाली थी, लेकिन जब फुन्नन मियां की सजा हो गयी तो इससे विश्वास को ठेस नहीं लगी। उसने सोचा शायद मौला इम्तिहान ले रहे हों या शायद दमड़िया बी ने ठीक से मन्नत ही न मांगी हो या फुन्नन शाह और चंदन शहीद उस वक्त अपनी कब्रों में रहे ही न हों और बाद में रहमत के फरिश्ते उन्हें यह बताना भूल गए हों कि दमड़िया मर के जरिए गंगोली की कुलसुम बी में कोई मन्नत मांगी है।''[4]

राही के उपन्यासों में भूत–प्रेत जैसे अंधविश्वासों का चित्रण हुआ है। 'सीन 75' उपन्यास में इस बात पर चर्चा होती है कि इमली के पेड़ पर भूत रहता है। ''न्यू ब्लॉक और ओल्ड ब्लॉक के बीच में इमली का

एक पुराना पेड़ था, जिसके बारे में हास्टल में कहानियाँ मशहूर थी कि उस पर कोई जिन्न या भूत रहता है, जो लड़कियों को परेशान करता है।''[5]

इस प्रकार राही मासूम रजा मानव धर्म के प्रबल समर्थक है। अंधविश्वास एवं कुरीतियों का खंडन किया है। हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल देते हैं। इन्होंने फिल्मों के संवाद एवं पटकथा लेखन में कार्य किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. रामचन्द्र वर्मा (संपा.), मानक हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ० 147–148
2. डॉ० राही मासूम रजा, आधा गांव, पृ० 42
3. डॉ० राही मासूम रजा, दिल एक सादा कागज, पृ0 11–12
4. डॉ० राही मासूम रजा, सीन 75, पृ0 29–30
5. डॉ० राही मासूम रजा, असंतोष के दिन, पृष्ठ 18

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

नगरीय मलिन बस्तिया : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ.अमित मालवीय
पूर्व शोध छात्र समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी,उत्तर प्रदेश,भारत

सारांश–
नगरों में रहना आधुनिक मानव पारिस्थितिकी का मुख्य आधार है। पिछले कुछ दशकों में नगरों की वृद्धि और विस्तार शीघ्रता से हुआ है। नगर रोजगार और शिक्षा का स्रोत हैं और आर्थिक वृद्धि का केन्द्र भी हैं तथापि वे गरीबी असमानता और पर्यावरणीय स्वास्थ्य आपदा का भी स्रोत हैं। जनसंख्या वृद्धि के साथ साथ जिस तरह नगरीकरण तथा औद्योगीकरण नेप्राकृतिक और सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न की हैं उनमें मलिन बस्तियाँ भी एक ज्वलंत सस्याहै। मलिन बस्तियों का विकास परिस्थितिवश उत्पन्न एक समस्या है जिसमें समुदाय का एक बड़ा वर्ग हिस्सा लेता है। झुग्गी एक अत्यधिक आबादी वाला नगरीय आवासीय क्षेत्र है जिसमें ज्यादातर खराब अधूरे पड़े अधोसंरचना की स्थिति में आवासहीन इकाइयाँ हैं जो मुख्य रूप से गरीब लोगों द्वारा बसाईं गईं हैं। यह नगर का एक हिस्सा है जहां आवास की गुणवत्ता कम है और रहने की स्थिति खराब है।

मुख्यशब्द–बस्तिया, नगर,समस्या, मकान,क्षेत्र

औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने नगरों में अनेक समस्याओं को उत्पन्न करने का श्रेय दिया जाता है। इनमें गंदी बस्तियाँ भी एक प्रमुख समस्या है। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक समाजएवं प्रत्येक राष्ट्र में यह समस्या पाई जाती है। भले ही इसका स्वरूप भिन्न हो अंतर केवल मात्रा का हो सकता है। भारत के विभिन्न नगरों में गंदी बस्तियों का नाम पृथक् पृथक् है। उदारणस्वरूप कोलकाता में स्लम को बस्तीदिल्ली में इसे झुग्गि–झोपड़ी मुम्बई में चॉल या झोंपड़पट्टीचेन्नई में पेरी तथा कानपुर में इसे अहाता कहा जाता है। भारत में स्लम के नाम में भले ही क्षेत्रीय भिन्नता पाई जाती हो लेकिन इन सभी मलिन बस्तियों में भौतिक विशेषता समान पाई जाती है। स्लम को 'एक आवासीय क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जहां आवास जीर्णता अतिवृष्टि वेंटिलेशन या स्वच्छता सुविधा की कमी और अस्वच्छ परिस्थितियों में पीने के पानी की असुविधा के कारण मानव आवास के लिए अयोग्य हैं। जबकि भारत की अर्थव्यवस्था में पिछले कई दशकों से लगातार उछाल आ रहा है और स्वच्छ भारत अभियान (स्वच्छ भारत मिशन)दूसरे वर्ष में प्रवेश कर रहा है। विश्व में 360मिलियन गरीब नागरिक हैं जो सबसे अधिक जीर्ण परिस्थितियों में रहते हैं। मलिन बस्तियाँ हमारे देश का अपरिहार्य और अंधकारमय पक्ष बन गई हैं।

वर्तमान समय में गंदी बस्तियों की समस्या ने राष्ट्रव्यापी रूप धारण कर लिया है। इस एक समस्या ने अनेक सामाजिक समस्याओं का फैलाव करने में प्रमुख भूमिका निभाई है। चूँकि इन बस्तियों में मध्यम एवम् निम्न वर्ग के परिवार रहते हैं तथा इनकी आय के स्रोत एवम् आय इतनी सीमित रहती है जिससे ये अपने परिवार के सदस्यों का भरण पोषण सुचारू रूप से नहीं कर पाते। इन बस्तियों में अपराध बाल अपराध वैश्यावृत्ति मद्यपान मादक द्रव्यों को रखनेका स्थल एवम् अन्य अनैतिक कार्य होते हैं और गंदी बस्तियां अनैतिकता का अड्डा बन जाती हैं। इन बस्तियों में आधारभूत सुविधा जैसे पानी हवा बिजली रोशनी स्नानगृह की कमी व शौचालय अपर्याप्त जल निकासी की व्यवस्था एवं ठोस अपशिष्ट व कचरे के निपटान आदि की उचित व्यवस्था न होने के कारण यह बस्तियां वायु तथा जल जनित बीमारियों का घर बन गई

हैं। अधिकांश महिलाएं व बच्चे बीमार व रोग ग्रस्त होते हैं जिन्हें दवाइयां व इलाज की व्यवस्था न होने के कारण नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है।

सामान्य रूप से जब नगर की जनसंख्या में अधिक वृद्धि होती है, तो केन्द्र में बसने वाली जनसंख्या नगर की बाहरी सीमा पर बसने लगती है। यह एक ग्रामीण क्षेत्र होता है, लेकिन नगर के लोगों के बसने के कारण इसे उपनगर कहा जाता है और यह नगरीय विशेषता को दर्शाने लगता है। उपनगर से जुड़ने के साथ शहर या नगर महानगर में परिवर्तित हो जाता है। इसे महानगरीय नगर भी कहा जाता है।

वर्तमान में औद्योगिक केन्द्रों में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि हुई है एवं उसी के अनुपात में मकानों का निर्माण न हो पाने के कारण वहाँ अनेक गन्दी बस्तियाँ बन गई है। विश्व के प्रत्येक प्रमुख नगर में नगर के पाँचवें भाग से लेकर आधे भाग तक की जनसंख्या गन्दी बस्तियों अथवा उसी के समान दशाओं वाले मकानों में रहती है। नगरों की कैंसर के समान इस वृद्धि को विद्वानों ने पत्थर का रेगिस्तान, व्याधिकी नगर, नरक की संक्षिप्त रूपरेखा आदि कहकर पुकारा है। गन्दी बस्तियों में मकान अन्धेरे व सीलन युक्त होते हैं। इनमें शौचालय, स्नानघर, पानी, बिजली, हवा एवं रोशनी की पर्याप्त सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। साथ ही इनमें मच्छर, खटमल, छिपकलियों, चूहों और बीमारी के कीटाणुओं की बहुलता पाई जाती है। यह निवास की अर्द्ध मानवीय दशा है और यह मानवीय जाति की शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से कमजोर पीढ़ी को जन्म दे रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार, गन्दी बस्ती एक मकान, मकानों का एक समूह या क्षेत्र है जिसकी विशेषता भीड़–भाड़ युक्त, पतनोन्मुख, अस्वस्थ्य दशा तथा सुविधाओं का अभाव है। इन दशाओं अथवा इनमें से किसी एक के कारण इसके निवासियों अथवा समुदाय के स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं नैतिकता को खतरा उत्पन्न हो जाता है।

गन्दी बस्तियों के विकास के कारक

प्राकृतिक प्रकोप जब कभी प्राकृतिक प्रकोप होता है अर्थात् अकाल, अतिवृष्टि, भूकम्प एवं संक्रामक रोग आते हैं, तो लोग अपने घर को छोड़कर सुरक्षित स्थानों पर चले जाते हैं और वहीं जनाधिक्य के कारण गन्दी बस्तियाँ पनपने लगती हैं। जनसंख्या में वृद्धि जनसंख्या वृद्धि जितनी तीव्र गति से हुई है, उसी तीव्र गति से मकानों का निर्माण नहीं होने से लोगों के लिए आवास का अभाव पैदा हुआ और लोग भीड़–भाड़ युक्त मकानों में अथवा एक ही मकान में कई परिवार एकसाथ रहने लगे फलस्वरूप गन्दी बस्तियाँ पनपीं है औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने गन्दी बस्तियों को जन्म दिया। उद्योगों में काम करने के लिए गाँव से आने वाले लोगों को निवास के लिए जब कम किराये पर अच्छे मकान उपलब्ध नहीं होते हैं, तो वे गन्दे मकानों में रहने लगते हैं अथवा खाली पड़ी भूमि पर अनधिकृत अधिकार कर कच्चे मकान बना लेते हैं। नगर की परिधि एवं उद्योगों के आस–पास उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों द्वारा ऐसी ही बस्तियों का निर्माण किया जाता है। नगरीय आकर्षण नगरों में मनोरंजन, चिकित्सा, पुलिस, न्यायालय, नल, बिजली, शिक्षा आदि की सुविधाओं के कारण लोग आकर्षित होकर वहाँ निवास के लिए आते हैं। उनके लिए आवास के अभाव के कारण नगरों में गन्दी बस्तियों का निर्माण एवं प्रसार होने लगता है। सामाजिक पृथक्कता जातीय भेदभाव के कारण भारतीय नगरों में जातिगत मोहल्ले पाए जाते हैं। एक जाति के लोग एक स्थान पर ही रहते हैं। निम्न जातियों की बस्तियों अपेक्षाकृत अधिक दयनीय स्थिति में हैं। उच्च जातियों से सम्पर्क के अभाव के कारण निम्न जाति के व्यक्ति निवास की उत्कृष्ट दशा ग्रहण नहीं कर पाते। गन्दी बस्तियों के निर्माण का प्रमुख कारण गरीबी है। लोगों के पास इतना पैसा नहीं होता है कि वे ये स्वास्थ्यप्रद एवं अच्छे मकानों को लेकर रह सकें। परिणामस्वरूप वे सस्ते किराये के मकानों में रहते हैं, जो गन्दी बस्तियों में ही उपलब्ध होते हैं।

देशान्तरगमन आज लोगों में गतिशीलता बढ़ी है। यातायात की सुविधा ने भी इस प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया है। लोगों में देशान्तरगमन करने की बढ़ती प्रवृत्ति ने नगरों में बसने का आकर्षण पैदा किया और वहाँ गन्दी बस्तियों को जन्म दिया। करोड़ों की संख्या में बांग्लादेश से आए शरणार्थियों ने गन्दी–बस्तियों के विस्तार में योगदान दिया है।

मकानों की कमी नगरों में मकानों के अभाव के कारण लोगों को मजबूरी में गन्दी बस्तियों में रहना पड़ता है। मकानों की माँग की तुलना में पूर्ति कम होने से वहाँ मकानों के किराये बढ़ जाते हैं। भू–स्वामी और सम्पन्न लोग एक–एक कोठरी वाले ऐसे मकान बनाते हैं जिसमें श्रमिक लोग रह सकें। इन मकानों में सुविधाओं का अभाव होता है और धीरे–धीरे ये क्षेत्र गन्दी बस्तियों में बदल जाते हैं।

सरकारी प्रयत्नों का अभाव गन्दी बस्तियों के विकसित होने का एक कारण स्वयं सरकार द्वारा श्रमिकों एवं इन बस्तियों में सफाई सुविधा, आदि के प्रति उपेक्षा बरतना है। सरकार यदि मकान मालिकों को निवास के निर्माण एवं सफाई के समुचित निर्देश दे और स्वयं भी उसके लिए स्वच्छ कालोनियाँ बनाए, तो गन्दी बस्तियाँ विकसित नहीं हो पाएँगी। ऐसे ही कुछ उदाहरण और भी हैं जैसे–शोषण एवं हृदयहीनता, श्रमिकों की अधिकता, निम्न वर्गों की अधिकता, गन्दी बस्तियों का दृष्टिकोण, व्यापारिक उन्नति और ग्रामीण बेकारी आदि।

गन्दी बस्तियों के प्रमुख क्षेत्र

भारत में अधिक जनसंख्या होने के कारण गन्दी बस्तियों की भीषण समस्या उत्पन्न हुई है। वर्तमान में गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों की करोड हो गई है। निरन्तर नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण इन बस्ति लगभग की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। भारत के प्रमुख शहरों, विशेषकर महानगरों में इनकी संख्या सर्वाधिक पाई जाती है।

मुम्बई में इन्हें चाल, कानपुर में अहाते, कोलकाता में बस्ती, चेन्नई में दिल्ली में कटरा, खान क्षेत्रों में घोक्रो, बागान क्षेत्रों में वैरेक्स कहा जाता इन गन्दी बस्तियों की प्रमुख विशेषता अनेक मंजिले मकान जिसमें हवा, रोशन और जल एवं बिजली की उचित व्यवस्था नहीं होती, उनमें स्वास्थ्य एवं सरर्थक सुकियाओं का पूर्ण अभाव होता है। एक ही कमरे में कई–कई लोग निवास करते है सुति का वातावरण प्रदूषित होता है अर्थात मानवीय जीवन के लिए आवश्यक की मूलभूत सुविधाओं का अभाव पाया जाता है, इसलिए नेहर ने इन्हें कारक हुन्छ। मत संज्ञा दी थी। मसानी कहते हैं कि विश्व की रचना ईश्वर ने की है, नगत मानव ने और अम बस्तियों की शैतानों ने।

गन्दी बस्तियों के दुष्परिणाम

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में आवास एवं गन्दी बस्तियों की गम्भी समस्या है और यह आधुनिक समाज के लिए चुनौती है। आवास की दुर्दशा अनेक आर्थिक, सामाजिक, वैयक्तिक एवं पारिवारिक दोषों को जन्म देती है और राष्ट्रोष प्रगति को अवरुद्ध करती है। हमने यहाँ आवास सुविधाओं एवं गन्दी बस्तियों के दुष्परिणामों का उल्लेख किया है

स्वास्थ्य का ह्रास आवास की दुर्व्यवस्था होने एवं गन्दी बस्तियों में रहने से लग के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मानव के लिए शुद्ध हवा, जल एवं रोशनी अति आवश्यक है। इनके अभाव में कई प्रकार की बीमारियाँ फैलती है। डॉ. अमर नारायण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक इण्डस्ट्रियल हाउसिंग इन इण्डिया में लिखा है, मुम्बई की चालें, कानपुर, लखनऊ और हारा की आन्तरिक बस्तियाँ, जूट मिल के गाँव वाले छप्पर, कोयले की खानों के गर्द घावरे तथा चेन्नई के औद्योगिक कस्बों के गन्दे छप्पर सभी तपेदिक और दूसरे श्वास रोगों के घर बन गए हैं। गन्दी बस्तियों में मृत्यु दर अन्य स्थानों की अपेश अधिक है।

नैतिक पतन और अपराध गन्दे वातावरण में रहने के कारण लोगों की मनोवृति अपराधी बन जाती है और उनका नैतिक पतन हो जाता है। उनमें बोरी, वेश्याही शराबखोरी और जुआ खेलने की आदतें जन्म लेती है। गन्दी बस्तियों में बौन अधिकार अधिक पाए जाते हैं। गरीबी के कारण बच्चे इधर–उधर घूमते हैं, किल्ल बाल अपराध और आवारागदीं पनपती है। डॉ. मुखर्जी ने लिखा है, औद्योगिक केन्द्रो की इन असंख्य गन्दी बस्तियों में मनुष्यता का निःसन्देह हो निर्दयता के साथ गला घोंटा जाता है, नारीत्व का अपमान होता है और शिशुत प्रारम्भ से ही विषपान कराया जाता है।

निम्न जीवन–स्तर गन्दी बस्ती में रहने वाले व्यक्तियों की कार्यक्षमता जिसका प्रभाव उनकी आय पर पड़ता है और कम आय होने पर उच्चजीवन–स्तरव्यतीत करना सम्भव नहीं हो पाता। यहाँ तक कि लोग अपनी आवश्यकताओं को जुटाने में असमर्थ होते हैं।

आय में कमी आवास की बुरी व्यवस्था व्यक्ति की कार्यक्षमता घटाती है. जिसमें फलस्वरूप व्यक्ति की आय कम हो जाती है और वह गरीबी की स्थिति से छुटकारा पाने में असमर्थ होता है।

श्रमिकों की कुशलता पर प्रभाव श्रमिकों को कुशलता के लिए, आवश्यक है कि उनका स्वास्थ्य भी अच्छा हो। मकान ऐसे हो जहाँ शुद्ध हवा व रोशनी हो, ताकि वे अपनी थकावट दूर कर सकें एवं कार्य करने की क्षमता को पुनः प्राप्त कर सके, किन्तु स्वच्छ एवं पर्याप्त मकानों के अभाव में श्रमिकों की कार्यक्षमता घट जाती है।

सांस्कृतिक स्तर में ह्रास दयनीय आवास व्यवस्था के कारण लोगों के सांस्कृतिक स्तर में गिरावट आ जाती है। वेश्यागमन के कारण लोगों का नैतिक पतन हो जाता है। मुखर्जी ने एक स्थान पर लिखा है, वेश्यागमन की प्रवृत्ति से स्त्री और पुरुष दोनों के ही चरित्र दूषित होते हैं। उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है और राष्ट्र का सांस्कृतिक स्तर गिर जाता है।

राष्ट्र को हानि आवास की दुर्व्यवस्था के कारण श्रमिकों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। इससे उनकी कार्यक्षमता घट जाती है तथा औद्योगिक तनाव एवं संघर्ष पैदा होते हैं। इन सभी का राष्ट्रीय उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। सरकार को समाज कल्याण के लिए अधिक पैसा खर्च करना पड़ता है।

गन्दी बस्तियों की समस्या को हल करने के लिए किए गए प्रयास

1– कम आय वर्ग आवास योजना वर्ष 1954 में प्रारम्भ की गई। इस योजना के अन्तर्गत उन लोगों को मकान बनाने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है जिनकी मासिक आय 700 से अधिक न हो। इस योजना की अधिकतम ऋण राशि 14500 तक हो सकती है। वर्तमान में इसे प्रधानमन्त्री आवास योजना के अन्तर्गत शामिल किया जा चुका है।

2– ग्रामीण आवास योजना यह योजना वर्ष 1957 में शुरू हुई। इसके तहत आवासों के उन्नयन हेतु 6000 तथा आवासों के निर्माण हेतु 12000 प्रदान किए जाते हैं।

3– गन्दी बस्तियों के पर्यावरण का सुधार यह योजना वर्ष 1972 में प्रारम्भ की गई। इसके अन्तर्गत गन्दी बस्तियों में पीने के पानी, जल–मल निकास, स्नानघर व शौचालय बनाने, रोशनी का प्रबन्ध व गलियों को चौड़ा एवं पक्का करने के लिए राज्य सरकार को वित्तीय सहायता दी जाती है।

4– इन्दिरा आवास योजना यह योजना वर्ष 1985–86 से प्रारम्भ की गई। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों–जनजातियों और मुक्त किए गए बंधुआ मजदूरों और गैर–अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजातियों की श्रेणियों में आने वाले ग्रामीण गरीबों के लिए मकान बनाए जाते हैं। इस योजना के तहत आवास निर्माण हेतु 70,000 की धनराशि दी जाती है। वर्तमान में यह योजना भी प्रधानमन्त्री आवास योजना में समाहित की जा चुकी है।

5– आवास वित्त योजना इस योजना में केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं बीमा कम्पनी सम्मिलित रूप से बीमित व्यक्ति को सस्ते मूल्य पर आवास देने हेतु कम ब्याज पर ऋण प्रदान करती है। वर्ष 1988 में राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना की गई है। यह बैंक, हुडको के माध्यम से भूमि विकास एवं वित्तीय कार्यक्रम चला रहा है।

6– कुटीर ज्योति कार्यक्रम हरिजन परिवारों सहित आदिवासी और गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले ग्रामीण परिवारों के जीवन–स्तर में सुधार के लिए भारत सरकार द्वारा वर्ष 1988–89 में कुटीर ज्योति कार्यक्रम चलाया गया। इसका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों के लिए विद्युत कनेक्शन उपलब्ध कराने के लिए 400 की सरकारी सहायता उपलब्ध कराना है।

7– अम्बेडकर वाल्मीकि मलिन बस्ती आवास योजना इस योजना को प्रधानमन्त्री द्वारा औपचारिक ढंग से 2 दिसम्बर, 2001 को प्रारम्भ किया गया था। इस योजना का उद्देश्य शहरी क्षेत्रों की मलिन बस्तियों में रहने वाले गरीब और निर्बल वर्गों के लोगों को आवासीय इकाइयों की व्यवस्था करना है। इसके अन्तर्गत इन क्षेत्रों में रहने वाले गरीब अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्गों तथा अन्य कमजोर वर्गों के परिवारों को वहन योग्य मूल्य पर आवासीय सुविधा उपलब्ध कराना है।

8– निर्मल भारत अभियान योजना इसकी घोषणा प्रधानमन्त्री द्वारा 15 अगस्त, 2002 को की गई। योजना का मुख्य उद्देश्य गन्दी बस्तियों में सामुदायिक शौचालयों की सुविधा को विस्तारित करना बताया गया है।

9– स्मार्ट सिटीज मिशन इस मिशन की शुरुआत वर्ष 2015 में की गई। यह मिशन पूर्ण तथा एकीकृत योजना के सिद्धान्तों पर शहरी इको–सिस्टम के विकास करने के विचार पर आधारित है, जो सतत एवं समावेशी विकास पर बल देता है। केन्द्र द्वारा प्रायोजित इस मिशन के दृष्टिकोण का उद्देश्य उन शहरों को बढ़ावा देना है, जो मूलभूत अवसंरचना उपलब्ध करा सके तथा अपने नागरिकों को एक विशिष्ट गुणवत्तापूर्ण जीवन, साफ और सतत पर्यावरण तथा स्मार्ट समाधान का अनुप्रयोग दे सके। वर्तमान में कुल 100 स्मार्ट सिटीज की घोषणा सरकार द्वारा की जा चुकी है। उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु सर्वाधिक स्मार्ट सिटीज प्राप्तकर्ता राज्य हैं।

10– समेकित मलिन बस्ती एवं विकास कार्यक्रम इस कार्यक्रम की शुरुआत सरकार द्वारा राष्ट्रीय मलिन विकास कार्यक्रम और बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना को मिलाकर की गयी थी। इसका उद्देश्य मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों को पर्याप्त आवासीय और मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। केन्द्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा 80:20 के अनुपात में इस कार्यक्रम के लिए वित्तपोषण किया जाता है। 2008–09 तक इसके तहत प्रति मलिन परिवार 80,000 की राशि जारी की जाती थी जिसे बढ़ाकर वर्तमान में 1,00,000 कर दिया गया है।

11– प्रधानमन्त्री आवास योजना इस योजना का शुभारम्भ 25 जून 2015 को किया गया। इसका उद्देश्य वर्ष 2022 तक सभी को आवास उपलब्ध कराना है। इस योजना के लाभार्थी के लिए 70,000 के लोन की भी व्यवस्था है तथा 12,000 अलग से, शौचालय निर्माण हेतु प्रदान करने का प्रावधान है।

गन्दी बस्तियों के सुधार हेतु सुझाव

1– मकान निर्माण के लिए विभिन्न संस्थाओं द्वारा दिए जाने वाले ऋण में वृद्धि की जाए, किस्तों में रियायत की जाए, ब्याज की दर घटाई जाए और इस कार्यक्रम का विस्तार किया जाए।

2– श्रमिकों का निवास स्थान औद्योगिक केन्द्रों से दूर होने पर उनके लिए निवास से काम के स्थान तक यातायात की सुविधा का प्रबन्ध किया जाए।

3– श्रमिक बस्तियों में बाजार, औषधालय, स्कूल, खेल के मैदान, पार्क, डाक व तारघर आदि की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ।
4– श्रमिकों को दिए गए भवन निर्माण हेतु ऋण व भुगतान उनके वेतन में से काटने की व्यवस्था की जाए।
5– केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार के कर्मचारियों को आवास सम्बन्धी दी जाने वाली सुविधाएँ श्रमिकों के लिए भी लागू की जाएँ।
6– जो सेवायोजक श्रमिकों के लिए भवन बनाना चाहे, उन्हें भूमि एवं ऋण की सुविधाएँ दी जाएँ।
7– राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी इस सन्दर्भ में कुछ सुझाव दिए हैं जैसे– औद्योगिक नगरों में सरकार स्वयं आवास की व्यवस्था करे, प्रत्येक राज्य में आवास बोर्ड गठित किए जाएँ, भवन निर्माण करने वाली सहकारी समितियों का गठन किया जाए, भूमिहीन मजदूरों को घर के स्वामित्व का अधिकार दिया जाए, ग्रामीण मजदूरों एवं अन्य व्यक्तियों के लिए सरकारी योजनाएँ चलती रहनी चाहिए।

सन्दर्भ सूची : –

1 तिवारी, श्रीमती शारदा. 2007, नगरीय समाजशास्त्र अर्जुन पब्लिशिग हाऊस पृष्ठ संख्या 182,185।

2 जैन, शशी. 2012, नगरीय समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर पृष्ठ संख्या 150.151।

3 खत्री,रीया. भारत में नगरीय समाजशास्त्र 2018 कैलाश पुस्तक सदन भोपाल पृष्ठ संख्या 260 263।

4 तिवारी,आर.सी. अधिवास भूगोल 2017, प्रवालिका पब्लिकेशन्स इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 319।

5 खत्री, हरीश कुमार, नगरीय भूगोल 2018, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल पृष्ठ संख्या 277।

बुंदेलखंड के कुचबँधिया समुदाय का अध्ययन

सौरभ पाल
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांश–

विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत ने अपने संविधान के द्वारा प्रत्येक नागरिक को कुछ मूलभूत संवैधानिक अधिकारों की गारंटी प्रदान की है। इसके बावजूद कुछ ऐसे समुदाय है, जो अब तक के लोकतांत्रिक विकास का शिकार हुये है। इस पूरी अवधि में शासन और व्यापक अर्थव्यवस्था के द्वारा इनका नियमित शोषण होता रहा है, जिसके कारण ये समुदाय सीमांतता पर है। ऐसा ही एक सीमांत समुदाय कुचबँधिया है, जो उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र मे बिखरा हुआ है । यह समुदाय मूलतः घुमंतू है और जन्मजात अपराधी के कलंक को अपने दैनिक जीवन में आज भी धारण किये हुये है। ये आजादी के इतने वर्षो बाद भी पूरी तरह से विकास से कोसों दूर बहिष्कृत जीवन जीने के लिये बाध्य है। ये लोकतंत्र में पूरी तरह से अदृश्य और मूक बने हुये है, इसलिये लोकतंत्र और शासन से सम्बन्धित राष्ट्रीय विमर्श को प्रभवित करने में पूरी तरह से असफल रहे है। ये आज भी मूलभूत सुविधाओं के लिये सघर्ष कर रहे है, जो कि पूरी तरह से इन समुदायों को प्रदत्त संवैधानिक गारंटी की अवेहलना है।

प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से गहन क्षेत्रीय कार्य पर निर्भर है, जिसमें यह देखने का प्रयास किया गया है कि बुंदेलखंड क्षेत्र में कुचबँधिया समुदाय किस प्रकार से सीमांतीकरण का शिकार है।

कुंजी शब्द–बुंदेलखंड, कुचबँधिया समुदाय, सीमांतीकरण, पहचान संकट, कलंकीकरण, बहिष्करण।

प्रस्तावना–

बुंदेलखंड, भारतवर्ष के मध्यभाग में नर्मदा नदी के उत्तर और यमुना नदी के दक्षिण में विंध्याचल पर्वत की श्रेणियों से समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृष्टि–सौंदर्यालंकृत प्रदेश है। समय–समय पर इसके नाम दशार्ण, वज्र, जेजाकभुक्ति, जुझौती जुझारखंड तथा विंध्येलखंड भी रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विंध्याटवी में स्थित होने के कारण इस प्रदेश का नाम विंध्येलखंड पड़ा, बाद में अपभ्रष्ट हो यह बुंदेलखंड कहलाया (गोरेलाल तिवारी, 1990:1)

यह एक पठारी क्षेत्र है, जिसमें उत्तर प्रदेश के दक्षिण में 7 जनपद (झांसी, जालौन, ललितपुर, हमीरपुर, महोबा, बाँदा और चित्रकूट) और मध्य प्रदेश के उत्तर में 6 जनपद शामिल है। "बुंदेलखंड को कई महापुरुषों, वीरों और गुरुओं ने अपनी कला भूमि के रूप में ख्याति दिलाई। आदिकवि और गुरु वाल्मीकि, वेद व्यास, द्रोणाचार्य आदि इसी भूमि पर फलित हुये। बुंदेलखंड आल्हा–उदल, छत्रसाल – हरदौल, लक्ष्मीबाई की वीर भूमि भी रही है। सूर, तुलसी, केशव, भूषण, ईसुरी गुप्त आदि कवियों की यह तपोभूमि बनी "(बी0 आर0 आद्रे, 2010)।

उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। इस क्षेत्र के कई जनपदों में घुमन्तू समुदायों की एक बड़ी संख्या निवासरत् है। ये समुदाय इस क्षेत्र में दोहरा सीमांतीकरण सह रहे है। पहला बुंदेलखंड की भौगोलिक परिस्थिति ऐसी है, जिसके कारण यह (झुआर) से प्रभावित क्षेत्र है। दूसरा इन समूहों के समक्ष आजीविका के सीमित विकल्प उपलब्ध है। ये हाशियें के भी हाशियें में है। ऐसा ही एक घुमन्तू समुदाय कुचबँधिया है, जो अकादमिक विमर्शो में पूरी तरह से उपेक्षित हैं । ये सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक

रूप से समाज के सबसे निचले पायदान पर स्थित है और आज भी अपने अस्तित्व और जीविका के लिये संघर्ष कर रहे है।

अध्ययन क्षेत्र

बाँदा, बुंदेलखंड का एक प्रमुख जनपद है। यह महर्षि वामदेव की तपोभूमि है, उन्ही के नाम पर इस जनपद का नाम बाँदा है। यह जनपद यमुना की सहायक नदी केन के किनारे स्थित है। इस जनपद के अंतर्गत पाँच तहसील है, जिनमें बाँदा सदर, पैलानी, बबेरू, अतर्रा और नरैनी है। इस जनपद के कई गाँवों, शहरी और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में कुचबँधिया समुदाय छोटी–छोटी बस्तियों में निवासरत् है। इस जनपद के अतर्रा तहसील के महुआ ब्लॉक के खम्हौरा गाँव के अंश कुचबँधियन डेरे में मैंने अपना अध्ययन मार्च 2021 से दिसम्बर 2021 के दौरान किया है। इस डेरे में लगभग 76 परिवार निवासरत् है, जिनकी जनसंख्या लगभग 331 है।

कुचबँधिया कौन है?

कुचबँधिया, कंजर जाति की एक उपजाति है। नेस्फील्ड के अनुसार "कंजरों की सात उपजातियाँ है, लेकिन मुख्य रूप से चार ही है– कुचबन्ध/कुचबँधिया जो झाड़ू बनाते है, पत्थरकट– जो पत्थर काटते है, जल्लाद–जो मरे हुए जानवरों को उठाने के साथ साथ फाँसी भी देते है, रच्छबन्ध– जो जुलाहों का करघा बनाते है"(भगवानदास मोरवाल, 2008:44)। कुचबँधिया शब्द किसी भाषा विशेष से न सम्बन्धित होकर व्यवसाय से सम्बन्धित है । प्राचीन काल में, इस समुदाय के सदस्य बुनकरों के लिये कूच का निर्माण करते थे, जिसकी सहायता से बुनकर करघों पर उलझे धागों की सफाई करते थे। कूच बाँधने के कारण इन्हें 'कुचबँधिया' नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। ये स्वयं को महाराणा प्रताप का वंशज मानते है । ये अपने आपको गिहारा कहते है, जिसकी पुष्टि इनके लोकगीतों में भी होती है। ऐसे ही एक लोकगीत की कुछ पंक्तियॉ निम्न प्रकार है –

"माना, मुनईया, सिबुआ गिहारा खईबा–कमईबा कू जंगलों मा गाहीं,
गंगा, मईया बढ़री जा रईरी, गंगा से, माता से कह दों, ओ माता,
थोरी झुरा जइयों हमाकू खईबा–कमईबा कू टैमें हुरि जा रईरी। "

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में कुचबँधिया समुदाय को अपराधिक जनजाति की सूची में सम्मिलित किया गया था। रसल और हीरालाल (1975) के अनुसार "कुचबँधिया, कंजर जाति के बहुत ही प्रतिनिधित्वपूर्ण भाग है। यह सामुदायिक रूप से अपराधी नहीं है या वह दूसरे से किसी स्तर से कम नहीं है। इस समुदाय के सदस्य स्वयं को राजपूत मानते है, इसलिये उत्पत्ति की दृष्टि से इन्हें वर्ण व्यवस्था के दूसरे स्तर पर रखा जा सकता है। उत्तर प्रदेश में, 1981 की जनगणना के अनुसार, इस समुदाय के लोगों की संख्या 50,752 थी। इनकों उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र में गिहार, पथरकट, सिर्किपाल (खस घास से चटाई बनाने वाले), कुचबँधिया (ब्रश बनाने वाले) और रेचबंध (कछुए पकड़ने वाले) के नाम से भी जाना जाता है (माता प्रसाद, 2007)।

कुचबँधिया समुदाय का सामुदायिक जीवन–

कुचबँधिया समुदाय की पारिवारिक संरचना भील समुदाय के सदृश्य पायी जाती है, जो सभ्य हिन्दू व्यवस्था से भिन्न है (दोषी 1971:75)। इस समुदाय में संयुक्त परिवार का अभाव होता है। परिवार की प्रकृति एकल होती है। विवाह के छः माह बाद ही नवविवाहित दम्पत्ति को परिवार से अलग कर दिया जाता है और वे नवविवाहित दम्पत्ति अपना स्वतंत्र परिवार बनाते है। इस समुदाय में पितृसत्तात्मक व्यवस्था होती है। अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त जानकारी के अनुसार कुचबँधिया समुदाय में 7 कुरी (गोत्र) है।

कुचबँधिया अंतर्विवाही समूह है। एक ही कुरी में विवाह इनमें वर्जित है, लेकिन सोदा कुरी के उपविभागों में आपस में विवाह हो सकता है। इनमें मामा–बुआ के बच्चों के साथ विवाह हो सकता है। इस समुदाय में विधवा विवाह को मान्यता है । समुदाय में पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं है । ये हिन्दू धर्म का अनुसरण करते है। घुरिये (1957: 28) ने राजपूतों से अपनी उत्पत्ति मानने के कारण इन्हें पिछड़े हुये हिन्दू कहा है। ये माना के उपासक है । इन्हें ये अपना देवता ही नही बल्कि गुरू मार्गदर्शक और पूर्वज मानते है । ये अपने देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिये जानवरों की बलि चढ़ाते है।

कुचबँधिया समुदाय के सदस्य आपसी बातचीत में एक विशेष भाषा, जिसे ये पारसी भाषा कहते है, प्रयोग मे लाते है। ये अपने ही समान घुमंतू समुदायों को 'बारह वाले' जबकि अन्य को 'तेरह वाले' कहते है और उन्हें 'काजरो' (बाहरी) के नाम से सम्बोधित करते है। ये 'बारह वाले' समुदाय पारसी भाषा को आसानी से समझते है। इससे सम्बन्धित एक बहुत ही रोचक किस्सा समुदाय के एक सदस्य ने प्रस्तुत किया "एक बार एक जोगी (सपेरा) सांप को पकडने के लिए गया हुआ था, किन्तु गलती से वह सांप को पकडने में असफल हो गया और सांप ने उसे डस लिया, तभी वहाँ से एक राही गुजर रहा होता है, तो जोगी उसे रोकते हुये कहता है, कि भाई मुझे सांप ने डस लिया है, मै तो मरने वाला हूँ, इसलिये ये पोटली (जिसमें कुछ धन होता है) मेरे डेरे में पहुँचा देना और वहाँ जाकर कहना कि, 'आठ चीयॉ, नौ चीयॉ इसी काजे ने लिया, बारह वाले हो तो जान जाओं, तेरह वाला लिये जाता।' राही वह पोटली लेकर उसके डेरे में पहुँच कर वही शब्द दुहराता है तो डेरे के लोग उससे कहते है कि आठ चीयॉ और नौ चीयॉ जो सोने की लाये हो उसे दो, तो राही बहुत अचम्भित होता है और पूछता है कि आप लोगों को कैसे पता कि पोटली में सोने की चीयॉ थी, तब डेरे के लोग बताते है कि अभी आप ही ने तो हमारी भाषा (पारसी) में हमे बताया है।

कुचबँधिया समुदाय और सीमांतीकरण –

जब कुछ विशिष्ट समूह या समुदाय मुख्यधारा से सामाजिक –आर्थिक आधारों पर विलग होने लगते है, तो यह प्रक्रिया सीमांतीकरण कहलाती है। यह परिवर्तन की एक नकारात्मक प्रक्रिया है, जिसमें विकास के प्रयत्नों के बावजूद दोषपूर्ण नीतिओं की वजह से या दुर्बल समूहों की स्वयं की असमर्थताओं के चलते वे विकास का लाभ पाने से वंचित हो जाते है। यह विकास और परिवर्तन का अकार्यात्मक पक्ष है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके कारण कुछ समूह सत्ता और सुविधाओं का लाभ प्राप्त करने लगते है, जबकि सीमांत समूह विकास का लाभ पाने से वंचित हो जाते है।

सामाजिक–अर्थिक स्थिति –

कुचबँधिया समुदाय, सामाजिक स्तर के सबसे निचले पायदान पर है। इन्हें आज भी अस्पृश्यता का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक कि शक्तिशाली दलित जातियों ने भी इन्हें अपने से पृथक रखा हुआ है और इनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार करते है। कुचबँधियन डेरे के एक सदस्य धोनी पुराने समय की बात याद करते हुये बताते है, कि "काफी समय पहले उनके पूर्वज पंद्रह–सोलह के जत्थे में गधों के ऊपर अपना सामान लादकर एक गाँव से दूसरे गाँव में डेरा डालकर घरेलू उपयोग की वस्तुओं को बेचकर जीविकोपार्जन करते थे।" उस समय समुदाय की आर्थिक स्थिति काफी बेहतर थी, क्योंकि समुदाय के द्वारा निर्मित वस्तुओं की ग्रामीण अंचलों में काफी माँग थी। ये मुख्यतः सिलबट्टा, टाँकने, कूच, मुसका, सिकहर, झबिया, छींका आदि वस्तुओं को बेचकर भरण–पोषण करते थे। परन्तु वर्तमान विकास के नये आयामों ने इनके परम्परागत व्यवसाय को पूरी तरह से अप्रासंगिक बना दिया है। जिसके कारण इन्हें दूसरे व्यवसायों की ओर अग्रसर होना पड़ा है। इसका परिणाम यह हुआ कि इनकी आर्थिक स्थिति बद से बदतर होती

चली गई, क्योंकि जिन कार्यो में इन्हें दक्षता प्राप्त थी, उसका इन्हें त्याग करना पड़ा। इस समय समुदाय के ज्यादातर सदस्य कपड़ों की फेरी, सूखे मेवे (डाई –फ्रूटस) बेचने ,कूड़ा बीनने, मजदूरी करके भरण–पोषण कर रहे है। इस डेरे में एक भी व्यक्ति सरकारी नौकरी में नहीं है।

पहचान संकट–

कुचबँधिया समुदाय अपनी विशिष्ट अस्मिता चाहते है। इसके लिये इनका दावा है कि ये गिहारा है और मूल रूप से आदिवासी है, जो कालांतर में समतल भूमि में बस गये। वर्तमान समय मे सरकारी आँकड़ों में इनकी पहचान 'कंजड़' के रूप में दर्ज है, जोंकि उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति की श्रेणी में सम्मिलित है। 'कुचबँधिया' नाम उत्तर प्रदेश के सरकारी आँकड़ों में कहीं दर्ज नहीं है, जबकि मध्य–प्रदेश में इन्हें एक जाति विशेष के रूप में पहचान प्राप्त है। इस समुदाय के सदस्य सरकारी दस्तावेज़ों में 'कंजड़' शब्द से अपनी पहचान नहीं चाहते है, क्योंकि यह एक 'गाली सूचित' शब्द है। इसी कारण इनकी माँग है कि इन्हें 'गिहार' नाम से सरकारी दस्तावेज़ों में पहचान प्राप्त हो और उन्हें अनुसूचित जनजाति की श्रेणी के अंतर्गत सम्मिलित किया जाये। जिससे ये सरकारी योजनाओं का लाभ प्राप्त कर सके और इनके समुदाय के जो नवयुवक दसवीं और बारहवीं तक की शिक्षा प्राप्त किये है, उन्हें सरकारी नौकरी मिल सके। इस समय यह समुदाय अनुसूचित जाति के अंतर्गत कंजड़ और कुचबँधिया के बीच में झूल रहा है और अपनी वास्तविक पहचान के लिये संघर्ष कर रहा है।

कलंकीकरण–

कुचबँधिया समुदाय आज भी जन्मजात अपराधी के कलंक को अपने दैनिक जीवन में ढो रहा है, जिसके कारण ये सामाजिक कलंक और पूर्वाग्रह का शिकार है। पुष्पा मैत्रेयी (2000) के अनुसार, ''ऐसे समुदायों के पुरुष या तो जंगल में रहते है, या जेल में इनकी स्त्रियाँ शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर रहती है। अंग्रेजों के गजटो–गजेटियरों में उनके नाम है– 'अपराध कबीले' या 'सरकस जातियाँ', जैसे–कंजर, कुचबँधिया, कबूतरी, बहेलिया के ये लोग अपना सम्बन्ध रानी पद्मिनी और महाराणा प्रताप, शिवाजी और झाँसी की प्रति–रानी झलकारी बाई से बताते है।''

खम्हौरा गाँव के कुचबँधियन डेरे के अधिकांश सदस्यों ने बताया कि जब वे व्यावसायिक गतिविधियों के लिये ग्रामीण अंचलों और कस्बों में जाते है, तो जब इनसे इनकी पहचान पूछी जाती है तो ये अपनी पहचान, 'कुचबँधिया,' के स्थान पर, 'गिहार ठाकुर,' बताते है, जिससे इन्हें संदेह की दृष्टि से न देखा जायें । जब भी ये व्यवसाय के लिये अपने जिले से बाहर या फिर दूसरे प्रदेश में जाते है तो इन्हें नजदीकी पुलिस चौकी में 'मुसाफिरी' के नाम से अपनी उपस्थिति दर्ज़ करानी पड़ती है और साथ ही पहचान पत्र की प्रतिलिपि जमा करना पड़ता है। यदि ये अपनी उपस्थिति दर्ज़ नहीं कराते है, तो इन्हें क्षेत्र–विशेष में चोरी होने पर पुलिस के द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। फिर भी समुदाय के सदस्यों को यह महसूस होता है, कि यह तो उनका कर्तव्य है और अगर वे अपनी उपस्थिति नहीं दर्ज़ करा रहे है तो यह उनकी गलती है। ऐसा इसलिये है क्योंकि सरकार, पुलिस और तथाकथित सभ्य समाज द्वारा इनका समाजीकरण इस तरह से कर दिया गया है। इस डेरे के अधिकांश परिवारों के पास कृषि योग्य भूमि और दुधारू पशु नहीं है। डेरे के अधिकांश परिवार भोजन निर्माण के लिये आवश्यक जलावन लकड़ी के लिये वनों पर निर्भर है। परन्तु वर्तमान आधुनिक विकास के नाम पर तेजी से वनों को साफ कर दिया गया है। इस स्थिति में ये गांव के ही वृक्षों और गौधन के ऊपर निर्भर है, क्योंकि इनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। अतः ये अधिकाशतः गाँव के ही वृक्षों की लकडियों और कण्डों (उपली) का प्रयोग कर लेते है। इसलिए इन्हें गाँव

के लोगों के द्वारा लकड़ी–चोर और कण्डा–चोर कहकर सम्बोधित किया जाता है और अपशब्द भी कहा जाता है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी ये आपराधिक कलंक से मुक्त नहीं हो पाए है।

बहिष्करण

कुचबँधियन डेरे के दस से पन्द्रह परिवारों को ही सरकारी आवास प्राप्त हुये है, इसके अतिरिक्त अधिकांश परिवारों के घर या तो पन्नी के बने हुये है या फिर कच्चे झोपड़ीनुमा है। नालियों का निर्माण न होने और कच्ची सड़क होने के कारण बरसात में काफी समस्याओं का सामना करना पड़ता है । पचहत्तर प्रतिशत परिवारों के पास आधार कार्ड, निवास प्रमाण–पत्र है। इस डेरे में स्वच्छता का अभाव है। केवल दो परिवारों के पास ही शौचालय है। शौचालय के निर्माण के लिये इन लोगों ने एक स्वयं सहायता समूह 'विद्याधाम समिति' की मदद से कई बार सम्बन्धित अधिकारियों के समक्ष ज्ञापन और धरना प्रदर्शन किया। परन्तु इस संदर्भ में इन्हें कोई बहुत सकारात्मक परिणाम प्राप्त नहीं हुआ है। बार–बार धरनें और ज्ञापन के परिणामस्वरूप एक सामुदायिक शौचालय का निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ, परन्तु भ्रष्टाचार की भेट चढ़ जाने के कारण उसका निर्माण कार्य भी अपूर्ण है। समुदाय की स्त्रियाँ खुले में शौच और स्नान के लिये बाध्य है, जिसके कारण इन्हें सदैव अपने साथ छेड़छाड और अमानवीय कृत्य होने की आंशका बनी रहती है। डेरे की महिलाओं ने बताया कि जब वे शौंच के लिए खेतो में जाती है, तो उन्हें खेतों के मालिकों के द्वारा अपशब्द कहे जाते है और कई बार तो मार–पीट की भी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। डेरे में पानी की सुविधा बहुत अच्छी नहीं है, 331 की जनसंख्या पर केवल दो हैण्डपम्प है।

डेरे में शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है। केवल दो महिलाओं ने ही आठवीं तक की शिक्षा प्राप्त किया है, लेकिन उनकी शिक्षा की गुणवत्ता भी बहुत अच्छी नहीं है। इस समय डेरे के बीस– पच्चीस बच्चों का प्राथमिक विद्यालय में नामांकन है, परन्तु अधिकांश बच्चों के माता–पिता उन्हें स्कूल भेजने के लिये जागरूक नहीं है । इस डेरे में एक भी प्राथमिक विद्यालय नहीं है । जिस प्राथमिक विद्यालय में बच्चों का नामांकन है,उसकी दूरी इनके डेरे से तीन से चार कि0 मी0 है। प्राथमिक विद्यालय के रास्ते में एक तालाब है। जिसमें बरसात के समय काफी जल भराव हो जाता है और बच्चों के डूबने की आशंका बनी रहती है, इस डर की भी वजह से वे अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेजना चाहते। इस डेरे के सबसे ज्यादा शिक्षित व्यक्ति 'राजकुमार' है, उन्होंने स्नातक किया हुआ है परन्तु वे भी सरकारी नौकरी पाने में असमर्थ रहे हैं। इस डेरे के एक अन्य सदस्य 'राजा गिहार' अपने डेरे के बच्चों की शिक्षा के लिये समुदाय के सदस्यों को जागरूक कर रहे है। इनकी एक पुत्री ने हाल ही में कस्तूरबा गाँधी आवासीय विधालय में प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण किया है।

उपसंहार

बुंदेलखंड के कुचबँधिया समुदाय की सामाजिक–आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। बिना किसी तकनीकी कौशल के अभाव में ये आज जीविकोपार्जन के लिये अपने परम्परागत व्यवसाय पर निर्भर है, जो वर्तमान विकासात्मक प्रक्रियाओं के चलते अप्रासंगिक हो चुके है। आज इन्हें अपनी अस्मिता की पहचान के लिये संघर्ष करना पड़ रहा है। वास्तविक पहचान के अभाव में ये लोकतंत्र मे अपनी आवाज सक्षम रूप से प्रस्तुत नहीं कर पा रहे है । सरकार, पुलिस और स्थानीय समुदाय द्वारा इन्हें पैदाइशी अपराधी के नजरिये से देखा जा रहा है और आसानी से शोषण का शिकार बनाया जा रहा है। ये पूरी तरह से सरकार की नीतियों के लाभ से वंचित है। यदि भारत को एक सक्षम लोकतंत्र बनाना है तो सबसे बुनियादी पहलू यह है, कि ऐसे सीमांत समुदायों के सदस्यों को नागरिक होने का दर्जा दिया जाये। इसके अलावा सरकार को

यह भी जरूरत है कि वह इनकी आवाज को सुने, इनके मन को समझने का प्रयास करे और इनकी जरूरतों को समझ कर उसी के अनुरूप कल्याणकारी उपाय करे।

संदर्भ सूची–

- आंद्रे, बी. आर. (2010). मराठों के अंतर्गत बुंदेलखंड 1720–1818 मराठा बुंदेला संबंधो का एक अध्ययन. नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन.
- Doshi, S.L. (1971). Bhils : Between Societal Self – awareness and Cultural Synthesis. New Delhi : Sterling Publishers Private Lt.
- Ghurye, G.S. (1975). Caste and Class in India. Bombay : Popular Book Depot.
- मैत्रेयी, पुष्पा. (2000). अल्माकबूतरी. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- मोरवाल,भगवानदास. (2008). रेत–कंजर समुदाय के सामाजिक तानेबाने के अन्तर्कथा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- प्रसाद, माता. (2007). उत्तरांचल सहित उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज. नई दिल्ली : सम्यक् प्रकाशन.
- Russell, R.V. and Hiralal. (1975). Tribes and Caste of the Central Provences of India. Vol. 3. Delhi : Rajdhani Book Center.
- सिंह, जितेंद्र (2018). "बुंदेलखंड के सीमांत पर स्थित एक समुदाय का गुणात्मक अध्ययन", सामाजिक विमर्श, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, अंक.1(2).
- तिवारी, गोरेलाल. (1990).बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास. प्रयाग : इण्डियन प्रेस, लि0.

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

उत्तर प्रदेश में ग्राम पंचायत

कंचन वर्मा
शोध छात्रा, समाजशास्त्र
डॉ0 सत्य प्रकाश गुप्ता
समाजशास्त्र विभाग, का0सु0साकेत पीजी कालेज अयोध्या

ग्राम पंचायत अधिनियम 1994 में कहा गया हजार की जनसंख्या पर प्रत्येक राजस्व ग्राम एक ग्राम पंचायत गठित करेगी। यदि किसी ग्राम की जनसंख्या एक हजार से कम है तो उसे समीप के ग्राम में मिला दिया जायेगा। ग्रामों के इस समूह को पंचायत क्षेत्र कहा जाता है। ग्रामों के इस समूह में सर्वाधिक जनसंख्या वाले राजस्व ग्राम के नाम पर ही ग्राम पंचायत का नाम रखा जायेगा। प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था लागू होने के बाद प्रथम चार आम चुनाव सन् 1991 की जनगणना के आधार पर हुए थे, लेकिन 2015 को पंचम निर्वाचन 2011 की जनगणना के आधार पर हुआ। इस वर्ष जिस ग्राम सभा की जनसंख्या एक हजार से ऊपर हो गयी थी, वहाँ पर ग्राम पंचायत का गठन कर दिया गया।23 सन् 2021 में पंचायतों के निर्वाचन में 58194 ग्राम पंचायतों का गठन किया गया। इनमें से 19659 स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया और वहाँ पर महिला प्रधान चुनी गयी।[1]

प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक प्रधान तथा 9 से 15 सदस्य होने की व्यवस्था की गयी है। एक ग्राम पंचायत में सदस्यों की संख्या के सम्बन्ध में कहा गया है कि किसी भी ग्राम पंचायत की जनसंख्या एक हजार होने पर 9 सदस्य होंगें। यदि ग्राम पंचायत की जनसंख्या एक हजार से दो हजार के मध्य है तो 11 सदस्य होंगे। दो हजार से तीन हजार के मध्य होने पर सदस्यों की संख्या 13 होगी। यदि किसी ग्राम पंचायत की जनसंख्या तीन हजार से अधिक है तो वहाँ ग्राम सभा में 15 सदस्य होंगें। सन् 2021 के ग्राम पंचायत निर्वाचन में ग्राम सभा के सदस्यों की संख्या सम्पूर्ण प्रदेश में 731813 थी।[2]

ग्राम पंचायत का गठन ग्राम प्रधान एवं सदस्यों से होता है जिनका चुनाव अपने क्षेत्र के वयस्क मतदाताओं द्वारा किया जाता है। ग्राम प्रधान को सम्पूर्ण ग्राम के मतदाता चुनाव करते हैं जबकि सदस्यों का चुनाव वार्ड के मतदाता करते हैं। ग्राम प्रधान एवं सदस्यों के लिए निम्न योग्यताएँ होनी चाहिए–

- 21 वर्ष की आयु पूरी हो।
- ग्राम पंचायत की मतदाता सूची में उनका नाम हो।
- किसी लाभ के पद पर न हो।

ग्राम पंचायत के सदस्यों के निर्वाचन के लिए ग्राम सभा को कई वार्डों में विभाजित कर दिया जाता है। ग्राम पंचायत का चुनाव कराने के लिए एक राज्य निर्वाचन आयोग का गठन किया गया है। यही आयोग शहरी निकायों का भी चुनाव करवाता है।

ग्राम पंचायत की बैठकें वर्ष में दो बार होना आवश्यक होता है, जिसमें ग्राम के सभी सदस्य शामिल हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर ग्राम पंचायत का विशेष अधिवेशन भी बुलाया जा सकता है। इस बैठक में किये गये कार्यों की पुष्टि (अनुमोदन) तथा भावी कार्यों की योजना बनायी जाती है।

ग्राम पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित किया गया है यदि किसी ग्राम पंचायत में प्रधान या सदस्य का पद समय से पूर्व रिक्त हो जाता है तो अधिकतम 6 माह के अन्दर वहाँ चुनाव सम्पन्न करा

लिया जायेगा। सामान्य कार्यकाल समाप्त होने के पूर्व ग्राम पंचायतों का चुनाव राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा सम्पन्न करा लिया जाता है। निर्वाचित ग्राम प्रधान को ब्लाक के मुख्य विकास अधिकारी या शासन द्वारा नामित अधिकारी पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं।[3]

ग्राम पंचायतों को कौन–कौन सी शक्तियाँ प्राप्त है और उनके द्वारा किन उत्तरदायित्वों का निर्वहन किया जायेगा। इसका उल्लेख संविधान की 11वीं अनुसूची में किया गया है, जो निम्नलिखित है–4

1. कृषि का विकास एवं विस्तार
2. भूमि सुधार एवं मृदा संरक्षण
3. लघु सिंचाई, जल प्रबन्धन और जल आच्छादन विकास
4. पशुपालन, दुग्ध उद्योग और कुक्कुट पालन
5. मत्स्य उद्योग
6. सामाजिक वनोद्योग और फार्म उद्योग
7. लघु वन उत्पाद एवं लघु उद्योग
8. खादी ग्राम्य एवं कुटीर उद्योग
9. ग्रामीण आवास
10. पेयजल की व्यवस्था
11. ईंधन एवं चारा
12. सड़क, पुलिया, पुल, नौघाट, जलमार्ग तथा संचार के अन्य साधन
13. नाला एवं नाली की सफाई और जल की निकासी
14. ग्रामीण विद्युतीकरण
15. गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत
16. गरीबी उन्मूलन
17. ग्राम पंचायत क्षेत्र में प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय की व्यवस्था की देखभाल।

इस प्रकार ग्राम पंचायते क्षेत्र की समस्याओं के साथ जुड़ी हुई है। गाँव के विकास में पंचायतें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। इससे सत्ता का विकेन्द्रीयकरण हुआ है और शासन की शक्ति निचले स्तर तक पहुँचाने का प्रयास हुआ है। ग्राम पंचायतों को संवैधानिक दर्जा मिलने के पूर्व चुनाव या कार्यकाल की कोई समय सीमा निर्धारित नहीं थी। पाँच वर्ष के बाद कभी पंचायत चुनाव हो जाते थे। कई बार देखा गया है कि 10 से 15 वर्ष का समय चुनाव कराने में लग जाता था। हाँ यह बात सत्य है कि पहले गाँव का संभ्रान्त व्यक्ति प्रधान या सरपंच होता था, लेकिन आज गाँव के पेशेवर लोग इस पद पर पहुँच रहे हैं।

सन्दर्भ सूची–

1. दैनिक जागरण, 58194 ग्राम पंचायतों में से 19659 महिला प्रधान चुनी जायेगी, 13 फरवरी 2021
2. दैनिक जागरण, इन पदों पर होना है चुनाव, 13 मार्च 2021
3. अमर उजाला, ग्राम पंचायतों का गठन आज, 26.12.2015
4. ग्यारहवीं अनुसूची में ग्राम पंचायतों के मद

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

भारतीय ग्रामीण समाज में आवासीय दशाएं : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

सुमित यादव
शोध–छात्र : समाजशास्त्र

प्रो0 अनिल कुमार श्रीवास्तव
अध्यक्ष– समाजशास्त्र विभाग
जवाहर लाल नेहरू स्मारक स्नातकोत्तर महा0, बाराबंकी (उ0प्र0)

सार्वभौमिक सत्य के रूप में यह स्वीकार किया जाता है कि भोजन, वस्त्र एवं मकान मानव जीवन की जैविकीय एवं सामाजिक–सांस्कृतिक मौलिक आवश्यकता है। इनमें से मकान भौतिक रूप में प्राकृतिक एवं सामयिक आपदाओं तथा विपत्तियों से सुरक्षा करने में उपयोगी तो होते ही हैं, साथ ही समाज संरचना के अन्तर्गत व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा प्रतिष्ठात्मक स्थिति के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति की आवासीय संरचना उसकी महत्त्वपूर्ण महत्वाकांक्षाओं में से एक होती है। भौतिक तथा आर्थिक कारकों से निर्धारित होने वाला यह आवासीय तथ्य प्रत्येक समाज में अपना अलग–अलग प्रतिमान रखता है।

यू.एन. हैवीटाट कान्फ्रेन्स के अनुसार मकान का तात्पर्य व्यक्ति या उसके परिवार के आवास की एक इकाई से है जिसका कुछ भाग गैर आवासीय कार्यों, के लिए भी प्रयुक्त होता है (यू.एन.ओ., 1976 : 219)। निफेन का विचार है कि मनुष्य की आवासीय दशा उसके सांस्कृतिक विरासत, प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं और गैर सांस्कृतिक पर्यावरण के सकारात्मक क्या नकारात्मक पक्षों को भी प्रतिबिम्बित करती है (निफेनः 1965:549)। संयुक्त राष्ट्रसंघ की विभिन्न संस्थाओं और प्राधिकरणों ने मकान को भौतिक पर्यावरण तथा सांस्कृतिक आवरण माना है। इस प्राधिकरण के अनुसार मकान उन सभी प्रकार की सहायक सेवाओं और सामुदायिक सुविधाओं को समन्वित करता है जो मानव कल्याण के लिए आवश्यक हैं। मकान की अवधारणा के अन्तर्गत सामुदायिक सुविधाएं, सामाजिक सुविधाएं और सेवाओं का समन्वय है (यू.एन.ओ. : 1976)। सामान्य रूप से आवासीय दशाओं के अन्तर्गत उन भौतिक संरचनात्मक दशाओं को लिया जा सकता है जो व्यक्ति को सुरक्षा, सुख–सुविधा तथा शान्ति प्रदान करती हैं। सील ने यह माना है कि आवासीय दशाएं या आवासीय व्यवस्थापन वे भौतिक संरचनात्मक दशाएं होती हैं, जिन्हें व्यक्ति अपनी सुरक्षा के लिए निर्मित करता है और उसमें वे सभी सेवाएं, उपकरण उपलब्ध होते हैं जो व्यक्ति तथा उसके परिवार की शारीरिक एवं मानसिक कुशलता के लिए आवश्यक और अपेक्षित होती हैं (सील : 1971 : 210)।

आदिम युग में मानव की भोजन सम्बन्धी आवश्यकताएं जब पूरी हुईं तो उसने सर्वप्रथम आवास ढूंढ़ने की कोशिश की, जिससे उसको प्राकृतिक संरक्षण प्राप्त हो सके। कालान्तर में यही सुरक्षात्मक भावना धीरे–धीरे गौण होती गयी और आधुनिक समय में आवास व्यवस्था सामाजिक–आर्थिक तथा प्रतिष्ठात्मक स्थिति की मापदण्ड हो गयी है। समाज में आवासों के प्रतिमान समाज विशेष की भौतिक तथा सामाजिक दशाओं पर निर्भर करते हैं, इसलिए आवासीय दशाओं में होने वाला परिवर्तन मानव और उसके पर्यावरण के अभियोजन में होने वाले परिवर्तन को परिलक्षित करता है (सिंह, आर. एल. तथा अन्य : 1973 : 185) और ग्रामीण समाज संरचना के सन्दर्भ में यह सत्य पूर्णतया लागू होता है। ग्रामीण समाज में सामान्यतः मकान की संरचना में परिवर्तन को उस व्यक्ति की सामाजिक– आर्थिक स्थिति में परिवर्तन का सूचक बिन्दु स्वीकार

कर लिया गया है। होवेल के अनुसार आवासों के प्रकार एवं उनकी संरचना में भिन्नताएं स्थानीय जलवायु, उपलब्ध सामग्री, जीविकोपार्जन सम्बन्धी आर्थिक दशाओं, सामाजिक संगठन की प्रकृति तथा बाहरी शत्रुओं के आक्रमण सम्बन्धी भय की प्रकृति पर निर्भर करती है (होवेल : 1958 : 215)।

हसन तथा मदान (हसन : 1967 : 52; मदान : 1979 : 112) ने निवास सम्बन्धी दशाओं को व्यक्ति के सामाजिक जीवन तथा उसके स्वास्थ्य एवं बीमारी में एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया है। शोर का विचार है कि आवासीय दशाओं की अनुपयुक्तता व्यक्ति में निराशाभाव, शिथिलता, असन्तुष्टि, एकाकीपन, सामूहिक आनन्द की अप्राप्ति, लोगों का संगठनों के प्रति द्वेष–भाव, उपयुक्त साधनों के अभाव में यौन उत्तेजना, पारिवारिक व्यवस्था तथा परिवार में तादात्मीकरण की समस्या, पड़ोस या पड़ोस के बाहर सामाजिक सम्बन्धों की स्थानापन्न मूलक समस्या और नागरिक सुविधाओं सम्बन्धी अन्यान्य समस्याएं उत्पन्न करती है (शोर : 1964 : 20–21)। आावासीय दशाओं की पर्याप्तता के अभाव में मानव अपनी विभिन्न महत्वाकांक्षी पारिवारिक एवं सामाजिक योजनाओं को कार्य रूप में परिणत नहीं कर पाता जिससे उसमें तनाव एवं कुण्ठाग्रस्त मानसिकता का प्रादुर्भाव होता है, जो पारिवारिक कलह के साथ–साथ वैयक्तिक एवं पारिवारिक विघटन तथा असन्तोष को जन्म देती है। एन्जोरियों तया नानावती ने यह माना है कि आवासीय दशाओं का समूहों की एकीकरण सम्बन्धी क्रियाओं से घनिष्ठ प्रकार्यात्मक सम्बन्ध होता है (एन्जोरियों तथा नानावती : 1970 : 207) टाउनसेंड का मत है कि निम्न आवासीय दशाएं व्यक्ति में निम्न आत्ममूल्यांकन, निम्न महत्वाकांक्षा एवं निम्न उपलब्धि उन्मुखता उत्पन्न करती हैं (टाउनसेंड : 1970 : 144)। असुविधायुक्त मकान संरचना पारिवारिक विकास में व्यवधान पैदा करती है। इस तरह स्पष्ट होता है कि आवासीय दशाएं व्यक्ति और समूहों में आत्मसन्तुष्टियों और अन्तर्सम्बन्धों को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है।

आवासीय दशाओं के प्रभाव के सन्दर्भ में लेविस (1961), डेविस (1946), शोर (1964), कार्टर (1963), जयराम एण्ड सन्धू (1988), मोहन्थी (1984) और ब्लूड तथा हसन (1967) के अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि परिवार व्यवस्था में बच्चों के पालन–पोषण, उन पर पारिवारिक नियन्त्रण, स्त्री तथा पुरुष सदस्यों के यौन सम्बन्धों की गोपनीयता तथा परिवार के सदस्यों के बीच अन्तर्सम्बन्धों आदि पर आवासीय दशाओं का प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। ग्रामीण समाज संरचना में गोपनीय स्थानों के अभाव के परिणामस्वरूप ही अनुसूचित जातियों में पारिवारिक विघटन के फलस्वरूप दूसरी पीढ़ी में ही संयुक्त परिवार, एकाकी परिवार का रूप ग्रहण करते दिखायी पड़ते हैं। यौनिक तनाव और दाम्पत्य जीवन में स्वच्छन्दता का अभाव इत्यादि, आवासीय अपर्याप्तता से जनित समस्याएं, युवाओं को अपने माता–पिता से काटकर, अलग अपनी गृहस्थी बसाने की दिशा में बाध्य कर देती हैं। लेविस के अनुसार जिन घरों में बच्चों के रहने के लिए तथा खेलकूद के लिए उपयुक्त स्थान नहीं होता, प्राय उन परिवारों के बच्चे बाहर ही जीवन व्यतीत करते हैं। यहाँ तक कि छः वर्ष की आयु में ही इनके ऊपर से पारिवारिक नियन्त्रण समाप्त हो जाता है (लेविस : 1961)। घरों का अभाव ही किशोरों में विभिन्न अपराधी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देता है। नगरीय समाज में बाल अपराधों के अध्ययन इस कारण को स्पष्ट करते हैं तथा ग्रामीण समाज में अनुशासनहीनता, बच्चों में विभिन्न किस्म की कुण्ठा, आवासीय दशाओं का ही परिणाम होती है। डेविस ने अपने अध्ययन में पाया कि जिन घरों में आवास का अभाव है अथवा रहने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं होता, उन घरों में लोग अपनी नींद पूरी नहीं कर पाते हैं, जो उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालती है (डेविस : 1946)। शोर का कथन है कि निम्न आवासीय वाले तंग घरों में, जहाँ बच्चे माता–पिता के साथ सोते हैं, बच्चों में यौन उत्प्रेरणा उत्पन्न होती है (शोर 1964 : 115)। कार्टर और ब्लूड के अनुसार जिन तंग घरों में बच्चे अपने माता–पिता के साथ सोते हैं, उनमें माता–पिता से द्वेष की भावना तथा तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है

(कार्टर : 1963 : 115)। हसन के अध्ययन से परिलक्षित होता है कि आवासीय दशाएं पारिवारिक जीवन, शिक्षा, बच्चों के भविष्य निर्माण, प्रगति तथा सामान्य स्वास्थ्य को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं (हसन : 1967 : 52)। शोर के विचार से आवासीय दशाओं की अनुपयुक्तता, प्रायः परिवार में पाये जाने वाले प्राकृतिक सम्बन्धों की स्थापना में बाधा उत्पन्न करती है तथा व्यक्ति आस–पास के परिवार से, पड़ोस से या अन्य संगठनों के साथ अवांछनीय सम्बन्धों की स्थापना करने लगता है। यह स्थिति प्रायः व्यक्ति की भौतिक तथा सामाजिक गतिशीलता में बाधक होती है और इस प्रकार निर्धनता को बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण कारक का कार्य करती है (शोर : 1964 : 115–116)। इससे इतना तो स्पष्ट ही होता है कि अभावग्रस्त आवासीय संरचनाएं केवल असुरक्षा, अस्वास्थ्यकर स्थितियां एवं असुविधाएं ही नहीं पैदा करतीं, अपितु सामाजिक संगठन, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक नियन्त्रण, सामाजिक गतिशीलता इत्यादि में भी अवरोध उत्पन्न करती हैं, जिससे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। राजनैतिक परिवेश में ग्रामीण समाज संरचना के अन्तर्गत सुविधा सम्पन्न मकान रचना के ग्रामीण राजनीति का शिकार हो जाने एवं असुरक्षित रहने की सम्भावना ज्यादा रहती है। कतिपय ग्रामीणों का दृष्टिकोण भय एवं आतंक की सीमा रेखा को स्पर्श करता है, उनके अनुसार सुविधायुक्त मकान के प्रति असामाजिक तत्वों की रुचि अनायास ही बढ़ जाती है, किन्तु वर्तमान युग में यह दृष्टिकोण विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। इन सबके बावजूद भी व्यक्ति के जीवन में आवासीय संरचना का जो महत्व है, सम्भवत यह अन्य किसी भौतिक या सामाजिक संरचना का नहीं है।

होल के अनुसार आवासीय दशाएं व्यक्ति की समाज में पद और प्रतिष्ठा, रहन–सहन, विचार एवं चिन्तन के स्तर को ही नहीं प्रभावित करतीं, अपितु व्यक्ति की सुख–शान्ति तथा उसकी जीवन–शैली को भी निर्धारित करती हैं (होल : 1959 161–173)। देसाई के अनुसार मकान वे स्तम्भ हैं, जिस पर परिवार के सदस्यों के आन्तरिक सम्बन्धों और उसकी इकाइयों के बाहरी दुनियां से सम्बन्धों का जटिल नाटक कार्यान्वित होता है। मकान, जो कि उसमें रहने वालों का घर बनता है, उन वृद्ध सदस्यों के लिए जो समाज में अपनी भूमिका अदा करने के बाद आराममय जीवन व्यतीत करने की तथा शेष जीवन में अपने प्रति कोमल व्यवहार की आकांक्षा रखते हैं, का महत्त्वपूर्ण घटनास्थल है। आवास उन कार्यरत सदस्यों के लिए जो कार्य से खाली समय को घर में व्यतीत करते हैं, अपनी व्यावसायिक भूमिका को दक्षतापूर्ण ढंग से निभाने के लिए, थकानमुक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह वह जगह है जहाँ पर कार्मिक सुदृढ, अन्तरंग, गरिमामय तथा प्राथमिक भावनामय सम्बन्धों का अनुभव करके गौरवशाली जीवन उन्मीलित करने की अपेक्षा करता है। आवास वह मुख्य स्थान भी है जहाँ पर वर्तमान परिस्थितियों के अन्तर्गत बच्चों का समाजीकरण, पति–पत्नी और नातेदारों में सुदृढ़ अन्तरंग सम्बन्ध चरितार्थ होते हैं। मकान वह उत्पल्लवन पट है, जहाँ से परिवार के सदस्य विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक तथा जीवन के अन्य विस्तृत पक्षों में प्रवेश करते हैं (देसाई : 1980 : 76–77)।

ग्रामीण सामाजिक संरचना में आवासीय स्थिति का अध्ययन करके ग्रामीण भारत की आवासीय दशाओं के सुधार की आवश्यकता पर भी कुछ विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। मदान के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों में आावासीय दशाओं को सुधारने के लिए बड़े पैमाने पर धन के विनियोग की आवश्यकता है। भारत की अस्सी प्रतिशत जनसंख्या चूँकि गांवों में रहती है, इसलिए ग्रामीण समाज में आवासीय समस्या वृह्द है (मदान : 1973 : 293)। पार्क का कहना है कि सम्पूर्ण देश के ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय दशाएं लगभग एक सी हैं। मकान प्राय. कच्चे और बन्द हैं, क्योंकि सुरक्षा की दृष्टि से उनमें खिड़कियां इत्यादि नहीं रखी जातीं, इसलिए ये कम हवादार और कम प्रकाश वाले होते हैं (पार्क : 1971 : 87)। अरोड़ा के

अनुसार, यद्यपि अस्सी प्रतिशत जनता गांवों में रहती है, किन्तु ग्रामीण आवास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया, फलस्वरूप अन्य अर्द्ध विकसित देशों के समान इस देश में भी ग्रामीण आवासीय दशाओं का पतन हुआ है। आवासीय दशाओं में होने वाले सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक उपलब्धियों का भलीभांति अधिमूल्यन नहीं किया गया। ग्रामीण आवासीय दशाओं में सुनियोजित सुधार, ग्रामीण जीवन के आधुनिकीकरण तथा ग्रामवासियों के शिक्षा, स्वास्थ्य एवं कार्यों के प्रति विचारों में परिवर्तन ला सकता है। यह लोगों को उत्पादन सम्बन्धी योजनाओं में सहयोग देने के लिए उद्‌बोधन का कार्य कर सकता है (अरोड़ा, ए.सी. : 1979 : 254)। यद्यपि समकालीन परिवेश में प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना तथा मुख्यमंत्री आवास योजना के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र में पर्याप्त आवास एवं शौचालय बनाये जा रहे हैं फिर भी अभी और प्रयास की आवश्यकता है।

भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में इक्कीसवें दशक में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, ग्राम–नगर सम्पर्क तथा आर्थिक स्थिति में वृद्धि के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों भी नवीन सुविधाओं एवं तकनीकियों से युक्त मानचित्र के अनुसार मकानों का निर्माण होने लगा है। गांवो में झोपड़ी एवं खपरैल तथा कच्चे मकानों का स्थान धीरे–धीरे अर्द्धपक्के एवं पक्के मकान लेते जा रहे है। ग्रामीण क्षेत्र में आधारभूत संरचनाओं तथा यातायात एवं संचार साधनों के विकास के परिणाम स्वरूप पक्के मकानों के निर्माण हेतु सामग्रियों की स्थानीय उपलब्धता तथा पुराने कच्चे मकानों के निर्माण एवं जीर्णोद्धार हेतु कुशल कारीगरों के न मिल पाने के कारण पक्के मकानों के निर्माण की तरफ उन्मुखता में वृद्धि हुई है। सरकारी नीतियां, बैंकिंग प्रणाली तथा पारस्पारिक आर्थिक सहयोग की व्यवस्था ने भी ग्रामीण समाज में परम्परागत मकान की संरचनात्मक स्थिति में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है। समकालीन परिवेश में प्रायः दीवालें ईंटों की बनी हुई मिलती हैं। यदि छतें पक्की नहीं हैं तो उनपर टीन या सीमेन्ट की चादरों की अस्थायी छतें बनाई गई हैं। गांवों के मकानों में भारत सरकार की तरफ से ग्रामीण विद्युतीकरण योजना के अन्तर्गत विद्युत, स्वच्छ भारत मिशन कार्यक्रम के अन्तर्गत शौचालय तथा शुद्ध–पेय जल आपूर्ति हेतु ओवरहेड टैंक तथा हर घर नल योजना के अन्तर्गत पानी की पाइपों का विस्तार बड़ी तीव्र गति से हुआ है। आवासीय सन्दर्भ में ग्रामीण लोगों की आर्थिक स्थिति एवं बदलती आवासीय संरचनात्मक संस्कृति ने भी ग्रामीण आवासीय स्वरूप को नवीन रूप प्रदान किया है। इसमें अभी भी दिन–प्रतिदिन परिवर्तन हो रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

- Anjoria and Nanavati, The Indian Rural Problem, Indian Society of Agricultural Economics, Bombay, 1970.
- Arora, A.C., Integrated Rural Development, S. Chand & Co. Ltd., 1979.
- Bailey, F. G., Caste and the Economic Frontier, Oxford University Press, Bombay, 1958.
- Beteille, Andre, Studies in Agrarian Social Structure, Oxford University Press, Delhi, 1974.
- Carter M. P., Home School and Work, Pergaman, London, 1963.
- Davis, A. Motivation of Underprivileged Worker : Industry and Society, McGraw Hill, New York, 1946.
- Goyal S. K., "Economic Aspirations – A Sociological Study of White Collar Workers," Inter – discipline, Vol.5, No.3, 1968.

- Hasan K. A., The Cultural Frontiers of Health in Village India, Mankatalas, Bombay, 1967.
- Hoebel, E. A., Man in the Private World, McGraw Hill Book Co. Inc., New York, 1958.
- Madan, G.R., India's Social Transformation Vol. I. Problem Of Economic Development, Allied Publishers Pvt. Ltd., Bombay, 1979.
- Sachidanand Sinha, The Harijan Elite, Thomson Press, Delhi, 1977.
- Seal S. C., The textbook of preventive and Social Medicine (ed.) Allied Agency, Calcutta, 1971.
- Townsend, Peter, "Housing Policy and Poverty," in Peter Townsend, The Concept of Poverty, Heinmann, London, 1970.
- Vidyarthi, L.P. and Mishra, N., Harijans Today; Classical Publications, New Delhi, 1977.

आरक्षण एवं पिछड़ा वर्गः हरियाणा में जाट आरक्षण आन्दोलन का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

पंकज कुमार
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
इमेलः pankajmgkvp.31@gmail.com

सार :–

हाल के वर्षों में भारत के राजनीतिक पटल पर तीन महत्वपूर्ण जातीय समूहों जाट, पाटीदार एवं मराठों द्वारा सरकारी नौकरियों एवं शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश की मांग के लिए आन्दोलन और सामाजिक राजनीतिक लामबन्दी के अन्य तरीकों का प्रयोग किया जा रहा है। इन तीनों जातिय समूहों द्वारा आरक्षण के लिए किये जा रहे आन्दोलन एवं सामाजिक राजनीतिक लामबन्दी स्वतन्त्र भारत के इतिहास की एक विशिष्ट सामाजिक–राजनीतिक परिघटना है। इस परिघटना की विशिष्टता का आधार मूलतः इस तथ्य में निहित है कि ये तीनों जातियाँ अपने–अपने सम्बन्धित क्षेत्रों की जातीय संरचना में 'प्रभु जाति की प्रस्थिति धारित करती है। ये जातियाँ प्रधानतया कृषक समुदाय है जिन्हें 1960 के दशक 'हरित क्रांति' एवं 'दुग्ध क्रांति' से सर्वाधिक लाभान्वित हुई। लेकिन 1994 में नव–उदारवादी आर्थिक व्यवस्था के प्रसार और विस्तार के साथ–साथ भारतीय अर्थव्यवस्था की पुर्नसंरचना की आत्म हुई जिसके अंतर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व और देश की सकल घरेलू उत्पाद में कृषि एवं उसमें संबद्ध क्षेत्रों के योगदान में निरन्तर गिरावट आने की प्रक्रिया की शुरूआत हुई। इन समस्त प्रक्रियाओं की वजह से भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के सीमान्तीकरण ने इन तीनों जातीय समूहों को उनके वृहद् सामाजिक संरचना में इनके द्वारा धारित की गयी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रस्थिति अत्यधिक सुभेद बना दिया (जोधका : 2014)

कुंजी शब्द– हरियाणा, जाट, आरक्षण, पिछड़ा वर्ग, नव–उदारवादी राज्य।

प्रस्तावना :–

देश के विभिन्न हिस्सों में पिछड़े वर्गों ने जाति और वर्गों के माध्यम से प्रकट होने वाले विभिन्न प्रकार के भेदभाव के खिलाफ अपनी आवाज उठानी शुरू कर दी है। पिछड़े वर्गोंध्जातियों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैः

1. अनुसूचित जाति (एससी),
2. अनुसूचित जनजाति (एसटी) और
3. अन्य पिछड़ी जातियां या समुदाय (ओबीसी)।

अनुसूचित जातियाँ, जिन्हें आम तौर पर दलित या हरिजन के नाम से जाना जाता है, हिंदू जाति व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर हैं। इन्हें अक्सर वर्णों का अतिशूद्र कहा जाता है।

अनुसूचित जनजातियों को आदिवासी, आदिवासी, एनिमिस्ट, रानीपराज(जंगल में रहने वाले), गिरिजन (पहाड़ी लोग), कालीपराज (काले लोग) या आदिवासी के रूप में जाना जाता है। वे अनुसूचित जाति से जुड़े सभी सामाजिक.सांस्कृतिक कलंकों से पीड़ित नहीं हैं। फिर भी, हिंदू जाति के लोग अक्सर उन्हें 'आदिम' और 'कमजोर' मानसिकता वाले मानते हैं। उनकी आजीविका के साधन कृषि, शिकार, वन सामान इकट्ठा करना और सभी प्रकार के शारीरिक श्रम हैं।

अन्य पिछड़ा वर्ग/जातियाँ (ओबीसी) अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग हैं। विभिन्न राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त सभी पिछड़ी जातियों की जाति पदानुक्रम में समान स्थिति नहीं है। उनकी आर्थिक स्थिति भी

काफी भिन्न है (शाह, घनश्यामः 1990)। जिन ओबीसी के लिए अधिमान्य उपचार अधिकृत है, उन्हें न तो संविधान में परिभाषित किया गया है और न ही उनके पदनाम के लिए किसी विशेष विधि व्यवस्था में परिभाषित किया गया है (गैलेंटर, मार्कः 1984)।

यद्यपि भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 में धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध और सभी नागरिकों के लिए सार्वजनिक नियुक्ति के मामलों में अवसर की समानता का प्रावधान है, फिर भी अनुच्छेद 15(4) और 16(4) विशेष रूप से शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी सेवाओं में सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के नागरिकों के लिए आरक्षण प्रदान करना, जिनका राज्य के अनुसार राज्य के तहत सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है (गौरी शंकर, वी., 1990)। एससी और एसटी पर बहुत सारे शोध कार्य किए गए हैं, लेकिन ओबीसी/एसईबीसी पर बहुत कम अध्ययन किए गए हैं। भारत में अन्य पिछडा वर्गों या एस0ई0बी0सी0 वर्गों पर उपलब्ध साहित्य पिछड़ेपन के विशेष पहलू को दर्शाता है।

पिछड़े वर्ग से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण अध्ययन :–

बेहुरा (1960), बेत्ते (1965), सरकार (1965), मोंगा वीन (1967), रो विलियम (1968), दुबे और गणेश चंदर (1973), वर्मा (1974), सरस्वती (1974), राव (1978), भट (1978), ब्लेयर हैरी (1980) भगत बंकिम बिहारी (1981), बोस (1982), मेहता और पटेल (1983), पांडे (1988), शिवराम और भास्कर (1990), महेश्वरी (1991), रमइया (1992), और वर्मा (1996)। बेहुरा (1960) ने **'उड़ीसा के किसान कुम्हार'** पर एक अध्ययन किया। उन्होंने साबित किया कि रेडफील्डियन मॉडल ऑफ पिजेन्ड्री के अनुसार उड़ीसा के कुम्हार एक किसान हैं। बेत्ते (1965) ने भारतीय समाज के संदर्भ में पिछड़े वर्ग की समस्या पर अधिक वैचारिक चर्चा की। अन्य पिछड़ा वर्ग एक अवशिष्ट श्रेणी है, उनकी स्थिति अत्यधिक अस्पष्ट है, और उनकी संख्या का सटीक विवरण देना असंभव है। सरकार (1965) ने मैसूर शहर के कारीगर समूहों के बीच व्यावसायिक गतिशीलता का अध्ययन किया। इस अध्ययन में छह कारीगर समूह अर्थात कुम्हार (कुम्हार), मेदार (टोकरी बनाने वाले), शिल्पी (मूर्तिकार), बदगी (गुलाब की लकड़ी पर नकक्काशी करने वाले), इनले खेसगारू (जड़न बनाने वाले), और हुविना केल्सागारू (माला बनाने वाले) अपने पारंपरिक व्यवसाय से विचलन की मात्रा में कुम्हार और मेडर पहले और दूसरे स्थान पर आते हैं। वीना मोंगा (1967) ने गढ़ मुक्तेश्वर में ''कुम्हारों के बीच सामाजिक गतिशीलता'' शीर्षक से एक अध्ययन किया। उन्होंने शिक्षा को गतिशीलता का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना। रो, विलियम (1968) ने एक अध्ययन किया ''द न्यू चौहान उत्तर भारत में एक जाति गतिशीलता आंदोलन'' एक नोनिया समुदाय, जो बनारस से लगभग 25 मील उत्तर में स्थित है। जांच क्षत्रिय बहुल सेनापुर के बहुजातीय गांव में शुरू हुई नोनिया, एक शूद्र जाति जो म0प्र0, यू0पी0 और बिहार में पाई जाती है। अध्ययन में पाया गया कि वे (नोनिया) एक प्रसिद्ध योद्धा कबीले, चौहान राजपूत की स्थिति का दावा करते हैं। दुबे और गणेश चंदर (1973) ने ''आंध्र प्रदेश में पिछड़ा वर्ग छात्रावासों का प्रशासन'' शीर्षक से एक अध्ययन किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला उनके अध्ययन में पाया गया कि छात्रावासों में रहने वालों के लिए जगह, स्नान कक्ष की सुविधाएं, स्वच्छता की स्थिति अपर्याप्त थी। वर्मा (1974) ने कुर्मी जाति सभा का एक वैयक्तिक अध्ययन किया है। यह अध्ययन उत्तर भारत में कुर्मी सभा का सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में इसकी भूमिका एक सूक्ष्म समाजशाखत्रीय अवलोकन प्रस्तुत करने का प्रयास करता है द्य स्वतंत्रता पूर्व अवधि में संस्कृतिकरण के क्षत्रिय मॉडल को स्वीकार करके कुर्मी को उच्च अनुष्ठान प्राप्त करने का एक स्पष्ट लक्ष्य था और सत्ता के उच्च रणनीतिक संसाधनो तक पहुँच बनाने का अप्रत्यक्ष लक्ष्य था। अव्यक्त लक्ष्य अब प्रकट हो गया है। सभा का उद्देश्य पवित्र से हटकर धर्मनिरपेक्ष लक्ष्य

हो गया है। सरस्वती (1974) मद्रास राज्य में अल्पसंख्यकों पर अपने कार्य में उन्होंने पिछड़े वर्गों की समस्या को आधुनिक राजनीति में समूह हित के संदर्भ में देखने का प्रयास किया। गैर ब्राह्मण आंदोलन और जस्टिस पार्टी का गठन, ब्राह्मण वर्ण की जातियों के खिलाफ गैर ब्राह्मण वर्ण की जातियों के गठबंधन का प्रतीक है, वे गैर ब्राह्मणों के बीच एक आम भावना के कारण लाए गए और कायम रहे कि उन्हें ब्राह्मणों के उत्पीड़न से सामाजिक और राजनीतिक रूप से नुकसान उठाना पड़ा। चूंकि यह प्रयास राजनीतिक धरातल पर कारगर हो सकता है। राव (1978) ने पिछड़े वर्गों और रंग–भेद आंदोलनों के बीच स्रोतों की पहचान में धर्मशाख्र का एक विश्लेषण प्रस्तुत किया, जो भारत,संयुक्त राज्य अमेरिका जैसी विविध सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में उत्पन्न हुए हैं। इसी तरह भट्ट (1978) ने विचारधारा के आधार पर सामूहिक लामबंदी के माध्यम से समाज में पिछड़े वर्गों की समस्या को हल किया है। ब्लेयर (1980) ने अपने अध्ययन, ''बढ़ते कुलक और बिहार में पिछड़ा वर्ग'' में समझाया। बिहार में जनता सरकार (1977) की अवधि में, कर्पूरी ठाकुर मंत्रालय ने (आरक्षण के आधार पर) बिहार की राजनीतिक संरचना को बदल दिया। बंकिम बिहारी (1984) ने अपने अध्ययन, ''आरक्षणः राजनीति और परिप्रेक्ष्य'' में यह समस्या के आयामों, आरक्षण के मुद्दे पर बढ़ते आंदोलनों के संदर्भ पर प्रकाश डालता है। उन्होंने बताया कि कैसे आरक्षण नीति में राजनीति समाहित हो गयी है। प्रदीप कुमार बोस (1982) अपने अध्ययन में। ''गुजरात के कुम्हारों के उत्पादन संगठन बाजार संबंधों से पता चलता है कि उत्पादन अभी भी परिवार और रिश्तेदारी पर आधारित है, जहां बाहरी श्रमिकों की भर्ती लगभग नगण्य है। वितरण के क्षेत्र में भौगोलिक क्षेत्र सीमित है और कुम्हार बिचौलियों पर निर्भर हैं, जिससे वह लाभ कमा पाते हैं। चूंकि कुम्हार के माल की आपूर्ति सीमित है, इसलिए वह उससे अधिक उत्पादन नहीं कर पाता है की आवश्यकता है, और उसके पास गोदामों जैसी कोई सुविधा नहीं है जहाँ वह अपना माल रख सके।

एक अन्य अध्ययन में, ''गतिशीलता और संघर्षः बिहार में जातीय हिंसा की सामाजिक जड़ें'' जिसे प्रदीप कुमार बोस (1982) ने संचालित किया था, ने यह दिखाने की कोशिश की है कि जातीय हिंसा पिछड़ी जातियों की गतिशीलता, विशेष रूप से बिहार के मामले में, यादव, कुर्मी और कोइरी जैसी जातियों की गतिशीलता से जुड़ी है। पिछड़ी जातियों का गतिशीलता आंदोलन उनकी दयनीय सामाजिक आर्थिक स्थिति के प्रति आक्रोश था। 1924 में, यादवों ने अवैतनिक श्रम करने और अपने उत्पाद को जमींदारों और साहूकारों को कम दरों पर बेचने से इनकार कर दिया। अपनी जमीन पर कब्जे के अधिकार की मांग आदि के कारण जमींदारों और साहूकारों की ओर से हिंसक प्रतिक्रिया हुई, जो ज्यादातर उच्च जाति के थे और परिणामस्वरूप दंगे हुए। जमींदारों ने अहीरों द्वारा पवित्र धागा पहनने की अपील पर अहीर विरोधी आंदोलन शुरू किया। मेहता और पटेल द्वारा संपादित ''डायनैमिक्स ऑफ रिजर्वेशनपोलिटी'' (1985) पिछड़े वर्गों के आरक्षण के सवाल पर गुजरात में आंदोलन का परिणाम थी। पांडे (1988) ने अपने अध्ययन, ''शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता'' में शिक्षा की उत्पत्ति और विकास की व्यापक समझ और भारत में सामान्य रूप से अनुसूचित जातियों और अन्य पिछड़ों के बीच सामाजिक परिवर्तन और गतिशीलता लाने में इसकी सक्रिय और प्रभावी भूमिका में योगदान देने का प्रयास किया है। इस संबंध में आधुनिक शिक्षा, लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्षता और शिक्षा, नौकरी और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में सुरक्षात्मक भेदभाव का प्रावधान अनुसूचित जाति के बीच सामाजिक आर्थिक उत्थान और जीवन की परिष्कृत शैली लाने के लिए सबसे संभावित ताकतें रही हैं। शिवराम और भास्कर (1990) ने एक अध्ययन किया। अध्ययन का शीर्षक है, ''आंध्र प्रदेश के कडप्पा जिले के प्रोड्डेचर शहर में मंगलियों (नाइयों) के बीच व्यावसायिक गतिशीलता''। मंगल लोग अपने स्वयं के व्यवसाय के प्रति गलत भावना, समाज में उच्च दर्जा प्राप्त करने की इच्छा और अधिक

प्राप्त करने की इच्छा के कारण अपने पारंपरिक व्यवसाय से भटक रहे थे। माहेश्वरी (1991) और रमईया (1998) ने मंडल आयोग की रिपोर्ट की आलोचना की और निष्कर्ष निकाला कि मंडल आयोग में आरक्षण चुनावी राजनीति है। क्योंकि आयोग द्वारा अपनाई गई पद्धति में कई तकनीकी त्रुटियां हैं। वर्मा (1996) ने राजस्थान राज्य में कमजोर वर्गों के लिए कल्याण उपायों से संबंधित एक अध्ययन किया। अध्ययन का मूल उद्देश्य पिछड़े वर्गों के लिए गरीबी उन्मूलन, स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास रोजगार सृजन और अन्य सुविधाओं और सेवाओं के क्षेत्र में कल्याण उपायों की प्रगति की पहचान करना था। अधिकांश उत्तरदाताओं का विचार था कि ऋण की राशि बढ़ाई जानी चाहिए और एजेंट/बिचौलियों द्वारा कदाचार या शोषण पर अंकुश लगाया जाना चाहिए। अध्ययन से पता चलता है कि लक्षित समूहों के बहुमत (57 प्रतिशत) की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। अधिकांश लक्षित समूहों (60 प्रतिशत) ने बताया कि उन्हें प्राप्त लाभ अपर्याप्त थे, सहायता की गुणवत्ता घटिया थी और लाभ की मात्रा उनकी आवश्यकता से कम थी।

उपरोक्त सभी अध्ययन एक या दो पहलुओं से संबंधित हैं। इस प्रकार, ऐसा कोई अध्ययन नहीं है जो हरियाणा में अन्य पिछड़ा वर्ग की व्यापक तस्वीर देता हो। सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ा वर्ग (एसईबीसी) आमतौर पर ओबीसी (अन्य पिछड़ा वर्ग) के रूप में जाना जाने वाला वर्ग का आधिकारिक नामकरण है। ''पिछड़ा वर्ग'' शब्द का प्रयोग इसके संकीर्ण अर्थ में किया जाता है, अर्थात इसमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति शामिल नहीं हैं। आजकल, पिछड़ा वर्ग राजनीति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्तमान में संदर्भ में यह समस्या समाज में राजनीतिक उद्देश्यों के कारण गंभीर रूप ले चुकी है। दरअसल, सत्ता और राजनीति के क्षेत्र में इन्हें वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए आजकल समाजशासख्तरियों के लिए ऐसी सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करना एक रुचिकर क्षेत्र बन गया है।

आरक्षण एवं जाट :–

आरक्षण कोटा आधारित सकारात्मक कार्यवाही का एक रूप है। आरक्षण एक ऐसे व्यक्ति को शिक्षा, छात्रवृत्ति, नौकरी और पदोन्नति में सुविधा प्रदान करने की प्रक्रिया है जिसके पास श्रेणी प्रमाण पत्र हैं। भारत की केंद्र सरकार और विभिन्न राज्य सरकारें कुछ सामाजिक रूप से पिछड़ी जातियों को अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के रूप में वर्गीकृत करती हैं। इस श्रेणी में सूचीबद्ध जातियाँ 1991 से सकारात्मक कार्यवाही लाभ के लिए पात्र हैं। सामूहिक रूप से, इन जातियों के पास सरकारी नौकरियों, शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश और अन्य क्षेत्रों में कोटा आरक्षित है। भारत में जाट देश की आबादी का लगभग 2 प्रतिशत हैं और जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, यूपी, मध्य प्रदेश और गुजरात से लेकर उत्तर भारत के कई राज्यों में फैले हुए हैं। हरियाणा में जाटों की आबादी लगभग एक चौथाई है। यह शोध–पत्र जाटों के आंदोलन और उनके आरक्षण के मामले पर चर्चा करता है।

भारतीय समाज को एक 'विभागीय समाज' के रूप में वर्णित किया गया है, जिसमें बड़ी संख्या में ऐसे समूह शामिल हैं जो विशिष्ट और विविध जीवनशैली अपनाते हैं। भारतीय समाज की एक अनूठी विशेषता इसका जातियों में विभाजन है। सदियों से जाति, पंथ, धर्म, वर्ग आदि पर आधारित अन्याय भारतीय समाज में विवाद की जड़ रहा है। श्रेणीबद्ध असमानता की अपनी विचारधारा और निचली जातियों पर थोपी गई सामाजिक निर्योग्यताओं के साथ जाति ने हमारे सामाजिक ताने–बाने को कमजोर करेने में प्रमुख भूमिका निभाई यह आबादी के एक बड़े हिस्से को सहस्त्राब्दियों तक सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ा बनाए रखने के लिए भी जिम्मेदार है। समय के साथ, हमने सामाजिक स्तरीकरण की एक प्रणाली विकसित की है जिसमें समाज दो परस्पर विरोधी लोगों के समूहों में विभाजित हो गया है, अमीर और

अमीर। पूर्व समूह का आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सत्ता पर एकाधिकार था जो अब भी काफी हद तक जारी है और बाद वाले को जीवन के सभी क्षेत्रों में उनके अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

पारंपरिक भारतीय समाज की सामाजिक–आर्थिक शक्ति की पदानुक्रमित प्रणाली ने उच्च जाति समूहों को प्रभावशाली स्थिति में रखा है और निचली जाति समूहों को विनम्र बने रहने के लिए मजबूर किया है। आजादी के बाद भी यह प्रवृत्ति जारी रही और जो भी सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन हुआ वह आधुनिकीकरण की ताकतों और नीति के कारण सीमित पैमाने पर हुआ। आरक्षण ऊंची जातियों और वर्गों के एकाधिकार को तोड़ने में विफल रहा। इसलिए, भारतीय स्वतंत्रता के छह दशक से अधिक समय के बाद भी एससी, एसटी और ओबीसी हमारे समाज के सबसे कमजोर वर्ग बने हुए हैं।

ओबीसी में शामिल समुदाय अलग–अलग राज्यों में अलग अलग हैं। ओबीसी को 27 प्रतिशत आरक्षण है। कई अन्य जातियों की तरह, जाटों ने भी आरक्षण का लाभ पाने के लिए खुद को ओबीसी श्रेणी में शामिल करने की मांग की है। 2016 के विरोध प्रदर्शन से पहले, उन्हें पहले ही 7 राज्यों में ओबीसी का दर्जा दिया गया था। छत्तीसगढ़, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड। इसके बावजूद भी केंद्र सरकार की ओबीसी जातियों की सूची में जाटों को शामिल नहीं किया गया है।

भारत में आरक्षण :–

आरक्षण संवैधानिक कानूनों, वैधानिक कानूनों और स्थानीय नियमों और विनियमों द्वारा शासित होता है। अनुसूचित जातिख एससी), अनुसूचित जनजाति (एसटी), अन्य पिछड़ी जाति (ओबीसी), और कुछ राज्यों में बीसी (एम) नामक श्रेणी के तहत मुसलमानों के बीच पिछड़े वर्ग, संविधान के तहत आरक्षण नीतियों के प्राथमिक लाभार्थी हैं। भारतीय आरक्षण प्रणाली का प्राथमिक उद्देश्य वंचित समुदायों की बेहतर सामाजिक और शैक्षिक स्थिति के अवसरों को बढ़ाना है और इस प्रकार भारतीय समाज की मुख्यधारा में अपना स्थान पाने के लिए उनकी जीवनशैली को ऊपर उठाना है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16(4) में कहा गया है, ''अनुच्छेद 16 एवं अनुच्छेद 29 के खंड 920 में कुछ भी राज्य को नागरिकों के किसी भी सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष प्रावधान करने से नहीं रोकेगा। संविधान के अनुच्छेद 46 में कहा गया है कि ''राज्य लोगों के कमजोर वर्गों और विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष देखभाल के साथ बढ़ावा देगा और उन्हें किसी भी सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार से बचाएगा।''

आरक्षण का इतिहास :–

अगस्त 1933 में, ब्रिटेन के प्रधान मंत्री रैमसे मैकडोनाल्ड ने सांप्रदायिक पुरस्कार की शुरुआत की, जिसके अनुसार मुसलमानों, सिखों, भारतीय ईसाइयों, एंग्लो–इंडियन, यूरोपीय, दलितों के लिए अलग प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाना था। पिछड़े वर्गों (बी.सी) के पक्ष में आरक्षण आजादी से बहुत पहले एक बढ़े क्षेत्र में लागू किया गया था, जिसमें विंध्य के दक्षिण में प्रेसीडेंसी क्षेत्र और रियासतें शामिल थीं। कोल्हापुर महाराष्ट्र के महाराजा, छत्रपति साहूजी महाराज ने 1902 की शुरुआत में गैर–ब्राह्मण और पिछड़े वर्गों के पक्ष में आरक्षण की शुरुआत की थी। यह भारत में दलित वर्गों के लिए आरक्षण प्रदान करने वाला पहला आधिकारिक उदाहरण (सरकारी आदेश) था। भारतीय स्वतंत्रता के बाद भी एसटी, एससी और ओबीसी के पक्ष में कुछ बड़े महत्वपूर्ण बदलाव हुए और सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन 1979 में मंडल आयोग के रूप में हुआ। मंडल आयोग की स्थापना सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति का आकलन करने के लिए की गई थी। 1980 में, आयोग ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, और मौजूदा कोटा में बदलाव की

सिफारिश की, उन्हें 22.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 49.5 प्रतिशत कर दिया। 1990 के दशक में विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा मंडला आयोग की सिफारिशों को सरकारी नौकरियों में लागू किया गया। इस अवधि को बाद की सरकारों द्वारा नियमित रूप से बढ़ाया गया। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि भारत में आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता (जो कि संविधान द्वार प्रदत्त समान पहुंच का उल्लंघन होगा) और आरक्षण पर एक सीमा लगा दी। यह सच हो गया है कि आरक्षण का लाभ उस समुदाय के समृद्ध वर्ग तक ही सीमित है, जो वर्ग गरीब और वंचित है, उन्हें इसका लाभ नहीं मिल रहा है।

जाट और उनकी उत्पत्ति :–

भारत में जाट देश की आबादी का लगभग 2 प्रतिशत हैं और उत्तर भारत के कई राज्यों में फैले हुए हैं जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, म.प्र. और गुजरात। मूल रूप से जाट एक किसान जाति थे, और बहिर्विवाही संरक्षकों में संगठित थे। हरियाणा में जाटों की आबादी लगभग एक चौथाई है। इस समुदाय के पास हरियाणा में तीन–चौथाई कृषि भूमि है, जिसमें जाट 'जमींदार' का पर्याय है और बनिया व्यापारी का।

जाट एक 'प्रभु जाति' के विचार की पूरी तरह से पुष्टि करते हैं, यह शब्द प्रख्यात समाजशासत्री एम0एन0 श्रीनिवास ने किसी भी ऐसे समुदाय को संदर्भित करने के लिए इस्तेमाल किया था,जो गांव या स्थानीय स्तर पर संख्यात्मक रूप से मजबूत है, साथ ही भूमि पर नियंत्रण के माध्यम से शक्ति रखता है।

जाट आरक्षण और ओबीसी कोटा :–

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (एनसीबीसी) के दिशानिर्देशों के अनुसार, ओबीसी के रूप में वर्गीकृत होने के लिए, किसी जाति को निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करना होगाः सामाजिक रूप से पिछड़ापन, शैक्षिक रूप से पिछड़ापन एवं आर्थिक रूप से पिछड़ापन। 1997 में, एनसीबीसी ने दिल्ली, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के जाटों को केन्द्रीय ओबीसी सूची में शामिल करने की मांग की समीक्षा की। जुलाई 2011 में, एनसीबीसी ने सुझाव दिया कि भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएसएसआर) जाटों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करने के लिए 6 राज्यों में एक सर्वेक्षण करे। मूल योजना में एक व्यापक सर्वेक्षण शामिल था, लेकिन बाद में इसे एक नमूना सर्वेक्षण तक सीमित कर दिया गया। सामाजिक आर्थिक और जाति जनगणना 2011 (SECC) के डेटा के साथ पूरक। 19 दिसंबर 2013 को, केंद्रीय मंत्रिमंडल ने एनसीबीसी को प्रक्रिया में तेजी लाने और मौजूदा सामग्री के आधार पर निर्णय लेने के लिए कहा। परिणामस्वरूप, एनसीबीसी ने नमूना सर्वेक्षण योजना को छोड़ दिया, और आईसीएसएसआर ने फिर एक महीने का साहित्य सर्वेक्षण किया। हालाँकि, एनसीबीसी हरियाणा में जाटों की स्थिति के बारे में रिपोर्ट के निष्कर्ष से असहमत है। एनसीबीसी के अनुसार, रिपोर्ट उचित और त्रुटिपूर्ण नहीं थी क्योंकि यह रोहतक में एम.डी.यूनिवर्सिटी द्वारा किए गए 'बहुत ही चयनात्मक' सर्वेक्षण पर आधारित थी। फरवरी 2044 को, एनसीबीसी ने सर्वसम्मति से फैसला सुनाया कि हरियाणा में जाट ओबीसी मानदंडों को पूरा नहीं करते हैं।

गुरनाम सिंह आयोग और जाट :–

1994 में, गुरनाम सिंह आयोग की रिपोर्ट ने सिफारिश की कि हरियाणा के जाटों को राज्य की ओबीसी सूची में शामिल किया जाए। हालाँकि, भजन–लाल सरकार ने इन सिफारिशों को लागू नहीं किया। आयोग ने शुरू में यह विचार रखा कि चूंकि आर्थिक पिछड़ापन सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को जन्म देता है, इसलिए ऊपर बताए गए सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक मानदंडों को समान महत्व देने पर विचार किया जा सकता है। चांकि स्वतंत्र भारत में जाति–वार जनगणना बंद कर दी गई थी और जनसंख्या के

जाति–आधारित प्रतिशत के आंकड़े उपलब्ध नहीं थे, इसलिए आयोग ने अन्य विश्वसनीय स्रोतों जैसे चुनाव डेटा, सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा किए गए नमूना सर्वेक्षण आदि का सहारा लिया। जहां ऐसे अनुमानों के संबंध में बड़े अंतर थे, औसत अनुमान नियोजित किए गए थे।

अंततः आयोग ने ओबीसी की पहचान के लिए सामाजिक पिछड़ेपन को प्राथमिकता देने का फैसला किया और अहीर, कुर्मी, कोहर, जाट आदि की गणना की। इसके अनुसार जमीनी हकीकत से पता चला कि जाट की सामाजिक स्थिति हरियाणा के अन्य ओबीसी जैसे अहीर, गूजर, सैनी, लोहार के बराबर थी। कुम्हार, सुनार–खत्री, और कंभोज आदि। वे न केवल हुक्का–पानी साझा करते थे, बल्कि आपस में रसोई तक पहुंच भी बढ़ाते थे। आयोग ने तर्क दिया कि उच्च जातियाँ जैसे ब्राह्मण, बनिया, अरोड़ा, खत्री, कायस्थ और राजपूत आदि जाटों को निम्न समझते हैं, वे अक्सर भविष्य पुराण और पदम पुराण जैसे पुराणों का हवाला देते हैं, जिनमें जाटों को वर्णशंकर और मलेच्छ कहा गया है। आयोग की रिपोर्ट का राजनीतिकरण हो गया आलोचकों ने बताया कि आयोग की पूरी कवायद का उद्देश्य अहीर, बिश्लोई, गूजर, जाट, मेव, रोर, सैनी और त्यागी (सभी प्रमुख और शक्तिशाली जाति हरियाणा) को पिछड़े वर्गों की सूची में शामिल करना था। उन्होंने कहा कि आयोग ने अन्य सूचनाओं को नजरअंदाज कर दिया जो उसकी मंशा के खिलाफ थीं। रिपोर्ट विसंगतियों और विरोधाभासों से भरी थीः कई जाति समूह, जो पहले से ही हरियाणा के पिछड़े वर्गों (सुनार, तेली, खाती आदि) की सूची में शामिल थे, ने 30 से कम अंक प्राप्त किए थे, जिसके कारण उन्हें पिछड़े वर्गों की सूची से हटाना आवश्यक हो गया था। जबकि शुरू में आयोग आर्थिक पिछड़ेपन को पिछड़ेपन के अन्य तरीकों के बराबर बनाना चाहता था, अंततः उसे कहना पड़ा, ''जो आज अमीर है वह कल गरीब हो सकता है और इसके विपरीत, इसके अलावा यह मानदंड बहुत पेचीदा खेल है।'' गुरनाम आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशों का उपयोग करते हुए अखिल भारतीय जाट महासभा ने 13 मई 2008 को राष्ट्रीय पिछड़ा आयोग के समक्ष सामुदायिक मामले की पैरवी की और तदनुसार 7 जून 2008 को हलफनामा दायर किया। महासभा ने यह भी तर्क दिया कि पूरे देश में जाट समुदाय की सामाजिक स्थिति समान है, लेकिन सरकारें दिल्ली, राजस्थान, यूपी, हिमाचल प्रदेश में जाटों को पिछड़ी जाति घोषित करके उनके बीच भेदभाव कर रही हैं, जबकि हरियाणा, पंजाब और जम्मू क्षेत्र में जाटों को पिछड़ी जाति में नही माना जा रहा है। महासभा ने शैक्षिक पिछड़ेपन के संबंध में आंकड़ों का हवाला दिया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया था कि उसने सभी भारतीय राज्यों से जातिवार शैक्षिक डेटा प्रदान करने का अनुरोध किया था, लेकिन सभी राज्य इस मांग को पूरा करने में विफल रहे। आखिरकार, आयोग को सभी ग्रामीण श्रमिक और कृषक वर्गों को शैक्षिक रूप से पिछड़ा मानना पड़ा, इस तथ्य को देखते हुए कि अधिकांश जाट अपने व्यवसाय में कृषक थे। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में एक शहरी लड़के, मोहन का उदाहरण दिया था और उसकी तुलना एक ग्रामीण लड़के ललालू से की थीए जिसके पिता के पास 4 एकड़ जमीन थी और यह प्रदर्शित किया गया था कि लल्लू शैक्षणिक रूप से पिछड़ा हुआ लड़का था। 144 महासभा ने आगे कहा कि गुरनाम के अनुसार सिंह आयोग की रिपोर्ट, हरियाणा सरकार। दिनांक 05.02. 4994 के पत्र में अहीर, गूजर, जाट, जाट सिख, बिश्वोई, सैनी, रोर, त्यागी और राजपूत को पिछड़ा वर्ग घोषित किया गया। लेकिन अगली सरकार ने बिना किसी कारण के अपने राजनीतिक पूर्वाग्रह के कारण जाट और अन्य पांच जातियों को सूची से बाहर कर दिया।

2004 में, कांग्रेस नेता भूपिंदर सिंह हुड्डा ने हरियाणा के जाटों को आरक्षित कोटा देने का वादा किया, जब वह 2005 के राज्य विधानसभा चुनावों के लिए प्रचार कर रहे थे। कांग्रेस ने 2005 के चुनाव के साथ–साथ 2009 के चुनाव में भी हरियाणा में जीत हासिल की। 2014 के चुनाव से पहले, हुड्डा के नेतृत्व

वाली कांग्रेस सरकार ने जाटों और अन्य तीन जातियों को ''विशेष पिछड़ा वर्ग'' (एसबीसी) श्रेणी में शामिल किया था। भाजपा ने 2014 के राज्य चुनावों में जीत हासिल की लेकिन जाट बहुल क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम सीटें जीती। फिर भी, भाजपा ने जाटों का समर्थन किया क्योंकि वह आगामी भविष्य के चुनावों में अपनी चुनावी सफलता के लिए जाटों को महत्वपूर्ण मानती है। लेकिन बाद में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने इस एसबीसी कोटा को खारिज कर दिया।

जाट क्या चाहते हैं?

हरियाणा में जाटों द्वार आरक्षण और राज्य ओबीसी सूची में शामिल होने का मुद्दा बहुत हालिया है। यह स्पष्ट रूप से है क्योंकि राज्य में उनके समकक्षों को ओबीसी ब्रैकेट के तहत आरक्षण प्राप्त है और वे आरक्षण का लाभ उठा रहे हैं। जाट अपनी आजीविका के लिए मुख्यतः कृषि पर निर्भर हैं। वे ही लोग थे जिन्हें हरित क्रांति का फल मिला। लेकिन आज भूमि विभाजन और बीज–खाद की बढ़ती लागत के कारण वे लागत वहन करने में असमर्थ हैं। जाट बड़े पैमाने पर बेरोजगार हैं और दुर्भाग्य से वे जो चाहते हैं उसे हासिल नहीं कर पा रहे हैं। उन्हें आरक्षण की जरूरत इसलिए नहीं है क्योंकि उन्हें लगता है कि उनकी जाति पिछड़ी जाति है बल्कि उन्हे यह लगता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था युवा पीढ़ी को पर्याप्त रोजगार के अवसर प्रदान करने में सक्षम नहीं है। विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार, युवा जाट उस तरह की शिक्षा तक पहुंच पाने में सक्षम नहीं हैं जो उन्हें सेवाओं के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम बनाती। चूँकि उनमें से अधिकांश सरकारी शिक्षण संस्थानों में प्रवेश पाने में असफल हो जाते हैं, इसलिए उन्हें श्टिया' निजी शिक्षा को अपनाने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं मिलता है, जो वास्तव में अधिक महंगी होती है और इसलिए उन्हें कर्ज में डुबो देती है।

आरक्षण के लिए जाटों द्वारा आंदोलन एवं संघर्ष –

जाट आरक्षण आंदोलन फरवरी 2016 में उत्तर भारत के जाट लोगों, विशेषकर हरियाणा राज्य में विरोध प्रदर्शनों की एक श्रृंखला थी। प्रदर्शनकारियों ने अपनी जाति को अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) श्रेणी में शामिल करने की मांग की, जो उन्हें सकारात्मक कार्रवाई लाभ के लिए पात्र बनाएगी। हरियाणा के अलावा, ये विरोध प्रदर्शन अन्य राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, राजस्थान और दिल्ली में भी फैल गया।

जाट समुदाय ने इस आरक्षण मुद्दे को बहुत गंभीरता से लिया है और हरियाणा के विभिन्न जिलों में कई रैलियां आयोजित की थीं। यहां हम रैलियों के कुछ विवरण बता रहे हैंः

सोनीपत (हरियाणा) –

अखिल भारतीय जाट महासभा ने हरियाणा में जाटों के लिए आरक्षण की मांग को आगे बढ़ाने के लिए 27 अक्टूबर 2010 को सोनीपत में एक जाट महा सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया। सभा ने सरकार के समक्ष अपनी मांगें रख दी हैं और अपनी मांगों को लेकर अपनी मंशा साफ कर दी है। बहुसंख्यक जाट किसान थे। प्रदेश अध्यक्ष धर्मपाल सिंह ने कहा कि 1994 में मुख्यमंत्री बने भजनलाल ने जाटों के आरक्षण के संबंध में गुरगाम आयोग की सिफारिशें लागू नहीं कीं। उन्होंने यह भी कहा कि यहां बहुमत जाटों का है। उन्होंने यह भी कहा कि अधिकांश जाट किसान हैं और उन्हें बुआई और कटाई के मौसम में सरकार से पर्याप्त पैसा नहीं मिलता है और सब्सिडी भी कम है जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है। ओबीसी सूची में शामिल होने वाली निचली जातियां हमसे कहीं बेहतर स्थिति में हैं।

रोहतक (हरियाणा): जाट महा पंचायत –

हरियाणा आरक्षण संघर्ष समिति ने जाट समुदाय को ओबीसी श्रेणी में शामिल करने और उन्हें आरक्षण का लाभ देने की मांग पर जोर देने के लिए 19 अक्टूबर 2008 को रोहतक में एक महा पंचायत बुलाई है। महा पंचायत की अध्यक्षता कोलकाता उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश, न्यायमूर्ति देवी सिंह तवेतिया ने की अखिल भारतीय जाट महासंघ के अध्यक्ष भाले राम बेनीवाल, जो महापंचायत के लिए जाटों को एकजुट करने के लिए राज्य के विभिन्न हिस्सों का दौरा कर रहे हैं, ने कहा कि आगामी लोकसभा चुनावों में किसी भी पार्टी को जाटों का समर्थन उन्हें ओबीसी का दर्जा देने से जुड़ा होगा। उन्होंने खेद व्यक्त किया कि राज्य में बंसी लाल, ओम प्रकाश चौटाला और बी0एस0 हुड्डा जैसे जाट मुख्यमंत्रियों के नेतृत्व वाली सरकारों ने जाटों को निराश किया और उन्हें ओबीसी का दर्जा देने में विफल रही। गुरनाम सिंह आयोग की सिफारिशों को लागू करना एक प्रमुख मुद्दा होगा। उन्होंने चुनाव में जाटों से समर्थन मांगा। उन्होंने विपक्ष में रहते हुए जाटों को ओबीसी का दर्जा देने की अपनी प्रतिबद्धता को पूरा नहीं करने के लिए हुड्डा पर हमला बोला और आरोप लगाया कि उन्होंने कार्यालय में पिछले चार वर्षों के दौरान अपनी दिशा में कुछ भी नहीं किया है। उन्होंने कहा कि हरियाणा के तत्कालीन मुख्यमंत्री हुकुम सिंह ने 1991 में जाटों को आरक्षण दिया था लेकिन बाद में भजन लाल ने बाहरी कारणों से यह लाभ वापस ले लिया। उन्होंने कहा, ''आरक्षण दो, वोट पाओ'' चुनाव में जाटों का नारा होगा और अगर हुड्डा सरकार आरक्षण लागू करने में विफल रही, तो जाट सभी 10 लोकसभा क्षेत्रों में कांग्रेस की हार सुनिश्चित करेंगे। जाट महासंघ के कर्मचारी प्रकोष्ठ के अध्यक्ष रणधीर सिंह ने कहा कि शैक्षणिक संस्थानों और नौकरियों में आरक्षण नहीं मिलने से जाटों को काफी परेशानी उठानी पड़ी।

हिसार (हरियाणा, 4 सितंबर, 2010): सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण की मांग को लेकर जाट समुदाय के सदस्यों द्वारा आयोजित एक रैली में सरकारी और निजी संपत्ति को निशाना बनाकर तोड़फोड़ की गई। रैली ने हिंसक रूप ले लिया और दो लोग मारे गये। हिंसा की चपेट में हिसार भी आ गया है, जहां शहर के कुछ हिस्सों में कर्फ्यू लगा दिया गया है और सेना बुला ली गई है। हिसार–दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग 10 पर यातायात निलंबित कर दिया गया है।

अखिल भारतीय जाट आरक्षण संघर्ष समिति ने भी स्पष्ट रूप से संकेत दिया कि यदि केंद्र जाटों को ओबीसी में शामिल करने में विफल रहा तो राष्ट्रमंडल खेलों के आयोजनों को बाधित किया जाएगा। जाट आरक्षण संघर्ष समिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष यशपाल मलिक ने कहा, ''हम 26 तारीख को हरियाणा में प्रवेश करने वाली क्वीन्स बैटन को काले झंडे दिखाएंगे और अगर राज्य और केंद्र सरकार हमारी मांग मानने में विफल रही तो हम किसी भी हद तक जा सकते हैं।'' चंडीगढ़ में सीएम भूपिंदर सिंह हुड्डा ने जाट समुदाय से आंदोलन खत्म करने की अपील करते हुए पुलिस फायरिंग में मारे गए युवक के परिवार को 10 लाख रुपये का मुआवजा, परिवार के एक सदस्य को नौकरी और मामला ना दर्ज करने की घोषणा की। सुभाष यादव के खिलाफ, जिन्हें कल रात हिसार के पुलिस अधीक्षक पद से हटा दिया गया था। शुरुआती चरण में विरोध प्रदर्शन शांतिपूर्ण थे और आरक्षण की स्थिति की मांग के लिए अपनी आवाज उठाने के लिए रैलियां आयोजित की गई। इस आरक्षण मुद्दे ने रेलवे लाइनों और सड़क अवरोधों को अवरुद्ध करके अहिंसक विरोध प्रदर्शन किया है। बाद में आंदोलन ने एक बदसूरत चेहरा ले लिया। रोहतक जिले में भीड़ ने कलानौर में वाहनों, दुकानों और पेट्रोल पंप में आग लगा दी। जान–माल का भारी नुकसान हुआ। हरियाणा विधानसभा में जाट आरक्षण का बिल पास हो गया। जाट और पांच अन्य जातियां अब हरियाणा में सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण के लिए पात्र होंगी क्योंकि विधानसभा ने 29 मार्च को सर्वसम्मति से हरियाणा पिछड़ा वर्ग (सेवाओं और शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश में आरक्षण) विधेयक, 2016

पारित कर दिया। इसे मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर के नेतृत्व में पारित किया गया था। यह कदम जाटों द्वारा निर्धारित समय सीमा से पहले आया था, जिन्होंने आरक्षण की मांग पूरी नहीं होने पर हिंसक आंदोलन की धमकी दी थी। छह जातियों– जाट, जाट सिख, रोर्स, बिश्लोई, त्यागी और मुस्लिम जाट को पिछड़े वर्गों की सूची में विभाजित करके और एक अतिरिक्त अतिरिक्त ब्लॉक (सी) बनाकर शामिल किया गया है। ऐसी 77 जातियाँ हैं जो पहले से ही पिछड़ा वर्ग ब्लॉक (ए) और (बी) के अंतर्गत शामिल थीं। विधेयक के अनुसार, वर्ग I और II की सरकारी नौकरियों के लिए कुल आरक्षण प्रतिशत और वर्ग II और IV की सरकारी नौकरियों में 67 प्रतिशत तक पहुंच गया है। मुख्यमंत्री खट्ट का कहना है कि ओबीसी के लिए मौजूदा 27 फीसदी आरक्षण में कोई बाधा नहीं आएगी। ओबीसी समुदाय आरक्षण के लिए जाटों को अपनी श्रेणी में शामिल करने का विरोध कर रहा है।

निष्कर्ष :–

आजादी के बाद से आरक्षण को एक जरूरी और तत्काल उपाय के रूप में पेश किया गया था, जिसने अच्छा काम किया और एक महत्वपूर्ण सकारात्मक और स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाला परिणाम लाया जिसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन अब बदलते समय और पिछले साठ वर्षों के दौरान आरक्षण नीति के कार्यान्वयन के मिश्रित अनुभव के साथ, परिस्थितियाँ अब केवल एक माप आरक्षण से परे कुछ नौकरियों की मांग करती हैं जो दिन–ब–दिन कम होती जा रही हैं।

सभी लक्षित लाभार्थी पिछड़े समुदायों के लिए एक सामान्य रूप से संरचित मुख्य समाधान के रूप में आरक्षण का सहारा लिया गया। शुरुआती दौर में इसने अच्छा काम किया, लेकिन अब वर्कआउट करने का सही समय आ गया है इन समूहों के संपूर्ण उत्थान के लिए एक दृष्टिकोण और विशिष्ट उपाय इसमें कोई संदेह नहीं है, कि भारत जैसे विशाल और अत्यधिक विविधता वाले देश में यह एक कठिन कार्य है, जहां जातिगत वर्गीकरण की हजारों परतें हैं।

ओबीसी की समस्याएं काफी हद तक एससी और एसटी से अलग हैं। तीन लक्षित लाभार्थियों के बीच आम बात अपर्याप्त आर्थिक और शैक्षिक प्रगति है। लेकिन ओबीसी जातिगत भेदभाव और जातिगत घृणा से पीड़ित नहीं हैं, हालांकि ऊंची जातियां उन्हें सामाजिक पदानुक्रम में निचले स्तर पर मानती हैं। आरक्षण के मुद्दे को अलग थलग करके नहीं देखा जा सकता है, इसे बड़े पैमाने पर पिछड़े वर्गों और एससी और एसटी की समग्र सामाजिक स्थिति से जोड़कर देखा जाना चाहिए।

प्रसिद्ध समाजशासत्री डी0 पार्थसारथी के अनुसार, ''भारत जैसे पदानुक्रमित समाज के संदर्भ में आरक्षण की नीति विकास के लिए एकमात्र या सबसे अच्छा विकल्प नहीं है। अन्य विकल्पों में स्कूलों में मुफ्त, अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा का प्रावधान शामिल है जो सुलभ है।" सभी के लिए, वास्तविक कृषक को भूमि देकर भूमि सुधार, न्यूनतम मजदूरी का सख्ती से कार्यान्वयन, और सभी प्रकार के भेदभावपूर्ण व्यवहार पर पूर्ण रोक, चाहे वह गांवों में हो या कॉर्पोरेट क्षेत्र में। यदि ये सभी सफलतापूर्वक लागू किए गए होते, तो किसी के लिए आरक्षण की आवश्यकता नहीं होती। जनसंख्या का अनुभाग, न केवल पश्चिमी देश, बल्कि दक्षिण कोरिया, जापान और चीन जैसे पूर्वी एशियाई बाघ भी उपरोक्त उपायों को लागू करने में बहुत सफल रहे हैं। यही कारण है कि सामाजिक और आर्थिक संकेतकों के मामले में वे भारत से बहुत आगे हैं। यदि हम उपरोक्त उपायों के साथ–साथ आरक्षण की उचित रूप से डिजाइन और कार्यान्वित नीति के साथ सफल रहे, तो जल्द ही अनिश्चित काल के लिए ऐसी नीतियों की कोई आवश्यकता नहीं होगी। हम इन मोर्चों पर विफल रहे हैं और इससे भी अधिक यह जानबूझकर की गई विफलता है। चूँकि इस तरह की विफलता से पहले से ही विशेषाधिकार प्राप्त समूहों को लाभ होता है, इसलिए आरक्षण एक अपरिहार्य और

उचित विकल्प बना हुआ है। पिछड़ेपन की पहचान करने में सटीक और निश्चित मानदंडों का अभाव पिछड़े वर्गों की समस्या के निष्पक्ष मूल्यांकन में प्राथमिक बाधा के रूप में सामने आता है। इसे पहले पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति से लेकर आज तक देखा जा सकता है। प्रारंभ में, ब्राह्मणों को छोड़कर सभी को पिछड़े के रूप में पहचाना गया था। कालान्तर में जाति का उदय हुआ। यह स्पष्ट है कि ज्यादातर बार आरक्षण का लाभ या तो अगड़े वर्गों को मिला है या पिछड़े वर्गों के ऊपरी तबके को। इस बात पर शोध करने की तत्काल आवश्यकता है कि वास्तव में पिछड़े या लाभार्थी कौन हैं और उनमें से किसे लाया जाना चाहिए और उसका हकदार कौन होना चाहिए? आरक्षण, यह सुनिश्चित करने के लिए कि सामाजिक कानून का लाभ केवल योग्य लोगों को मिले। आयोग दर आयोग नियुक्त करने से पिछड़ेपन की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यह केवल सरकार की ओर से राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी को प्रदर्शित करता है। सबसे पहले, पिछड़ेपन की पहचान के लिए एक वस्तुनिष्ठ मानदंड स्थापित करने का ईमानदार प्रयास किया जाना चाहिए। दूसरा, सरकार को इस मानदंड को लागू करने के लिए आवश्यक राजनीतिक इच्छाशक्ति दिखानी चाहिए।

हरियाणा राज्य के मामले में, पहली बार भाजपा द्वारा संचालित सरकार, जिसके पास राज्य में शासन के अनुभव की कमी है, के कारण स्थिति का गलत आकलन हो सकता है। जाट आरक्षण आंदोलन 2012 से शुरू हुआ है और 2016 में, आखिरकार हरियाणा राज्य में आरक्षण मिल गया। इन तात्कालिक कानूनों के बारे में यह इतना बेतुका है कि कम संपत्ति वाले गरीब ओबीसी को आराम प्रदान करने के बजायए यह उन्हें अपने शक्तिशाली समकक्षों के खिलाफ प्रतिस्पर्धा करने के लिए मजबूर करता है। इसे लाभार्थियों की सूची में लापरवाही से विस्तार करने के बजाय आम सहमति से आरक्षण की कमजोरियों को दूर करना चाहिए। संविधान के संस्थापकों ने सपना देखा था कि नौकरी में आरक्षण का अंतिम उद्देश्य जाति व्यवस्था को खत्म करना है। लेकिन मंडल के बाद की राजनीति ने जाति के अभिशाप को बढ़ावा दियाद्य यह सच है कि भारतीय समाज में आरक्षण खत्म नहीं किया जा सकता क्योंकि इसे आमतौर पर राजनीतिक चश्मे से देखा जाता है। यदि कोई भी सरकार इसे खत्म करने की कोशिश करेगी तो समाज में भारी अशांति और हिंसा फैल जाएगी और इसका असर राजनीति में वोट बैंक पर पढ़ेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. Basu, D.D, Introduction to the Constitution of India, New Delhi: Priceton Hall of India, 2007.
2. Bingley, A.H, Jats, Gujars And Ahirs, revised by Lt.Col. R.C. Christie, New Delhi, 1937.
3. Datta, Nonica, forming an Identity: A social History of Jats, New Delhi : Oxford University Press, 1999.
4. Report of Backword Class Commision (Gurnam Singh Commission) of Haryana, 1990, pp.28 & 29.
5. www.jatland.com, 'is Jat's Demand for Reservation as O.B.C in Haryana Justified', Ariticle last Assessed on 15th may 2012.
6. Riginol Newpaper of Haryana and Chadigarh: Amar ujala, Dainik Bhaskar and The Tribuene; www. Tribune.com (2008, 2010).

7. Jat Reservation Bill unanaimously passed in Haryana Assembly, The Indian Express. 2016, 6.
8. Jat Agitation: Everything you need to know: Current Affairs. India Today. Retrieved, 2016.
9. In Fact : Jat thinks they are Backword; There is a resion by Harish Damodaranon,2016.
10. www.bharattoday.com>backword march-Who are Jats, Why they Want?
11. https://en.m.wikipedia.org.>wiki>reservation in India.
12. https://en.m.wikipedia.org.>wiki>jat-reservation-Agitation.
13. D.Parsarthi, Advocacy Internet, Nov/Dec,2005.
14. Jaffrelot,Christopher,India's Silent Revolution: The rise of the lower Caste's in Northeren Indian Politics, New Delhi; Permanent Black,2003.

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

दलित महिलाओं की स्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

आदित्य कुमार
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

वर्तमान समय में भारतीय संविधान के अन्तर्गत दलित महिलाओं को समानता, स्वतंत्रता व शोषण के विरुद्ध अधिकार के साथ–साथ कुछ विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं। आज सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्रों में महिलाएं सेवारत हैं और उनकी सामाजिक प्रस्थिति में उन्नति हुई हैं। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के अभाव के कारण अभी भी दलित महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। अनुसूचित जाति की महिलाएं उच्च जाति की महिलाओं की तुलना में अधिक शोषित हैं। इन्ही बिन्दुओं को इस शोध पत्र में दर्शाने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द– अनुसूचित जाति, सामाजिक स्थिति, संविधान, अधिकार, जीवन मूल्य, पवित्रता, अपवित्रता आदि।

भारतीय समाज में महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति में अत्यधिक उतार–चढ़ाव के दर्शन होते रहे हैं। प्राचीन भारत में वैदिक समाज में पहले स्त्रियों को यज्ञ आदि कर्मों में सम्मिलित होने का अधिकार प्राप्त था। उन्हें शैक्षणिक अवसर उपलब्ध थे। तत्कालीन समाज में महिलाओं की प्रस्थिति आधुनिक भारत से भी उच्च थी। विवाह करने की स्वतंत्रता और उच्च शिक्षा ने महिलाओं को सामाजिक सम्मान प्रदान किया था, लेकिन उत्तर वैदिक काल में पवित्रता और अपवित्रता की अवधारणा के विकास के बाद महिलाओं को परम्परागत धार्मिक कार्यों से विरत कर दिया और उन्हें शूद्रों के समान समझा जाने लगा। शैक्षणिक स्थिति में भी गिरावट आयी। विधवा पुर्नविवाह को मान्यता न दिये जाने के कारण विधवाओं की संख्या में वृद्धि हुयी। जिससे महिलाओं की प्रस्थिति में गिरावट आयी। अनुसूचित जाति के सामाजिक प्रस्थिति के सन्दर्भ में उनके जीवन के विभिन्न पहलूओं पर किये गये अध्ययनों स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में अस्पृश्य महिलाओं की समस्यायें अत्यन्त गम्भीर है। देश के कुछ क्षेत्रों में बदले हुए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश में उच्च जाति के सदस्यों ने अपनी शुद्धता और अशुद्धता की अवधारणा को त्याग करके अनुसूचित जाति के सदस्यों के साथ सामंजस्य स्थापित कर लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि दी हुई परिस्थितियों में वे अनुसूचित जाति के सदस्यों के साथ समान व्यवहार तो रखते हैं, लेकिन उनकी सोच आन्तरिक रूप से बदली नहीं जा सकी है।

ईसा के 300 वर्ष पूर्व तक के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि बदलती हुई सामाजिक संरचना में पुरुष ने समाज में अपना प्रभुत्व स्थापित कर रखा था। कौटिल्य, नारद, याज्ञवल्क, वृहस्पति, गौतम आदि ने धर्मशास्त्रों की व्याख्या प्रस्तुत कर महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति में सुधार का प्रयास किया, लेकिन 1000 ई० तक महिलाओं की प्रस्थिति में कोई विशेष सुधार परिलक्षित नहीं होता।11वीं और 12वीं शताब्दी में मिताक्षरा और दायभाग सम्प्रदाय के स्थापित होने के पश्चात महिलाओं की प्रस्थिति में सकारात्मक सुधार दिखलाई देता है। इन सम्प्रदायों के प्रवर्तक जीवमूतवाहन और विज्ञानेश्वर ने धर्मसूत्रों की सामयिक व्याख्या प्रस्तुत किया है। इस व्याख्या का आधार धर्म सूत्रों के साथ–साथ बदलता हुआ सामाजिक परिवेश भी था। मध्य युग में हिन्दू समाज की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। स्त्रियों की प्रस्थिति में मूलतः उनके सम्पत्ति

अधिकारों के सम्बन्ध में सुधार के प्रयास किये गये थे. लेकिन असता और अन्धविश्वास के बीच ऐसी सामाजिक प्रथायें और रूढियां प्रचलन में आयी जिन्होंने पूरे हिन्दू समाज में महिलाओं की प्रस्थिति को बदतर बना दिया। सती प्रथा, बाल–विवाह, बालिका बध एवं विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध आदि सामाजिक कुरीतियाँ थी जो धार्मिक कृत्यों की आड़ में प्रचलन में थी।

19वीं सदी भारतीय समाज एवं राजनीति में अनेक अर्थों में विभाजक रेखा सिद्ध हुई प्रत्यक्ष विदेशी वर्चस्व से पूर्व अंग्रेजी भाषा एवं मिशनरियों के माध्यम से भारतीय समाज संरचना में जिस तरह बाहरी प्रभावों का सूत्रपात एवं दखल प्रारम्भ हुआ। इसने भारतीय परिवेश में स्त्री–परिवेश के प्रश्नों को भी प्रभावित किया। एक ओर पूर्व और पश्चिम के मध्य का अतंराल कौतूहल और विवाद का विषय बना तो दूसरी ओर भारत की अंदरुनी सांस्कृतिक संरचना एवं मूल्यों को लेकर भी प्रश्न उठाए गए। 19वीं सदी में उपजे व्यापक धर्म एवं समाज सुधार आंदोलनों में ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन के अतिरिक्त अनेक स्थानीय सुधार संगठनों ने भारतीय समाज में पनप रही स्त्री–पुरुष विषमता को चुनौती दी एवं सुधारात्मक प्रयास किए। इस संदर्भ में 1887 में स्थापति नेशनल सोशल कांफ्रेंस का योगदान राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन की प्रक्रिया में उल्लेखनीय रहा। इस काल में स्त्रियों के पक्ष में सामाजिक विधान के लिए संघर्ष भी किए गए तथा उनके सकारात्मक परिणाम भी सामने आए। राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, डी.के. कर्वे, महादेव गोविंद रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले एवं श्रीमती एनी बेसेंट की भूमिका इतिहास में दर्ज है। इसके अतिरिक्त वैधानिक प्रयासों विशेषतः शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिबा फूले, रामगोपाल घोष, केशवचंद्र सेन के नामों की चर्चा भी उपलब्ध है।

ब्रिटिशकाल के समय में न केवल भारतीय प्रशासकीय क्षेत्र में परिवर्तन में आया, अपितु परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में रूढ़ियों को समाप्त करने के प्रयास भी प्रारम्भ हुए। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से श्रेणीगत भारतीय सामाजिक संरचना को सरल बनाने का प्रयास किया गया। जाति भेद, अस्पृश्यता जैसे रूढ़िगत मूल्यों को भी दूर करने के लिये उच्च मध्यम वर्ग के सकारात्मक प्रयास किया। जोशी (1988) ने प्राचीन भारत में दापत्य मर्यादा का विश्लेषण करते हुए कुछ ऐसे बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है। जो स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा में परिवर्तन के सूचक हैं। इनमें विवाह पद्धति, सामाजिक मर्यादा और जीवन मूल्य का उल्लेख किया गया है।

महिलाओं की प्रस्थिति के निर्धारण में शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ब्रिटिश शासन काल में प्राशसकों द्वारा उच्च शिक्षा के क्षेत्र कुछ सरकारी योगदान किये गये थे लेकिन प्रबुद्ध भारतीय लोगों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। सन् 1850 में ब्रह्मसमाज के नेतृत्व में अस्पृश्य जातिओं की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा 1870 में प्रार्थना समाज द्वारा अस्पृश्यों की शिक्षा के लिए रात्रि कालीन विद्यालय प्रारम्भ किया गया। 1833 ई० में मैकाले विवरण पत्र द्वारा इसे मान्यता मिल गई। इन सभी सकरात्मक पहल के फलस्वरूप सन्1902 ई० 348510 छात्राएं प्राथमिक शिक्षा में 41582 माध्यममिक शिक्षा में एवं 263 छात्राएं उच्च शिक्षा में पंजीकृत थी, जबकि 1882 ई० में प्राथमिक शिक्षा में 124249 माध्यमिक शिक्षा में 2054 और उच्च शिक्षा में मात्र6 थी। रूढ़ीवादी समाज में यह प्रगति अत्यन्त सन्तोषजनक थी।19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाज सुधार एवं शिक्षा प्रसार के कारण महिला मध्यम वर्ग का उदय हो चुका था। निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के प्रस्थिति में परिवर्तन की प्रक्रिया देश की अलग–अलग भागों में अलग–अलग कारणों से गतिशील हुई हैं। साथ ही साथ अनुसूचित जातियों के सन्दर्भ में सामाजिक सांस्कृतिक भेद–भाव, आर्थिक शोषण, संरचनात्मक निर्योग्यता, संज्ञानात्मक असन्तुलन, सामाजिक और राजनीतिक उत्पीड़न, सन्दर्भ समूह और सांस्कृतिकीकरण, पश्चिमीकरण, धर्म परिवर्तन और

संघर्ष आदि की प्रघटनाओं का भी उल्लेख मिलता है। वर्तमान समय में लोकतांत्रिक प्रसार और राजनीतिकरण, सामाजिक व आर्थिक विकास, विविध और संवैधानिक संरक्षण के प्रतिफल में अनुसूचित जाति के महिलाओं का एक प्रभाव अपने निचले स्तर से काफी ऊपर उठ गया है तथा सम्भ्रान्त समूह के श्रेणी में आ गया है। लेकिन आज भी अधिकांश अनुसूचित जाति कि महिलाएं आर्थिक दबाव में जीवन यापन कर रही है। अनेक अध्ययनों के माध्यम से ज्ञात होता है कि विभिन्न अनुसूचित जातियों की व्यवसायिक गतिशीलता और प्रस्थिति में सुधार हुआ है। आधुनिक बदलती हुई जीवन शैली केफलस्वरुप उनके समाजिक प्रस्थिति में पहले के अपेक्षा सुधार अवश्य हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. नागला, बी.के. (2018) भारतीय समाजिक चिन्तक, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, पृष्ठ सं0 127
2. शर्मा, बी.ए. एवं रेड्डी, मधुसुदन (1982) भारत में आरक्षण नीति, पब्लिकेशन्स नई दिल्ली पृष्ठ सं0 93
3. नजीर, परवेज (1995) सामाजिक संरचना (विचारधारा, भाषा, जाति) पब्लिकेशन्स दिल्ली पृष्ठ सं0 21–23
4. सिंह, भगवान (2018) गांधी एवं अम्बेडकर, प्रकाशन सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी पृष्ठ सं0 65

औद्योगिक प्रदूषण : एक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

योगेंद्र प्रसाद यादव
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

वर्तमान युग औद्योगिक युग है, इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन वर्तमान सभ्यता को प्राप्त करने से पहले मनुष्य अनेक दौर से गुजरा हैऔद्योगिक क्रांति की अवधारणा का सूत्रपात सन् 1960–70 के काल खंडों से इंग्लैंड में आरंभ हुआ। दुनिया के अन्य देशों में भी इस क्रांति का प्रभाव पड़ा है लेकिन इस औद्योगिक क्रांति ने अनेक परंपरागत उद्योगों को चौपट भी किया तो दूसरी तरफ नए–नए कारखाने स्थापित होने से अनेक नगरों का जन्म हुआ और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की बुनियादी ढांचे को मजबूती प्रदान हुई।

प्रमुख शब्दावलीः–औद्योगिक, प्रदूषण, उद्योग, वायु,जल, ध्वनि, बीमारीयां आदि।

वर्तमान समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो औद्योगीकरण एक बहुत जटिल एवं बहुआयामी प्रक्रिया है जो तीव्र एवं व्यापक है औद्योगीकरण ने प्राथमिक समूह को चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है और मानव अधिकारों एवं मानवीय मूल्यों का एक बड़ी सीमा तक मशीनीकरण हो रहा है उत्पादन क्षमता में लचीलापन होने के कारण अधिक उम्र के लोगों को इस धारा से अलग–थलग करने का प्रतीक दिखलाई दे रहा है। यौन नैतिकता एवं बाल विवाह आदि संस्था पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं।[1] भारत देश में पिछले कुछ सालों से देखा जाए तो यहां की हवाओं में प्रदूषण का स्तर बहुत तेजी से बढ़ रहा है। हवाओं में मिलने वाले हानिकारक कण जैसे नाइट्रोजन, धूल, शीशा, अमोनिया इत्यादि तय मानकों से कई गुना से अधिक इसमें वृद्धि हो चुकी है। इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट का शोध कहता है कि वायु प्रदूषित क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति की दिमाग की क्षमता प्रभावित होती है। हवा में मिलने वाले विषैले कण से अस्थमा, श्वसन तंत्र, दिल के दौरे का खतरा, आंखों में जलन, नसों का कमजोर होना, एलर्जी आदि रोग मनुष्यों में होते हैं।ॅभ्ब् का एक शोध यह दावा करता है कि वायु प्रदूषण से मनुष्य में फेफड़ों का कैंसर जैसी बीमारियां भी हो सकती हैं।[2]

भारत में एक अनुमान है कि हर साल लगभग 15 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र को हम केवल विकास के नाम से उजाड़ देते हैं तथा मात्र 13 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र ही लगा पाते हैं। आज जिस तीव्र गति से औद्योगिक गतिविधियां, शहरीकरण, आधुनिकीकरण रहन–सहन, धुआं उगलती चिमनिया, वाहनों में वृद्धि इत्यादि के कारण ही वायु प्रदूषण वृध्दि हुआ है।[3] उद्योगों के लापरवाही और नियंत्रण के कारण आज स्वास्थ्य अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है। दिसंबर 1984 की घटना को कौन भला भुला सकता है जो भारत के मध्य प्रदेश राज्य की राजधानी भोपाल में घटित हुई थी भोपाल गैस त्रासदी जिसमें यूनियन कार्बाइड के संयंत्र से कीटनाशकों के लिए उपयोग होने वाली 43 टन मिथाइल आइसोसाइनेट तथा अन्य दूसरे पदार्थों का रिसाव हुआ जिसके फलस्वरूप एक भयंकर औद्योगिक दुर्घटना हुई और लगभग इसमें 5 लाख 20 हजार व्यक्ति प्रभावित हुए। जिसमें लगभग 8000 व्यक्ति पहले पहले सप्ताह में ही मर गए तथा अन्य 8000 व्यक्तियों की बाद में मौत हुई लेकिन जो व्यक्ति आज भी बचे हुए हैं उनके ऊपर यह प्रभाव आज भी दिखलाई देता है। आर्थिक असमानता और पर्यावरण परिवर्तनों का आपस में गहरा संबंध पाया जाता है। निर्धन देश जलवायु में परिवर्तन लाने के लिए उत्सर्जन के जरूरी मापदंड पूरा करने में असमर्थता जताई है। तो दूसरी तरफ ओजोन परत क्षरण के कारण विश्व की जलवायु दिशाओं पर बहुत ही गंभीर

प्रभाव पड़ा है। जिससे मानव के स्वास्थ्य में गिरावट आई है। पृथ्वी की सतह पर पहुंचने वाली हानिकारक किरणे जो ओजोन परत मानव की सुरक्षा करता है। यदि यह किरण सीधी धरती पर पड़े तो पृथ्वी नष्ट हो सकती है या इन किरणों से त्वचा का कैंसर जैसे रोगों का भरमार हो सकता है। औद्योगिक विकास की जिन नीतियों में पर्यावरण शिक्षा के उपाय शामिल नहीं है। यह अक्सर मानव के कुस्वास्थ्य का कारण बनते हैं। जबकि स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने वाली नीतियां पर्यावरण के साथ मानव को भी सुरक्षा प्रदान करती है।[4]

उत्तर प्रदेश के जिला गाजियाबाद के मुरादनगर में हजारों वृक्षों एवं फसलों की बर्बादी के पीछे वहां पर चल रहे कागज उद्योग की मीले हैं। देखा जाए तो वहां वर्तमान समय में केवल शीशम, जामुन जैसी वृक्षों की निशानदेही ही बची है। वहां के किसानों का कहना है कि यहां धान की फसल 8 दिन में ही खेत में सूख जाती है। पानी में हम लोग ज्यादा देर तक यदि खड़े होते हैं, तो पैरों में जलन होने लगती है। औद्योगिक प्रदूषण वर्तमान समय में केवल भारत में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में कोहराम मचा रहा है।[5]

भारत में केवल ग्लोबल वार्मिंग के फलस्वरुप ही सन् 2100 तक जीडीपी में लगभग 10þ तक कमी आ सकती है। एक अनुमान है कि पिछले एक दशक में भारत में केवल बाढ़ से ही 3 बिलियन डालर की आर्थिक क्षति हुई है। सन् 2020 में आने वाला अम्फान तूफान ने ही लगभग 13 मिलियन व्यक्तियों को प्रभावित किया था तथा पश्चिम बंगाल से टकराने के बाद इस तूफान से लगभग 13 बिलियन डालर की आर्थिक क्षति हुई।[6] उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले के चिल्का दाद गांव के लोगों का कहना है कि कोयले की खान के फलस्वरूप यहां का पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। जिसके कारण इस क्षेत्र में मृत–प्रसव, बांझपन, रक्त संबंधित अनेक बीमारियां लोगों में होना एक सामान्य बात हो गई है।[7] स्वस्थ आबादी के लिए एक स्वस्थ पर्यावरण होना अति आवश्यक है। लेकिन सर्वप्रथम इस ओर ध्यान अमेरिकन लेखिका रासेल कार्सन ने सन् 1962 में अपनी पुस्तक साइलेंट स्प्रिंग के माध्यम से लोगों को इस समस्या से अवगत कराया और कहाँ कि जिस तेजी से औद्योगिक विकास हो रहा है उसकी कीमत मनुष्य को आने वाले कुछ सालों में चुकाने होंगे। यह कीमत मनुष्य की बर्बादी के रूप में होगा।[8] ब्राजील के जंगलों को पृथ्वी का फेफड़ा कहा जाता है क्योंकि यहां से दुनिया को 20þ ऑक्सीजन प्राप्त होता है। सूरीनाम जैसा देश कार्बन सिंग के साथ कार्बन नेट के लक्ष्य सून्य को भी हासिल कर चुका है। दुनिया में सर्वाधिक कार्बन उत्सर्जन में अमेरिका 27þ, चीन 14þ, भारत 7þ तक उत्सर्जन करते हैं। इन देशों को भी इस देश से सीख लेनी चाहिए कि कार्बन उत्सर्जन को कैसे कम करके हम पर्यावरण को स्वच्छ बना सकते हैं।[9]

वर्तमान समय में भारत में कुल प्रदूषण का लगभग 14þ हिस्सा केवल औद्योगिक गतिविधियों के कारण ही उत्पन्न होता है।[10]अमेरिका के येल तथा चीन के पेकिंग विश्वविद्यालय के एक संयुक्त शोध कार्य सन 2010 से 2014 के बीच लगभग 3200 व्यक्तियों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष दिया गया कि वायु प्रदूषण से मानव का केवल श्वसन तंत्र ही नहीं बल्कि मस्तिष्क भी प्रभावित होता है।[11]

वैश्विक महामारी कोरोना काल के समय भारत में हुए सर्वेक्षण के आधार पर यह कहा गया कि 17þ जनसंख्या अपने आय का लगभग 10þ खर्च केवल अपने स्वास्थ्य पर खर्च करते है। जबकि भारत अपने जीडीपी का मात्र 2þ खर्च अपने स्वास्थ्य सेवाओं पर करता है।[12]

फ्रांस के पेरिस में हुए अध्ययन के अनुसार वहां के लोगों में मानसिक तनाव का 70þ कारण हवाई अड्डों का कोलाहल है। जिससे वहां के लोगों में ह्रदय, पाचन, श्रवण आदि बीमारियां सामान्य हो गई हैं। आस्ट्रिया के अनेक विद्वानों का मानना है कि शोर मानव को समय से पूर्व बूढ़ा कर रहा है। कैलिफोर्निया

विश्वविद्यालय के सुविख्यात नोबेल पुरस्कत प्रो0 जोंस का कहना है कि शांत क्षेत्र में निवास करने वाली गर्भवती महिलाओं की तुलना में शोरगुल में रहने वाली महिलाएं द्वारा जन्मे बच्चों में जन्मजात विकृतियां पाई जाती हैं। यह निष्कर्ष उन्होंने 2 लाख नवजात बच्चों का अध्ययन के उपरांत दिया।[13]

औद्योगिक प्रदूषणः– दुनिया के महान विचारक इवान इलिच ने अपने पुस्तक डी स्कूलिंग सोसाइटी में बतलाया कि इस दुनिया में सारी समस्याओं का जड़ गलत शिक्षण व्यवस्था है। जिसकी वजह से दुनिया में समस्याएं पैदा हुई। पिछले 250–300 सालों से दुनिया में गलत शिक्षण दिया जा रहा है। जिसकी शुरुआत यूरोप के औद्योगिक क्रांति से आरंभ हुई। औद्योगिक क्रांति ने दुनिया में दो बड़े झूठ का प्रचार किया पहला यह कि प्रकृति व्यापार की वस्तु है लेकिन जब प्रकृति व्यापार की वस्तु बन जाती है तो दूसरे जितने अज्ञात फायदे हैं वह समाप्त हो जाते हैं। जैसा देखा जाए एक सार्वजनिक स्थान पर एक आम का वृक्ष है उसके नीचे थके मादे लोग आते हैं, विश्राम करते हैं, ऑक्सीजन मिलता है यही अज्ञात फायदा है। उसी प्रकार से देखा जाए आज पावन पवित्र गंगा नदी नहीं रहती वह कितने मेगावाट की बिजली दे सकती हैं, वह कितने क्यूसेक पानी दे सकती हैं, उसका बाजार मूल्य क्या हो सकता है, यह कोमोडिटी विकसित की जा रही है। औद्योगिक क्रान्ति का दूसरा झूठ यह कि समाज केवल मनुष्य का है और आज तक जितने भी विज्ञान विकसित हुई सब मनुष्य के इर्द–गिर्द ही बने है। आज वैज्ञानिक पेड़ जंगल दूसरे जंतु पर प्रयोग करके मनुष्य के लिए लाभदायक दवाइयां का निर्माण करते हैं। यह दुनिया मनुष्यों का है यह भी कहना बिल्कुल झूठ है। क्योंकि यह दुनिया यदि मनुष्यों का है यह भी कहना बिल्कुल झूठ है। क्योंकि यह दुनिया यदि मानव समाज का केवल होता तो इस जहां में अन्य जीव–जंतु नहीं होते इस जहां में केवल मानव ही होते। औद्योगिक विकास ने आज जो समाज विकसित किया उसमें देखा जाए तो तीन प्रमुख समस्याएं हैं। पहली युद्ध की समस्या है। वर्तमान समाज में देखा जाए तो दुनिया के सभी देशों में यह होड़ लगी हुई है कि हमारे हथियार और दुनिया के समस्त देशों से अच्छे हैं। औद्योगिक विकास की दूसरी समस्या पोलूशन की है। आज जितने भी पोलूशन या प्रदूषण समाज में हो रहे हैं। कहीं न कहीं उद्योगों का विकास का ही देन है। आज धूल–धुआं और हल्ला–गुल्ला जो कुछ भी है वह कहीं न कहीं इसी औद्योगिक गतिविधियों के कारण है। और तीसरी समस्या गरीबी तथा भुखमरी की है। औद्योगिक विकास का मूल मकसद इस समाज में गरीबी, असमानता को दूर करना था। लेकिन औद्योगिक विकास ने आज बेरोजगारी, गरीबी, अपराध आदि को कम करने के बजाय बढ़ाने का प्रयास किया है।[14]

वर्तमान समय में देखा जाए तो दुनिया में भारत 5वां सबसे बड़ा औद्योगिक देश है। लेकिन जब बात प्रदूषण एवं कचरे की आती है, तो दुनिया में सबसे अधिक प्रदूषित देशों में गिना जाता है। हाल में ही प्रदूषण पर चिंता व्यक्त करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि उद्योगों से ज्यादा जरूरी लोगों की जिंदगी है। सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला 60000 लोगों की मौत संबंधित रिपोर्ट देखने के बाद कहा।[15]

औद्योगिक प्रदूषण से प्रमुख रोगः–

1.सिलिकोसिसः– सिलिकोसिस रोग मनुष्य के लिए बहुत कष्टदायक रोग है। जो मनुष्य एक बार इस बीमारी से ग्रसित हो गया तो इस रोग से छुटकारा पाना लगभग नामुमकिन है। यही कारण है कि इस बीमारी से ग्रसित लोगों का समय पूर्व देहांत हो जाता है। इस बीमारी का प्रमुख लक्षण सुखी खांसी, थकान, श्वास फूलना, कभी–कभी बलगम में रक्त आना आदि लक्षण पाए जाते हैं।

2. बीसिनोसिस–कपड़ा मीलों में कार्यरत श्रमिक मुख्य रूप से इस बीमारी से पीड़ित होते हैं। जिसमें श्वास लेने की समस्या, खासी, सीने में जकड़न जैसी बीमारियां पाई जाती हैं।

3. एस्वेस्ट्रासिस– इस प्रकार का रोग सीमेंट कारखानों, खनन, कपड़ा मील आदि कारखानों में कार्यरत श्रमिकों में पाई जाती है। जिसमें फेफड़ा का कैंसर, श्वास में तकलीफ, ऑक्सीजन रक्त बहाव में कमी आदि जैसे लक्षण पाए जाते हैं।

4. कोल वर्क्स न्यूमोकोनिओसिस– यह रोग खनन, कोयले खानों में लगे व्यक्तियों को होता है। इसमें व्यक्ति के अंदर कमजोरी, श्वास, फेफड़ों संबंधित बीमारियां पाई जाती हैं। इसे हम ब्लैक लंग डिजीज लैंग्वेजेस रोग से भी जानते हैं।

5. बेरिलियोसिस– यह रोग धातु अयस्को में लगे श्रमिकों में प्रमुखतः पाया जाता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों को श्वास संबंधी तकलीफ होती है। लेकिन धीरे–धीरे मनुष्य अन्य अंग जैसे यकृत, गुर्दे व तंत्रिका तंत्र भी प्रभावित होने लगती है।[16]

औद्योगिक प्रदूषण के प्रकार– आज औद्योगिक प्रदूषण किसी एक देश गांव की समस्या नहीं है, बल्कि संपूर्ण विश्व की समस्या है। औद्योगिक प्रदूषण को हम निम्नांकित भागों में विभाजित कर सकते हैं–

1. वायु प्रदूषण– वायु प्रदूषण वायुमंडल में ऑक्सीजन की मात्रा को कम करता है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य अनेक प्रकार के श्वसन संबंधी रोगों जैसे दमा ब्रोंकाइटिस आदि से लोग अधिक पीड़ित हो रहे हैं। कारखानों तथा बिजली संयंत्रो से निकलने वाली गैस $SO2$ जो श्वसन तंत्र को सर्वाधिक प्रभावित करती है। यह यदि मानव के फेफड़े में पहुंचकर इकट्ठा हो जाए तो व्यक्ति को टीवी, कैंसर जैसी गंभीर बीमारी हो सकती है। मथुरा तेल शोधन कारखानों का कुप्रभाव आज भी वहां के क्षेत्र में दिखलाई देता है। कारखानों से निकलने वाली ब्2 गैस संगमरमर पर भी विशेष प्रभाव डालती है। जिससे आगरा का ताजमहल भी प्रभावित हो रहा है। मुख्य रूप से कारखानों से सूक्ष्म कण, विषैली गैस एवं कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोआक्सइड गैसे निकलती है। जो विशेष रूप से मानव जाति एवं जंतु को हानि पहुंचाती है।

ध्वनि प्रदूषण– आधुनिक समाज में बहुत तेजी से अधिक औद्योगिक कारखाने, रेल, मोटर कार तथा जेट हवाई जहाज आदि प्रचार हुआ है। जिसके फलस्वरूप वायुमंडल में ध्वनि की समस्या पैदा हुई। सांस्कृतिक कारण से भी ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न हो रहा है। जिसमें डीजे, लाउडस्पीकर, संगीत, जुलूस, जनसभाएं, धार्मिक कार्य आदि शामिल हैं।साधारणतया देखा जाए तो मनुष्य दिन में 55 डेसीबल तथा रात के समय 45 डेसीबल तक ध्वनि को बहुत ही सहजतापूर्वक सहन कर सकता है। लेकिन इससे अधिक ध्वनि बढ़ने पर वह शोर में तब्दील हो जाती है। तो यही प्रक्रिया ध्वनि प्रदूषण कहलाती है। ध्वनि प्रदूषण को हम डेसीबल में मापते हैं। ध्वनि प्रदूषण के कारण मानव स्वास्थ्य प्रभावित होता है। जिसके फलस्वरूप अनेक शारीरिक एवं मानसिक बीमारियां होती हैं। जैसे तनाव, चिंता, घबराहट, अनिद्रा, स्मृति ह्रास, हृदय रोग तथा गर्भवती महिलाओं में समय से पूर्व बच्चों का जन्म देना आदि कारक पाए जाते हैं। अत्यधिक ध्वनि के क्षेत्र में रहने से व्यक्ति में अनिद्रा तथा सिर दर्द जैसी समस्याएं अधिक पायी जाती हैं तथा ध्वनि प्रदूषण से मानव की कार्य क्षमता भी प्रभावित होती है।

जल प्रदूषणः– वर्तमान समय में औद्योगिक कारखानों से निकलने वाले जल इतने अधिक प्रदूषित हो चुके हैं कि यह छनकर भूमिगत जल को भी दूषित कर रहे हैं। हाल में ही मेरठ के हिंडन, कृष्णा व काली नदियों का पानी 5 वर्ष में इतना अधिक प्रदूषित हो चुका है कि इससे रीसे पानी को यदि हैंडपंपों के द्वारा निकालकर पिया जाए तो भी मानव में त्वचा, मानसिक रोग, कैंसर, रक्तचाप आदि जैसी बीमारियां हो सकती हैं। सन् 2010 में एक सर्वेक्षण के अनुसार सहारनपुर से लेकर गौतमबुध्दनगर तक 12 गांव का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष दिया गया कि केवल 2010 में प्रदूषित जल पीने के कारण 200 व्यक्तियों की मौत

हुई थी। इसके अलावा 816 व्यक्ति त्वचा, 55 व्यक्ति मानसिक रोग, 33 हृदय रोग, 472 व्यक्ति रक्तचाप और 611 व्यक्तियों में पेट संबंधी समस्याएं पाई गई।[17]

मृदा प्रदूषणः– वर्तमान समय में भूमि प्रदूषण एक प्रमुख समस्या बन गई है। भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या, नगरीकरण, औद्योगिकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग के कारण मृदा प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न हुई है। जो मानव जाति व अन्य प्राणी के जीवन के लिए अत्यंत ही हानिकारक है। मिट्टी में अनेक प्रकार के खनिज तत्व पाए जाते हैं। जैसे लार्ड कार्बनिक पदार्थ, जल, गैस आदि महत्वपूर्ण तत्वों का मिश्रण पाया जाता है। लेकिन जब विभिन्न कीटनाशक दवाइयों, रासायनिक पदार्थों आदि के कारण इन पदार्थों में अवांछित परिवर्तन होने लगता है तो उसे ही मृदा प्रदूषण कहा जाता है।

उष्मीय प्रदूषणः– आज बहुत तीव्र गति से थर्मल बिजली प्लांट, सीमेंट आदि उद्योगों का विकास हो रहा है। लेकिन इनसे निकलने वाले चिमनियों के धुएं जो वातावरण में मिलते हैं। वह केवल वातावरण ही नहीं बल्कि मानव जीवन को भी प्रभावित करते हैं। आज औद्योगिक विद्युत तापीय गृहों से निकलने वाली राख 10 किलोमीटर तक मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करने के साथ ही अनेक पर्यावरणीय समस्याएं भी उत्पन्न करती हैं।

सामुद्रिक प्रदूषणः– आधुनिक सभ्य समाजों में औद्योगिक उत्पादन के फलस्वरुप विघटित ना होने वाले पदार्थों का महासगरों में पहुंचने के कारण वर्तमान समय में पर्यावरण को अधिक हानि पहुंच रही हैं। आज औद्योगिक कारखानों के अपशिष्ट प्रदूषित जल तथा कचरा प्रतिदिन महासागरों को प्रदूषित कर रहे हैं। बढ़ती हुई आणविक परीक्षण से भी समुद्र प्रदूषित हो रहे हैं। इस परीक्षण से रेडियो एक्टिव किरण का जो समुद्र में फैलाव होता है। उससे लाखों जीव–जंतु मर जाते हैं।

रेडियोधर्मी प्रदूषणः– वर्तमान समय में दुनिया के प्रत्येक देशों में आणविक परीक्षण करने की एक होड़ लगी हुई है। जो भविष्य में गंभीर चुनौतियों को जन्म देंगे। आणविक परीक्षण से आसपास के इलाकों में रह रहे मनुष्य को अनेक बीमारियां होती हैं। जैसे गर्भस्थ शिशु की मृत्यु, अंधापन, खून के थक्के जमना, खुजली आदि। रेडियोधर्मी प्रदूषण अथवा नाभिकीय प्रदूषण आज जल, वायु, स्थल तीनों को प्रदूषित कर रहा है जिसका दूरगामी प्रभाव होगा। नाभिकीय विस्फोट द्वारा इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन के साथ अल्फा, बीटा, गामा की किरणें जीवधारियों एवं मानव के गुणसूत्र को प्रभावित करता हैं। जिसका प्रभाव बहुत ही दूरगामी समय तक रहता है। आज कोबाल्ट, थोरियम, कार्बन आदि को वायुमंडल में विस्तारित करने वाले पदार्थ रेडियोधर्मी प्रदूषण हैं।

औद्योगिक प्रदूषण का समाधानः–

आज औद्योगिक गतिविधियों के कारण वायु प्रदूषण की स्थिति बहुत ही गंभीर बन चुकी है। आज वायु प्रदूषण के फलस्वरुप मानव शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो रहे हैं। जिसमें से खांसी, फेफड़े कैंसर, अस्थमा, रक्तचाप, हृदय आदि खतरनाक बीमारियों से मानव जूझ रहा है। केडियम की अधिकता से श्वसन तंत्र की नलिका प्रभावित होती हैं। वातावरण में नाइट्रोजन ऑक्साइड बढ़ने से आंखों के रोग आदि जैसे रोग मनुष्य में होते हैं। ओजोन गैसों के अधिकता से मानव में सीने में दर्द, खांसी आदि बीमारियां पाई जाती हैं। जिसे हम निम्नांकित कुछ प्रमुख सुझाव के माध्यम से कम कर सकते हैं–

1. भारत देश को यदि प्रदूषण से मुक्त होना है तो उसे पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान न देने वाली फैक्ट्रियों व कठोर कार्रवाई करनी चाहिए।

2.औद्योगिक कारखाने को आबादी क्षेत्र से दूर स्थापित किया जाए जिससे प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव कम पड़ सके।

3.ऐसे उद्योगों की पहचान किया जाए जो सर्वाधिक प्रदूषण फैला रही हो तथा इस प्रकार के उद्योगों को तुरंत बंद किया जाए ताकि कानून का भय बना रहेद्य 4.वर्तमान समय में दिन प्रतिदिन नए–नए आविष्कार हो रहे हैं, तो उद्योगों में ऐसी तकनीक का उपयोग किया जाए जिससे प्रदूषण कम हो सके।

5.औद्योगिक प्रदूषण रोकने के लिए जिस क्षेत्र में कारखाने स्थापित है वहां पर एक समिति का गठन किया जाए जो प्रत्येक वर्ष उस क्षेत्र के पर्यावरण प्रदूषण की रिपोर्ट देता रहे, जिसे राष्ट्रीय व स्थानीय समाचार पत्रों में प्रकाशित किया जाए।

उपयुक्त मुख्य बिंदुओं के माध्यम से हम समाज हो रहे औद्योगिक प्रदूषण को काफी हद तक कम कर सकते हैं जो भावी समाज के लिए बहुत ही अच्छा रहेगा।

सन्दर्भ सूची–

1. झा, वी.(2017). औद्योगिक समाजशास्त्र. जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स.पृष्ठ संख्या 238, 239
2. अमर उजाला संस्था वाराणसी दिनांक 30 अक्टूबर 2018 पृष्ठ संख्या 18
3. यादव, डी.एस.(2018). पर्यावरण का समाजशास्त्र. वाराणसी;विजडम बुक शॉप.पृष्ठ संख्या 64, 157
4. भरूचा, ई. (2006). पर्यावरण अध्ययन. नई दिल्लीः प्रकाशक ओरियंट लांग्मैन पृष्ठ संख्या 219–220
5. औद्योगिक प्रदूषण पर निबंध
6. पत्रिका, पर्यावरण विकास, अंक 05–06 मई–जून सन् 2021 पृष्ठ संख्या 23
7. पत्रिका, डाउन टू अर्थ रंग रंग में पारा अंक अक्टूबर 2012 पृष्ठ संख्या 29
8. पत्रिका, अविष्कार जून 2017 प्रकाशन नेशनल रिसर्च डेवलपमेंट कारपोरेशन 20–27, जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र कैलाश कॉलोनी एक्सटेंशन नई दिल्ली 110048 पृष्ठ संख्या 06
9. सिंह, एस. आर. एवं नारायण,(2013) पर्यावरण अर्थशास्त्र सिद्धांत एवं व्यवहार, पटना बिहार हिंदी कृति अकादमी, पृष्ठ संख्या 61
10. उजाला, उजाला संस्थान वाराणसी दिनांक 4 सितंबर 2018 पृष्ठ संख्या 13
11. हिंदुस्तान अखबार संस्था वाराणसी 30 जनवरी 2021 पृष्ठ संख्या 01
12. सक्सेना, एच. (2014) पर्यावरण प्रदूषण एवं संधृत विकास.जयपुरः राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृष्ठ संख्या 157–158
13. वही[4] पृष्ठ संख्या 13–15
14. उजाला अमर संस्था वाराणसी दिनांक 17 जुलाई 2008
15. वही[8] पृष्ठ संख्या 06
16. जय ,श्री(2008–09) पर्यावरण शिक्षण, दिल्ली अंश पब्लिशर्स हाउस,पृष्ठ संख्या19–20
17. दुबे, एस. (2011).पर्यावरण अध्ययन इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स पृष्ठसंख्या 45

Ecology and Ecofeminism: Some issues

Shivangi Singh
Research Scholar
Department of Sociology
University of Lucknow

Abstract
Earth's climate has been changing and this is an undisputed fact. Today, environmental crises already have started. it's I'll effects on societies in general and small scale societies in particular that is the tribals, hunter and food gatherers and craftsman etc. There is a connection between women and nature as both of them have faced the oppression of patriarchal society and western society. In the light of above, this articles deals with connection between ecology and eco-feminism.

Keyword- Ecology , Ecofeminism , Social Ecology, Environmental Crisis.

Ecology is the study of relationships between living species and their physical and biotic surroundings through the exchange of calories, material and Information. It is concerned with all properties having a direct and measurable effect on the demography, development, behavior and space-temporal position of an organization. The study of ecology has been conducted by both biologists and social scientists. In social sciences, geography was the first to have produced some ecological analysis. Later on anthropology and sociology started working on it. In sociology, the Chicago School of Urban Sociology produced the ecological approach to study of urban areas developed by Park & Burgess. Social sciences today are more concerned about the social-cultural aspect of both environmental degradation and environmental sustainability. Today, environmental crises already have its ill effects on all societies in general and small scale societies in particular, that is the tribals, hunters and food gatherers, pastoralists and nomads, agriculturist, craftsman and petty commodity producer. In light of the above the study of ecology and society assumes great significance.

Both sociologists and anthropologists have dealt with environmental issues since long time. Anthropological theories have revolved around culture; it has been viewed as the product of adaptation to a given environment. The various approaches have dealt with environmental determinism, and environmental possibilism. Determinism tells us about the deterministic role of the environment in shaping culture, i.e. variables like distance from sea, climate type, temperature, humidity, wild rivers or mountains. They determine personality, physical features, morality, politics, government, religion, material culture, kinship, marriage, etc. On the other hand possibilism, mainly started by Boas, says that the environment is only one factor, there are other factors like the historical tradition, geographical, biological & psychological factors.

ECOLOGICAL PERSPECTIVES

Although the term 'ecology' was coined in 1869 by a German biologist, Earnest Haeckel, human ecology as a social system approach was developed in 1921 by Park and Burgess' of the University of Chicago whose research interest centred around the growth of the city as a natural phenomenon. Park and Burgess sought to systematically apply the basic theoretical scheme of biological ecology to the science of the interdependence of plants and animals living together in a natural area to the study of human communities.

Amos Hawley conceived ecology 'as a study of the morphology of collective life in both its static and dynamic aspects. Human ecology is the analysis of community structure in terms of the organization of sustenance activities, that is, the way a population organizes itself for survival in a particular habitat.' Human ecology seeks its explanation among variables that are structural properties, demographic attributes and features of the environment including interactions with other systems(Hawley 1971)

Julian Steward developed cultural ecology. Cultural ecology is the study of the processes by which a society adapts to its environment. Its principal problem is to determine whether these adaptations initiate internal social transformations or evolutionary charge. It analyzes these adaptations, however, in conjunction with other processes of change. Its method requires examination of the interaction of societies and social institutions with one another and with the natural environment.

Eco-feminism: Its origin and meaning

Francois d'Eaubonne was a radical French feminist, who first used the term 'eco-feminist' in her Le feminismeou la mort (Feminism or Death) in 1974. She initially used the term to describe the similarities between man's degradation of the environment and its degradation/oppression of women. As the founder of the Ecology and Feminism movement, eco-feminism as a portmanteau essentially became the marriage of the two movements. The problem in defining eco-feminism with any level of complexity relates to the complexity of the theory itself, in both its roots in feminism and the environmental movement. "All ecofeminists agree that there are important connections between the unjustified dominations of women and nature, but they disagree about... the nature of those connections". Ecofeminism arose in the midst of a range of environmental and social movements. Aforementioned introduction acknowledges its roots as simply being in the green and feminist movements, Greta Gaard's first words in Ecofeminism: Women, Animals, Nature summarize ecofeminism as having risen from 'peace movements, labour movements, women's health care, and the anti-nuclear, environmental,and animal liberation movements'.

The women, Environment and Development Framework (WED approach) which became popular in 1980's emphasized the role of women in development (Plummwood, 1993). It acknowledges the fact that women play a crucial role in production. They play an active role in agriculture, in house, in offices, factories and other institutions. They have ample knowledge about the environment and agricultural activities. However, their knowledge is not given adequate importance by patriarchal, western capitalist mode of society (Tucker, 1979).

Eco-feminism deals with the relationship between feminism and ecology. There is a connection between women and nature as both of them have faced the oppression of the patriarchal society in general and the western society in particular. It was mainly propagated in India by Vandana Shiva and Maria Mies through their book Ecofeminism (1993) who criticize modern science and its acceptance as a universal and value free system. Modern science projects mainly western men's values because scientific knowledge is controlled by men; they provided the examples of medicalization of childbirth and the industrialization of plant reproduction. Earlier child birth was dependent on midwife knowledge and now it is dependent on specialized technologies and experts. Agriculture today is dependent on technological input including industrially produced seed and fertilizer. The patriarchal structure justifies the dominance through religious and scientific constructs. Women have a special connection with the environment particularly in small scale societies they worship trees, hence, nurture them, local knowledge should be given priority over technological knowledge for which eco-feminism would be more effective.

Susan Griffin (1978) and Mary Daly (1978), Caroline Merchant (1980), Karen Warren, (1987, 1990) and others highlighted that ecology is a feminist issue. Ecofeminism is based on some fundamental claims that point to the existence of a significant relationship between oppression of women and oppression of nature. It is necessary to understand the nature of these connections so that oppression of women and nature can be understood, and finally, every feminist theory must include an ecological perspective and vice versa (Warren, 1987). Ecofeminism can be defined as a value system, a social movement and a practice.It also provides a political analysis that explores the relationship between oppression of women and oppression of nature. It is an "awareness" that begins with the realization that the exploitation of nature is linked to Western man's attitude towards women and tribal cultures. Ecofeminist theory has focused mainly on the link between development and gender. The fact is highlighted that violence against nature and against women is built into the dominant development model.

Social Ecology and Ecofeminism

There is no question of doubt that like ecofeminism, social ecology, an endeavor towards environmentalism also deals with ecological and environmental issues. However, social ecology in its various approaches can be identified with ecofeminism. It will be worthwhile to mention here that there are considerable discrepancies between social ecology and ecofeminism, but still they share significant similarities that make it appropriate to examine them in one sequel. Murray Bookchin is a leading proponent of social ecology. Social ecology relatively consists of a unified theoretical perspective and as such it involves the basic categories, i.e. the awareness of the biophysical and socio cultural domains juxtaposing the ecological infrastructure to the economy, polity, social structure and culture. Ecofeminism, on the other hand, reflects the diversity that exists among feminist thinkers. Ecofeminism, therefore, is considered as a general perspective on ecological issues rather than a unified theory of Eco philosophy. Arguably, ecofeminism involves the use of any of the diverse philosophies in the analysis of ecological issues. Since ecofeminism is attached with feminist issues and feminist philosophy involves many different outlooks, there we have many different forms of ecofeminism.

It explore the similarities between ecofeminism and social ecology one can distinguish two aspects of social ecology and ecofeminism each of which includes analytic aspects that offer analyses of the causes and issues underlying the contemporary ontological crises. Barring the analytic aspect, each of them has also programmatic aspects that offer alternative versions of an ecological sound future. As far as ecological problems are concerned, both socialecology and ecofeminism share common approach. Both refer to research questions as to the role of traditional institutions in mediating human interactions with nature. For example, did the division of labour between the sexes in different peasant and tribal communities give rise to fundamentally different attitudes towards nature on the part of women? Again, what were the responsibilities of caste and village institutions in regulating the use of forests, water and other common resources? What have been the effects of recent environmental degradation on gender relations, or on the autonomy of the caste and the village? Each of ecofeminism and social ecology sees that the ecological destructions are related to social problems of control and dominance. However, they differ only in .addressing or giving specific explanations concerning social problems and also for their programmes for social change. Moreover, social ecology and ecofeminism also take care of society to find the underlying causes of the environmental crisis.

Ecofeminism and social ecology deny that human centeredness is the necessary cause of environmental destruction. Instead of that what they rather specify human institutions and practices as more critical and crucial.

.**Conclusion**

Ecofeminism and Social Ecology and have examined the objective of social ecology and thereby established in what sense social domination is very much close to natural domination. Both social ecology and ecofeminism adhere to introduce a radical shift regarding the relationship between humans and the rest of the natural world. But social ecology and ecofeminism are specific regarding the roots of environmental and ecological devastation. Our perception is that the domination of the natural world is only a part in context to the patterns of domination and control and as such unless and until all patterns of domination are eliminated, we can expect little progress in regard to the domination of nature. That makes sense to say that domination of nature cannot be understood in isolation and it cannot be solved irrespective of ignoring other forms of domination. Rather it is only a pattern of domination which is linked to the general patterns of domination. In this regard, it can be solved in a coherent and integrated way. Although both social ecology and ecofeminism have contributed a lot in implementing and introducing a radical outlook regarding the relationship between human and the rest of the natural world, they too face serious philosophical challenges. It is not clear from these theories how exactly we are to understand the connection between human domination of other humans and the human domination of the non-human nature.

Currently, the world's population is around 7.8 billion. By 2050, the UN estimates that this will balloon to between 9.4 and 10.1 billion. Climate change solutions are tied to population; when a population increases, more food and energy need to be produced. Additionally, as populations in

developing countries grow, so does their economic capacity, as more and more people are able to escape poverty and accumulate wealth.

Population growth accompanying economic expansion in developing countries is neither unnatural nor undesirable, although it will inevitably lead to higher individual carbon footprints and rises in nations' overall emissions. To mitigate the environmental impact of population growth, states can pursue social initiatives that promise equal access to healthcare and education opportunities regardless of gender.

Where women spend more years in school, total fertility rates tend to fall. Studies worldwide show that improving access to education grants women more varied career options, the choice to delay marriage and ultimately have fewer, In addition to curbing population growth, improving women's access to education can have a strong impact on sustainable resource management in economies reliant on agriculture. In many countries, women are responsible for the management of natural resources, including water, fuel sources and food. A 2015 study of communities in the Western Himalayas showed that women tend to be responsible for the conservation and management of critical natural capital, including forests, wetlands, wildlife and agricultural fields to supply basic needs for their families.

Another important factor to consider is that cultural barriers in many parts of the world currently impede women from owning their own land and securing loans or insurance policies. Globally, only 13.8% of agricultural landholders are women, despite the fact that 38.7% of employed women work in agriculture, forestry and fisheries.

In the case of gender equality, elevating women through social initiatives, specifically improved access to healthcare and education, has a direct impact on reducing emissions by reducing a country's total fertility rate. Social initiatives that allow young girls better access to healthcare and education can empower and elevate women to make their own career and life decisions. This can have cascading positive effects on the environment by reducing total fertility rates over time. It is important that any social initiative addressing fertility rates or the roles of women not act as a form of forceful population control, such as a one-child policy, which can entail unintended and severe social consequences.

In addition to curbing population growth, improving women's access to education can have a strong impact on sustainable resource management in economies reliant on agriculture. In many countries, women are responsible for the management of natural resources, including water, fuel sources and food. A 2015 study of communities in the Western Himalayas showed that women tend to be responsible for the conservation and management of critical natural capital, including forests, wetlands, wildlife and agricultural fields to supply basic needs for their families.

It is critical for legislators to understand how social issues are linked to environmental impacts. Climate change does not affect people equitably, and policymakers need to understand how to account for these inequities with climate legislation that spurs fair socio-economic growth while tackling the climate crisis.

As in many political and decision-making spheres, women are alarmingly underrepresented in global environmental policymaking. Women hold only 12% of top national ministerial positions

in environmental sectors worldwide. Combined with a lack of decision-making responsibilities granted to women in local communities, the voice of environmental policymaking has always been disproportionately male.

The above discussion leads us to some crucial points as well as some concrete ideas that we can not continue in same manner as we have doing so far. Men as well as women should also participate equally to save environment. Women are crucial part of society and to work towards a better ecological conditions their active participation is necessary.

References-

- See Robert Park, *Human Communities: The City and Human Ecology (Glencoe, Free Press, 1952);* and Robert Park, Ernest Burgess and R.D.McKenzie (eds.), *The City* (Chicago, University of Chicago Press 1925).
- Amos Hawley, 'Human Ecology', in in David Sills (ed.), *International Encyclopedia of the Social Sciences*, Vol. 4 (1968), p. 329.
- Amos Hawley, *Urban Society* (New York, Ronald Press, 1971), p. 12.
- Amos H. Hawley,*Human Ecology*: *A Theory of Community Structure* (New York, Ronald Press,1950),p.67
- Julian Steward, 'Cultural Ecology', *International Encyclopedia of the Social Sciences* (1968), p.337.
- Eaubonne, Francoise d'. 1974. *Sociologyof Environment*. New Delhi: Sage Publications.
- Griffin, Susan. 1978. *Women and Nature: The Roaring Inside* Her. New York: Harper and Row.
- Plummwood, V.1993. *Feminism and the Mastery of Nature.* London: RoutLedge.
- Shiva, Vandana.1988. *Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India.* New Delhi: Kali for women.
- Warren, K.1987. 'Feminism and Ecology: Making Connections',*Environmental Ethics*, 9:3-20.

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

विकास की प्रक्रिया में जन–सहभागिता की भूमिका

डॉ0 दीक्षा मिश्रा
पूर्व शोध छात्रा
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

सारांश –
जन–सहभागिता आज एक बहुचर्चित विषय है। विभिन्न देशों में प्रजातांत्रिक संक्रमण, कई समाजवादी व्यवस्थाओं का अवसान और विश्वभर में जन–संगठनों की बढ़ती संख्या ये सभी ऐतिहासिक परिवर्तन के प्रक्रम हैं और आपस में अंतःसम्बद्ध हैं। आज लोगों में उन समस्त प्रक्रियाओं एवं घटनाओं में स्वयं शामिल होने की तीव्र उत्कंठा उत्पन्न हो रही है, जो उनके जीवन को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार की उत्कंठा एक ही साथ संभावनाओं एवं आशंकाओं को जन्म देती है। परंतु, यदि इस प्रवृत्ति का सामाजिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संतुलित समायोजन हो, तो यह नए समाज की रचना का एक महत्त्वपूर्ण पहलू हो सकती है। इसमें रचनात्मक एवं सु–अन्वेषण की अनन्त संभावनाएँ निहित हैं। सुदपयोग न होने पर इस प्रवृत्ति से सामाजिक विघटन एवं जातीय संघर्ष की स्थिति भी पैदा हो जाती है।

मुख्य शब्द : विकास, जनसहभागिता, प्रमुख साधन, प्रजातंत्र, नई संभावनाएँ, प्रयास।

स्वतंत्रता के बाद भारत में समावेशी विकास की अपेक्षा नौकरशाही, केन्द्रिकरण, पारदर्शिता और जबाबदेही में कमी, भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं में वृद्धि हुयी है, इन्हीं समस्याओं के निराकरण और शासन की प्रभाविता में वृद्धि हेतू सहभागितामूलक लोकतंत्र की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जिसमें जनता की नीति निर्माण व उनके क्रियान्वयन में सभी स्तरों पर भागीदारी होती है। जन सहभागिता से अभिप्राय है कि ''लोग उन समस्त आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीति प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से शामिल है, जो उनके जीवन को प्रभावित करती है। आर्थिक सन्दर्भ में इसका अभिप्राय है आर्थिक गतिविधियों में स्वतंत्र रूप से सक्रिय होने की क्षमता। सामाजिक सन्दर्भ में इसका अभिप्राय है धर्म, जाति, लिंग, रंग आदि से उठकर सामुदायिक जीवन में शामिल होने की क्षमता और राजनीतिक सन्दर्भ में इसका अर्थ है राष्ट्राध्यक्ष से लेकर ग्राम पंचायत स्तर तक को स्थापित या खारिज करने की क्षमता।'' ये सारी सहभागिताएँ एक दूसरे में अंतसम्बद्ध है और परस्पर पूरक है, एक के अभाव में शेष सहभागिताएँ अप्रभावी हो जायेगीं। कुछ मामलों में लोगों का प्रत्यक्ष या सीधा पूर्ण नियंत्रण हो सकता है और कुछ मामलों में अप्रत्यक्ष या आंशिक नियन्त्रण। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि जनता निर्णय लेने में एवं शक्ति तथा साधन के प्रयोग में ज्यादा सक्षम होती है। इस अर्थ में जन सहभागिता मानव विकास का अनिवार्य अंग है।

जन सहभागिता बिल्कुल नई चीज नहीं है, 1960 के दशक से या उससे पहले से भी विकास चर्चाओं के सन्दर्भ में यह एक महत्त्वपूर्ण बिंदु रही है। परन्तु सामान्यतः इसका प्रयोग किसी विशेष प्रकार की परियोजना या कार्यक्रम के सन्दर्भ में लिया जाता रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में जनता की अधिक एवं प्रत्यक्ष सहभागिता की बात की जाती रही है। इसमें यह भावना सबसे ज्यादा दिन–प्रतिदिन कम होते जा रहे साधनों के युग में उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग अपनी आवश्यकता के अनुरूप करें। यद्यपि विकास कार्यक्रमों की सफलता के लिये जन सहभागिता एक पूर्व शर्त है और एक ऐसा तैयार यन्त्र रचना हो जो जनता को योजना, क्रियान्वयन, परिवेक्षण और संसाधनों के प्रबन्ध में सम्बद्ध कर सके। इससे कार्यक्षमता बढ़ेगी और प्रशासनिक खर्च कम होगा। फिर भी सरकार और ऐच्छिक संगठन जनता को सम्बद्ध

करने के लिये कोई ऐसा सफल निश्चित तरीका विकसित नहीं कर पाये है और इसलिये अच्छे उद्देश्य से प्रेरित अनेक कार्यक्रम आगे या पीछे उनकी गति में शिथिलता आनी प्रारम्भ हो जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि विकास कार्यक्रमों का प्रभावी क्रियान्वयन जन सहभागिता पर निर्भर करता है। यह सम्भव नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रत्यक्ष भागीदारी इन विधियों से प्राप्त की जा सके। इसलिये कुछ साधन विकसित कर यह प्रत्यत्न किया गया है कि प्रशासन में अधिकतम जन सहभागिता सुनिश्चित हो सके। प्रमुख साधन है जैसे–

1. नीति निर्माण में परामर्श एवं सामुदायिक योजनाओं का निर्माण।
2. विभिन्न संगठन और जन समितियों का निर्माण।
3. जन सम्पर्क तन्त्र।
4. सहयोग।
5. संचार के साधन– दृश्य, श्रव्य, दृश्य–श्रव्य।
6. स्थानीय स्वशासन।

जन सहभागिता प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि सहभागिता प्रभावी होना चाहिये। इसके लिये जनता के कुछ शर्तों का होना आवश्यक है प्रथम विकास की प्रक्रिया में सहभागिता के लिए जनता शिक्षित और सक्षम होनी चाहिये। दूसरा जनता का जिसमें किस स्तर तक, सहभागिता की प्रकृति आदि के सम्बन्ध में जनता को जानकारी होनी चाहिये। तीसरा सहभागिता के लिये विकसित संचार व्यवस्था होनी चाहिये। चौथा जनता उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिये तैयार हो, अन्तिम पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं से परिचित होना जनता के लिये आवश्यक है, सहभागिता स्थानीय स्तर पर अधिक प्रभावी होती है।

भारत के विकास कार्यों में जन–सहभागिता :

जन सहभागिता आज बहुत चर्चित विषय है। विभिन्न देशों में प्रजातांत्रिक संक्रमण, कई समाजवादी व्यवस्थाओं का अवसान और विश्वभर में जन संगठनों की बढ़ती संख्या ये सभी ऐतिहासिक परिवर्तन के प्रक्रम है और ये आपस में अंतः सम्बद्ध है। जन सहभागिता का सामान्य अध्ययन करने के पश्चात् हमारे लिये यह जानना आवश्यक है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में जनता की सहभागिता की क्या भूमिका रही है? यह अध्ययन भारत के सन्दर्भ में किया गया है। सामुदायिक विकास का प्रशासन लगभग पूर्णतः नौकरशाही के, विशेषकर राजस्व तथा प्रशासनिक सेवाओं में चुने गये व्यक्तियों के हाथों में था। सामुदायिक विकास के संगठन और प्रशासन ने नागरिकों पर विश्वास नहीं किया। इसके अतिरिक्त ग्रामीण एवं नगरीय दोनों प्रकार की स्थानीय शासन संस्थाओं को सामुदायिक विकास प्रशासन से पूर्णतः पृथक रखा गया, जिसके कारण यह कार्यक्रम असफल रहा।

पंचायती राज : बलवंतराय मेहता 1957 में अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की थी कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये पचायती राज संस्थाओं को प्रारम्भ करना चाहिये। इस प्रकार लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और विकास कार्यक्रमों में जनता का सहयोग लेने के उद्देश्य से पंचायती राज की शुरूआत हुयी, परन्तु अनुभव बताता है कि पंचायती राज व्यवस्था कमजोर व महत्वहीन सिद्ध हुयी। संक्षेप में, जन सहभागिता के अभाव के कारण पंचायती राज व्यवस्था का क्रियान्वयन संतोषजनक नहीं रहा। पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा और अधिक प्रभावी बनाने के लिये 1992 में ऐतिहासिक संविधान संशोधन अधिनियम (73वाँ) पारित करके केन्द्र सरकार ने पंचायतीराज को नयी दिशा प्रदान की। जनता की सहभागिता प्राप्त करने के लिये समस्त वर्गों के लोग विशेषकर–पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनपद महिलाओं को सुअवसर प्रदान किया गया है।

विकास कार्यक्रम में जन सहभागिता का एक तरीका सहकारी आन्दोलन है, इसका प्रारम्भ जनता की मदद के लिये किया गया था। दुर्भाग्यवश सहकारी आन्दोलन भारत में कुछ अपवादों को छोड़कर सरकार का कार्यक्रम बनकर रहा है। भारत के सहकारी आन्दोलन का सूत्रपात सरकार द्वारा किया गया है न कि स्वयं जनता द्वारा। सहकारी संस्थाओं के सदस्य स्वार्थ–सिद्धि की भावना से कार्य करते हैं। उनमें सेवा भाव की मात्रा कम है। इसकी प्रशासनिक प्रणाली दोषी है। इसके अतिरिक्त सहकारी संस्थाओं का राजनीतिकरण कर दिया गया है। अतः सहकारी आंदोलन भारत में (गुजरात और कुछ हिस्सों को छोड़कर) जनता की सहभागिता प्राप्त करने में असफल रहा है।

भारत के अलावा अमेरिका और कनाड़ा में प्रशासन में जन सहभागिता वहाँ के लोकतंत्र में व्याप्त धार्मिक और सामाजिक संगठनों की परम्परा के कारण है। वहाँ भी प्रभावी सहभागिता की मात्रा में कमी देखने को मिलती है, और विशेषज्ञ सलाहकार और तकनीकतन्त्रियों की सलाह पर कार्य कर रही है वही स्वीट्जरलैण्ड में जनता की प्रत्यक्ष सहभागिता एक अपवाद स्वरूप है। ब्रिटेन में प्रशासन में जनसहभागिता वहाँ के धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं में व्याप्त परम्पराएँ है।

वर्तमान में विकास के प्रक्रिया में जनसहभागिता की नई संभावनाएँ एवं प्रयास : वर्तमान में जनसहभागिता की आशा की कुछ नई किरणें भी दिखने लगी है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पहली बार विश्व स्तर पर सामरिक प्रतिस्पर्द्धा में ह्रास दिखाई दे रहा है। शीत युद्ध समाप्त हो चुका है और विकसित देशों की सक्रियता युद्धोतर क्षेत्रों में बढ़ने लगी है। सैद्धान्तिक मतभेदों एवं कटुताओं का स्थान आर्थिक सहयोग के प्रयासों ने ले लिया है। पर्यावरण की समस्याओं ने मनुष्य को एकत्रीभूत सत्ता का एहसास कराया है और समन्वित एवं एकीकृत विकास के लिये प्रोत्साहित किया है। विकास को एक समन्वित रूप देने के लिये कई पुराने मापदण्डों एवं सिद्धांतों में परिवर्तन अपेक्षित हो गया है। सुरक्षा की व्याख्या नये प्रकार से होनी चाहिये। विकास का स्वरूप मनुष्य की प्रकृति एवं आवश्यकता के अनुरूप निर्धारित करना चाहिये, न कि मनुष्य को 'विकास' के अनुरूप बदलने का प्रयास करना चाहिये। इस प्रक्रिया में जनता से शक्ति लेने की परंपरागत व्यवस्था एवं भावना के बदले जनता को शक्ति देने की भावना विकसित करनी चाहिये।

विकास का उद्देश्य सीधे जनता का हित साधन होना चाहिये, न कि राष्ट्रों या राज्यों का। नागरिक जीवन की अनेक संस्थाओं के पुनर्निर्माण एवं अनेक नई संस्थाओं के निर्माण की भी आवश्यकता है। भविष्य के द्वंद्वो के अधिकांश चूकि मनुष्य मनुष्य की बीच होने की संभावना अधिक है, राष्ट्रों के बीच कम, इसलिये सारी संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं को अधिक से अधिक लचीला एवं विकेन्द्रित बनाने की जरूरत है।

निष्कर्ष : इस प्रकार जन सहभागिता को जीवन के हर क्षेत्र में बढ़ाने की जरूरत है। बाजार में लाभ, उपयोग एवं विकल्प को पूरी छूट देने की जरूरत है। राजनीति में निर्णयन के लिये विकेन्द्रिकरण को बढ़ाने की जरूरत है। सामुदायिक संगठनों को राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय मुद्दों से सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर देना चाहिये। मानव विकास के सन्दर्भ में यह बिल्कुल स्पष्ट रहना चाहिये कि यह मानव विकास जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिये विकास है। जब तक जन सहभागिता सुनिश्चित नहीं की जाती, तब तक विकास के सारे दावे झूठे रहेंगे।

अतः उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जन सहभागिता के सम्बन्ध के विषय में सिद्धान्त और व्यवहार में पर्याप्त अन्तर है। विकास की प्रक्रिया में जनता की भागीदारी कल्पित गाथा है। भारत सरकार द्वारा नेताओं द्वारा, योजना आयोग द्वारा आदि सबसे नीति और कार्यक्रम क निर्माण और क्रियान्वय में जनता की सहभागिता पर जोर दिया है। हम इस दिशा में आगे नहीं बढ़े है इसलिये आज भी सरकार के कार्यक्रमों

को जनता मूकदर्शक के रूप में देखती है। लोकतंत्र और विकेन्द्रिकरण की सफलता के लिये जन सहभागिता को बढ़ावा देने के लिये अधिक प्रभावशील और वास्तविक कदम उठाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. मिश्र अनिल दत्त (2002) पंचायती राज, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली
2. भावे विनोबा, (2002) 'लोकतांत्रिक मूल्य' सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी
3. मराठा, प्रो0 आर0के0 (2004) विकास, अर्जन पब्लिकेशन, हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली
4. सिंह, मलिक शमसेर (2004) नई पंचायत, आलेख पब्लिकेशन, एम0आई0 रोड, जयपुर
5. मीणा, सिंह जनम, (2015) भारत में ग्रामीण विकास प्रशासन, आर0बी0एस0 पब्लिशर्स, जयपुर
6. वार्षिक विकास एवं प्रगति रिपोर्ट, वर्ष 2018

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

महिलाओं से सम्बंधित विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों का एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

जयन्त गुप्ता
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महाराज बलवंत सिंह पी 0 जी 0 कालेज
गंगापुर, वाराणसी

सारांश–
वैदिक काल के भारतीय समाज में महिला एवं पुरूष को लगभग बराबर का अधिकार प्राप्त था। इस तरह के दृष्टान्त विभिन्न ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं कि शिक्षा, चिकित्सा, युद्ध कौशल, वेदों का अध्ययन इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ अपना परचम फहरा रही थी तथा पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही थी। परन्तु जैसे–जैसे विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते गये तथा समाज में रूढ़ियों का बोलबाला होता गया वैसे–वैसे समाज में महिलाओं की दशा में गिरावट दर्ज होती गई। भारतीय समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार की कुप्रथाओं यथा– पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह इत्यादि का चलन हो गया था। जिसने सीधे तौर पर महिलाओं को प्रभावित किया। जहाँ एक तरफ इन कुप्रथाओं ने महिलाओं की स्वतंत्रता पर कुठाराघात किया वही सर्वाधिक असर उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ा और यह क्रम भारत वर्ष की स्वतंत्रता तक चलता रहा। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की विभिन्न सरकारों ने स्वास्थ्य के ऊपर बहुत ध्यान दिया और विशेषकर महिलाओं के स्वास्थ्य पर। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारत सरकार द्वारा समय–समय पर महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को दूर करने के लिए चलाए गये योजनाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। इस शोध–पत्र को द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से तैयार किया गया है। जिसके लिए विभिन्न पत्रिकाओं, बेबसाइट, पुस्तकों इत्यादि की सहायता ली गई है।

मुख्य शब्द – पंचवर्षीय योजना, ग्रामीण स्वास्थ्य, सुरक्षा योजना, शिक्षा, रोजगार, स्वतंत्रता, मातृत्व

स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है। प्राचीन समय में स्वास्थ्य का तात्पर्य केवल शरीर को अच्छी तरह से कार्य करने की क्षमता के रूप में समझा जाता था। जब तक शरीर ठीक प्रकार से कार्य कर रहा है, शरीर को स्वस्थ्य समझा जाता था लेकिन धीरे–धीरे यह धारणा बदली। 1948 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मनुष्य की इस धारणा को बदलते हुए कहा कि किसी व्यक्ति की सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्थिति को स्वास्थ्य के अन्तर्गत शामिल किया जाना चाहिए न कि स्वास्थ्य को केवल बीमारियों के अभाव के रूप में देखा जाना चाहिए।

1980 मे स्वास्थ्य की एक नयी अवधारणा आई जिसके तहत स्वास्थ्य को एक संसाधन के रूप में माना गया। ग्रामीण अंचल में महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए स्वतंत्रता के बाद स्वास्थ्य के अनेक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर संचारित हो रहे है, जिसके फलस्वरुप महिलाओं के स्वास्थ्य पर काफी हद तक सुधार हुआ है। महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार कुपोषण, मातृत्व, मृत्युदर सुरक्षित प्रसव टीकाकरण लिंगानुपात जनसंख्या नियंत्रण इत्यादि क्षेत्रों में प्रभावी रूप से दिखायी पड रहा है। पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भी अनेक योजनाएँ ग्रामीण स्वास्थ्य विशेष रूप से महिलाओं के स्वास्थ्य को लेकर बनायी गयी। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव महिलाओं एवं शिशु स्वास्थ्य पर सकारात्मक रूप से पड़ा है। इसी क्रम में राष्ट्रीय

ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन योजना जो कि 12 अप्रैल 2005 को आयी। स्वास्थ्य से सम्बंधित निम्नलिखित योजनाएँ।

1– राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना
2– राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम
3– मिशन इन्द्रधनुष
4– प्रधान मंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना
5– जननी सुरक्षा योजना
6– जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम
7– ग्राम स्वास्थ्य स्वच्छता पोषण दिवस
8– मातृ सशक्तिकरण
9– आयुष्मान भारत प्रधानमन्त्री जन आरोग्य योजना (PMJY)
10– राष्ट्रीय वेक्टर वार्न डिजीज या रोग कन्ट्रोल प्रोग्राम
11– राष्ट्रीय कुष्ठ रोग उन्मूलन कार्यक्रम
12– कैन्सर नियन्त्रण कार्यक्रम
13– एनीमिया मुक्त भारत
14– फाइलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम

जब एक महिला स्वास्थ्य होती है तब वह प्रसन्न रहती है। वह अपने आप को सक्रिय, सृजनशील, समझदार तथा योग्य महसूस करती है। उसमे इतनी शक्ति व बल होता है की व अपने दैनिक कार्य कर सके रू परिवार व समाज में निर्धारित अपनी अनेक भूमिकाओं को निभा सके तथा दूसरों के साथ सन्तोषदायक सम्बन्ध बना सके। दूसरे शब्दों में कहें तो यह अभिप्राय है कि महिला का स्वास्थ्य उनके जीवन के हर पहलु पर प्रभाव डालता है फिर भी, अनेक वर्षों तक " महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सेवा " का अर्थ गर्भावस्था तथा प्रसव में दी जाने वाली मातृ स्वास्थ्य सेवाओं से अधिक कुछ नहीं रहा है ये सेवायें आवश्यक हैं परन्तु ये केवल महिलाओं की, मां की भूमिका का ही ध्यान करती हैं। केवल बच्चे पैदा करने की क्षमता को छोड़ कर महिलाओं का स्वास्थ्य तथा उनसे सम्बंधित अन्य आवश्यकताओं को, पुरुषों की तुलना में कम महत्व दिया जाता है।

यहाँ महिलाओं के स्वाथ्य्य का एक भिन्न पहलू रख रहे हैं। पहली बात रू हमारा विश्वास है कि हर महिला को सम्पूर्ण जीवन में पूर्ण स्वस्थ्य सेवायें प्राप्त करने का अधिकार है। महिला से सम्बंधित स्वास्थ्य सेवाएं जीवन के हर क्षेत्र में उसके लिए सहायक होनी चाहिये– न केवल उसकी पत्नी व मां की भूमिका के लिए। दूसरी बात यह है कि महिला के स्वास्थ्य पर न केवल उसके शरीर की संरचना का, बल्कि उसके इर्द–गिर्द का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, पर्यावरणों का तथा राजनीतिक परिस्थितियों का उन पर ही प्रभाव पड़ता है ।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना

RSBY श्रम एवं रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) रहने वाले परिवारों को स्वाास्य्खा बीमा कवरेज प्रदान करने हेतु आरंभ की गई RSBY का उद्देश्य स्वास्थ्य आघातों से उत्पतन्न वित्तीय देयताओं से गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को सुरक्षा प्रदान करना है, जिसमें अस्पेताल में भर्ती करना शामिल है।

योग्यताएं

- असंगठित क्षेत्र के कामगार जो बीपीएल श्रेणी में आते हैं और उनके परिवार के सदस्य (पांच सदस्यों की परिवार इकाई) को योजना के तहत् लाभ मिलेंगे।
- कार्यान्वयन एजेंसियों की जिम्मेदारी होगी कि वे असंगठित क्षेत्र के कामगारों और उनके परिवार के सदस्यों की योग्यता का सत्यायपन करें, जिन्हें योजना के तहत् लाभ मिलने का प्रस्तामव है।
- लाभार्थियों को पहचान के उद्देश्यज के लिए स्मार्टकार्ड जारी किए जाएंगे

लाभ

- असंगठित क्षेत्र के कामगार और उनके परिवार (पांच की इकाई) शामिल किए जाएंगे।
- प्रति परिवार प्रति वर्ष पारिवारिक फ्लोटर आधार पर कुल बीमा राशि 30,000/– रुपए होगी।
- अस्पाताल के व्यय, सभी सामान्य् बीमारियों की देखभाल सहित कुछ निष्कासन संभव हैं।
- सभी पूर्व – मौजूद रोग शामिल किए जाएं।

मिशन इन्द्रधनुष योजना

मिशन इन्द्रधनुष अभियान भारत सरकार के केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय द्वारा चलाया गया है। इस योजना का प्रारम्भ 25 दिसम्बर 2014 को किया गया इस योजना के अन्तर्गत सभी बच्चों का टीकाकरण सम्मिलित किया गया है। इन्द्रधनुष के सात रंगो को प्रदर्शित करने वाला मिसन इन्द्रधनुष का उद्देश्य उन बच्चो का 2020 तक टीकाकरण करना है। जिन्हें अभी तक टीके नही लगे है। इस कार्यक्रम को चरणवद्ध माध्यम चलाया गया है। पहले चरण में 201 जिलो की पहचान की गयी है। जिसमें 50 प्रतिशत बच्चो को टीके नही लगे हैं। या उन्हें आंशिक रूप से टीके लगाए गए है।

इन जिलों को नियमित रूप से टीकाकरण की स्थिति सुधारने के लिए लक्ष्य बनाया जायेगा। मंत्रालय ने कहा है कि 201 जिलों में से 82 जिले केवल चार राज्य उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान से है और चार राज्य के 42 जिलों में 25 प्रतिशत बच्चों को टीके नहीं लगाए गए हैं। इस मिसन का कार्यान्वयन 7 अप्रैल 2015 से विश्व स्वास्थ्य दिवस से प्रारम्भ हुआ इन जिलो में इस मिसन के तहत चार लाख उच्च जोखिम वाली बस्तियों पर ध्यान दिया जायेगा। इन क्षेत्रो मे भौगोलिक, जनांकिकीय, जातीय और संचालन सम्बन्धी 'अन्य चुनौतियों के कारण कम टीके लगाए जा सके हैं।

उद्देश्य–

स्वास्थ्य मन्त्रालय ने यह सुनिश्चित किया है कि प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत और उससे अधिक बच्चों को टीकाकरण में शामिल किया जायेगा। इस लक्ष्य को तेजी से पूरा करने के लिए मिसन इन्द्रधनुष को अपनाया गया है। इस योजना के अनुसार प्रणालीबद्ध टीकाकरण अभियान चलाया जायेगा। जिसका उद्देश्य उन बच्चो तक पहुंचना है जो टीकाकरण से वंचित रह गए हैं। मिसन इन्द्रधनुष के अन्तर्गत जनवरी तथा जून 2015 के बीच चार विशेष टीका अभियान चलाया जायेगा। इसका व्यापक नीति होगी और अभियानों की निगरानी की जायेगी। मिसन की नीति बनाने और उसे लागू करने पोलियों कार्यक्रम के क्रियान्वयन की सहायता ली जायेगी पहले चरण में 201 जिले रखे जायेंगे दूसरे चरण में 297 जिलो को लक्ष्य बनाया जायेगा।

स्वास्थ्य मन्त्रालय ने विभिन्न महत्त्वपूर्ण संगठनों को भी इसमें सम्मिलित किया है। और यह निर्धारित किया गया है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन–यूनीसेफ, रोटरी इण्टरनेशनल तथा अन्य सहयोगी मन्त्रालय को तकनीकी समर्थन देगे। मिसन इन्द्रधनुष देश भर के महत्वपूर्ण व्यवहारिक क्षेत्रो में उच्च टीकाकरण सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम होगा। इसमें उन जिलो को विशेष ध्यान

दिया जायेगा जहाँ टीकाकरण कम हुआ है। इस योजना को सफल बनाने के लिए चार आधारभूत अवयव सम्मिलित किए गए हैं–

1– सभी स्तरों पर अभियानों की व्यवहारिक योजना तैयार करना नियमित टीकाकरण सत्र के दौरान पर्याप्त टीका लगाने वालों और सभी टीके की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक जिलो मे सभी ब्लाक एवं शहरी क्षेत्रो मे सूक्ष्म योजनाओं में संशोधन करना है।

2– प्रभावी जन सम्पर्क और सामाजिक रूप से संगठित करने के प्रयास आवश्यकता पर आधारित जनसम्पर्क की रणनीति के जरिए टीकाकरण, सेवाओं के प्रति जागरुकता एवं मांग बढ़ाना तथा जन सम्पर्क, मीडिया, लोगों के आपसी सम्पर्क युवाओं के नेटवर्क के माध्यम से नियमित टीकाकरण कार्यक्रम में समुदायों की भागीदारी बढाने के लिए सामाजिक रूप से संगठित करने की गतिविधियाँ।

3– टीकाकरण सेवाओं के लिए नियमित टीकाकरण गतिविधियों में स्वास्थ्य अधिकारियों और कार्यकर्ताओं की क्षमता को बढ़ाना।

4– देश के सभी जिलो में टीकाकरण के लिए जिला कार्य बलो को सुदृढ़ कर, जिला प्रशासन और स्वास्थ्य मशीनरी की जिम्मेदारी को बढ़ाना, और वास्तविक समय के आधार पर कार्यान्वयन में कमियों को समाप्त करने के लिए संयुक्त सत्र निगरानी आकड़ों का उपयोग करना।

जननी सुरक्षा योजना–

जननी सुरक्षा योजना राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिसन के तहत सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रम है इसे गरीब गर्भवती महिलाओं में संस्थागत प्रसव को बढावा देकर मात्तृत्व एवं नवजात शिशु मृत्युदर घटाने के उद्देश्य से कार्यान्वित किया जा रहा है। इस योजना की शुरुआत 12 अप्रैल 2005 को भारत के तत्कालीन प्रधानमन्त्री द्वारा की गयी थी जननी सुरक्षा योजना 100 प्रतिशत केन्द्र प्रायोजित योजना है यह योजना गर्भावस्था के दौरान प्रसूति पूर्व देखभाल प्रसव के दौरान संस्थागत देखभाल के साथ–साथ नकद सहायता भी प्रदान करती है। इस योजना के तहत दस कम निष्पादन वाले राज्यों मुख्यतः आठ राज्य असम तथा जम्मूकश्मीर शेष राज्यों में सरकार और गरीब गर्भवती महिलाओं के बीच एक सुदृढ़ कड़ी के रूप में अधिकृत सामाजिक स्वास्थ्यकर्ता आशा की पहचान की गयी। अन्य राज्यो एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में आंगनबाडी कार्यकर्ता और आशा जैसे कार्यकर्ता इस योजना मैं सम्मिलित है।

उद्देश्य–

1–यह योजना गरीब गर्भवती महिला पर ध्यान केन्द्रित करती है। जिसके तहत उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, असम, राजस्थान, उड़ीसा एंव जम्मूकश्मीर राज्यों में निम्न संस्थागत प्रसव है। इन राज्यों को (एल.पी.एस) के रूप में नामित किया गया है। तथा शेष राज्यो को उच्च प्रदर्शन करने वाले राज्यों (एच.पी.एस) के रूप में नामित किया गया है।

2– प्रत्येक गर्भावस्था की निगरानी करना इस योजना के तहत पंजीकृत प्रत्येक लाभार्थी के पास एक एम. सी.एच. कार्ड के साथ एक जननी सुरक्षा योजना कार्ड होना चाहिए। सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र के चिकित्सा अधिकारी और ए०एन०एम० की सम्पूर्ण देख–रेख में पहचान की गयी है। सम्वन्धित। अधिकृत कार्यकर्ता आशा या आंगनवाड़ी अनिवार्य रूप से विस्तृत जन्म योजना तैयार करेंगे। यह प्रभावी से प्रसव पूर्व जाँच और प्रसव के उपरान्त देखभाल की निगरानी में मदद करेगा।

3– नगद आर्थिक सहायता के लिए पात्रता– गरीबी रेखा के नीचे का प्रमाण पत्र– यह सब एच.पी.एस. राज्यों में आवश्यक है। जहाँ पर वी.पी. एक कार्ड अभी तक जारी नहीं किए गए वहाँ राज्य या संघ शासित

प्रदेश, ग्राम प्रधान या वार्ड सदस्य को अधिकृत करते हुए, गर्भवती माता के परिवार की जरूरत मन्द स्थिति के प्रमाण पत्र के लिए एक सरल मानदण्ड तैयार करेंगे।

4– नगद आर्थिक सहायता प्रदान करना– गर्भवती महिला को प्रसव के लिए मुख्यतः नगद, आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। इसे संस्थान में ही प्रभावी ढंग से दिया जाता है। प्रसव के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थान में जाने वाली गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य संस्थान में सम्पूर्ण नगद राशि एक बार में वितरित किया जायेगा। यह देखते हुए की कुछ महिलाएँ प्रसव पूर्व देखभाल के लिए निजी संस्था में जाती है तो उन्हें टी.टी इन्जेक्सन सहित कम से कम तीन ए.एन.सी. प्राप्त करने के लिए कुछ वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति जननी सुरक्षा योजना के

अन्तर्गत नगद सहायता का कम से कम तीन चौथाई (3/4) लाभार्थी को एक बार में सम्पूर्ण से प्रसव के समय में दे दिया जायेगा।

आयुष्मान भारत योजना–

आयुष्मान भारत योजना स्वास्थ्य के क्षेत्र में भारत सरकार की एक फ्लैगशिप योजना है। सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज के उद्देश्य से प्रेरित इस योजना को शुरू करने का सुझाव राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 द्वारा प्रस्तावित था, 21 मार्च 2018 को हुयी कैबिनेट की बैठक में आयुष्मान भारत, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सुरक्षा मिसन के रूप में इस कार्यक्रम को स्वीकृति मिली और अब यहीं योजना–आयुष्मान भारत–प्रधानमन्त्री जन आरोग्य योजना (PMJAY) के नाम से जानी जाती है। इस योजना का उद्देश्य निम्न लिखित है:– इस योजना का उद्देश्य आर्थिक रूप से कमजोर लोगों (बीपीएल धारक) को स्वास्थ्य बीमा मुहैया कराना है। इसके अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक परिवार को 5 लाख तक का कैशरहित स्वास्थ्य बीमा उपलब्ध कराया जायेगा। १० करोड़ बीपीएल धारक परिवार (लगभग ५० करोड़ लोग) इस योजना का प्रत्यक्ष लाभ उठा सकेगें। आयुष्मान भारत "निरामयम" योजना का उद्देश्य गरीब एवं असहाय परिवारों पर बीमारियों पर खर्चे होने वाले आर्थिक बोझ एवं गुणवत्तापूर्वक इलाज समय पर उपलब्ध कराना है। इस योजना के हितग्राहियों परिवार को 5 लाख रूपये का सलाना ईलाज योजना के अन्तर्गत सम्बध्द निजी एवं शासकीय चिकित्सालयों में उपलब्ध होगा ।

प्रधानमन्त्री जन आरोग्य योजना–

यह आयुष्मान भारत का दूसरा प्रमुख घटक है। जिसके नाम से अब यह योजना लोकप्रिय है। यह विश्व की सर्वाधिक विस्तृत स्वास्थ्य बीमा योजना है। इसके सबसे मूलभूत प्रावधान को देखे तो यह निर्धारित परिवारों को द्वितीयक एवं तृतीयक स्वास्थ्य सेवाओं के लिए प्रतिवर्ष 5 लाख रुपये का स्वास्थ्य बीमा प्रदान करती है। इस प्रकार यह ग्रामीण और शहरी भारत के करीब 10.74 करोड़ परिवारों को कवर करती है। यह योजना अभी तक देश की प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल मुख्यतः प्रजनन और मातृत्व स्वास्थ्य, नए जन्मे बच्चो और संक्रमित रोगो तक ही रही है। कुल मिलाकर 15 प्रतिशत ही स्वास्थ्य मांग को पूरा करते है।

प्रधानमन्त्री मातृत्व वन्दना योजना–

प्रधानमन्त्री मातृत्व वन्दना योजना का तात्पर्य होता है कि हम प्रथम वार आपके गर्भवती होने की कामना करते है। इस योजना के अन्तर्गत प्रथम बार गर्भवती होने पर पहला बच्चा पैदा होने पर 5000 दिया जाता है। यह धनराशि तीन किस्तों में प्रदान जाती है। पहली किस्त तव प्रदान की जाती है जब गर्भवती महिला जब संस्था में पंजीकरण कराती है। उस समय उसके खाते में 2000रु की धनराशि दी जाती है। दूसरी किस्त तब प्रदान की जाती है। जब गर्भवती महिला अपनी सभी जांचे पूरी करवा लेती है।

गर्भवती महिला की चार–बार जाँच की जाती है। इसमें से जब वह तीन जाँच पूर्ण कर लेती है तब उसे 1000 रु० प्रदान किया जाता है। तीसरी बार जब उसे बच्चा पैदा हो जाता है अर्थात प्रसव के 90 दिन बाद उसे 2000रू0 और धनराशि दी जाती है।

किशोरी योजनाः वालिका योजना

उत्तर प्रदेश में एक के बाद एक कई क्षेत्रों में सफलता पायी है। कई क्षेत्रो में अपनी खुद की पहचान बनायी है। इसके बाद भी अभी कई क्षेत्र ऐसे है। जहाँ लोगो को अपनी कामयाबी की जड़े जमानी बाकी है। स्वास्थ्य के प्रति लोगों में जागरूकता का अभाव पाया जाता है। उत्तर प्रदेश सरकार ने इस तरफ शुरुआत मार्च 2017–18 में हुई इस योजना का उद्देश्य किशोरी और बालिकाओं को न सिर्फ हेल्थ के प्रति जागरूक करना है। बल्कि उनके अन्दर उपस्थित पोषण की कमी को भी खत्म करता है। इसके लिए पूरे प्रदेश में अभियान चलाकर लोगो को जागरूक किया जायेगा। कई सरकारी रिपोर्ट यह बताती है कि महिलाएं अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरुक नहीं होती है। खास कर किशोरियों में तो इसका कमी है। यही कारण है कि ऐसी बालिकाओं को बनाना ही इस योजना का मुख्य उद्देश्य है। किशोरी बालिका योजना के अन्तर्गत 11 साल से 107 साल तक को बालिकाओं को शामिल किया गया है। 11 से 14 साल की उम्र की बालिकाओं को होम रासन था हाँट कुक मील खाना दिया जायेगा इस योजना में उन्ही लड़कियों को शामिल किया जा रहा है। जो पढाई छोड़ चुकी है। होम राशन आइटम में 18 ग्राम प्रोटीन 600 ग्राम कैलोरी मात्रा रहेगी इसके अलावा उन्हें ज्यादा से ज्यादा सूक्ष्म पोषक तत्वों का सेवन करने की सलाह दी जायेगी। उत्तर प्रदेश सरकार ने गैर पोषण घरक फार्मूला तैयार किया है। सरकार की तरफ से इस योजना के तहत किशोरी बालिकाओं को स्वास्थ्य जाँच की सुविधा दी जायेगी। उन्हें परिवार कल्याण, परामर्श, मार्ग दर्शन, बाल देखभाल अभ्यास जीवन कौशल शिक्षा के बारे में बताया जायेगा। किशोरी बालिका योजना में आशा कार्यकर्तियों की भूमिका उत्तर प्रदेश किशोरी बालिका योजना आशा कार्यकर्तियों की अहम् भूमिका होती है। आशा घर–घर जाकर सबसे पहले ऐसी लड़कियों या किशोरियों की पहचान करती जो सेहत ठीक न होने के कारण स्कूल नहीं जा पाती है। इसके बाद ऐसी लडकियों की आशा के द्वारा एक सूची तैयार की जायेगी इसके बाद बालिकाओं को इस योजना से जोड़ने का प्रयास किया जायेगा। इसमें आशा लड़कियों को सरकार द्वारा दिए गए गाइड लाइन के आधार पर जागरुक बनाने का प्रयास करती है। इसके किए आशा और आंगनवाडी कार्यकर्तियों को प्रोत्साहन धनराशि भी दी जायेगी।

इस योजना का लाभ किशोरी बालिका योजना के तहत कुपोषण की पहचान करने की अलग–अलग परियोजनाए चलायी जायेगी एक मजबूत अभिव्यक्ति प्रक्रिया शुरू की जायेगी जहाँ युवतियां अपनी सेहत के बारे में आसानी से जानकारी हासिल कर सके। इस योजना के अन्तर्गत आंगनवाड़ी तहत ब्लाक स्तर पर से लेकर गाँव स्तर तक एक ससम्म अभियान चलाया जायेगा। इस योजना के अन्तर्गत आंगनवाडी केन्द्रो की कार्यकर्तियों को भी जागरूक किया जायेगा। जिससे वे गाँव की बालिकाओं को पोषण की कमी के बारे में बता सके।

निष्कर्ष– मानव संमाज में मुख्यतः दो महत्वपूर्ण तत्व पायी जाती है. महिला और पुरुष इन दोनो इकाइयो का समाज में अपना–अपना महत्व होता है। परन्तु ऐसा देखा गया है कि समाज पुरुष वर्ग की महत्ता ओपेक्षाकृत ज्यादा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री और पुरुष एक दूसरे के बिना अधूरे है फिर भी पुरुषों को अधिक महत्व दिया जाता है। वह चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो या स्वास्थ्य का क्षेत्र सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक प्रत्येक क्षेत्र मे पुरुषो को महत्ता प्राप्त है परन्तु स्वतंत्रता के बाद से ही स्त्रियों की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। भारत सरकार अनेक, स्वास्थ्य भोजनाएँ चलाकर स्त्रियों के स्वास्थ्य की

देखभाल कर रही है। किशोरी योजना किशोरियों के स्वास्थ्य की देखभाल तथा मिशन इन्द्रधनुष के द्वारा बच्चों के टीकाकरण का प्रावधान कटके बच्चों को पोलियों से बचाने का कार्य किया जा रहा है। सरकार द्वारा सुरक्षा योजना चलाकर महिलाओं की प्रसूति के उनके खान–पान की व्यवस्था कर रही है। इसे भी प्रकार से भारत सरकार ने चिकित्सा क्षेत्र मे विभिन्न नियुक्तियाँ करके भी स्वास्थ्य के क्षेत्र में सुधार लाने का प्रयास किया है जैसे आशा, आंगनवाडी, एवं ए०एन०एम० इत्यादि। इन सब कार्यक्रमों का निश्चित रूप से सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

- पंडित, एन. (2001) ''गर्भवस्था के दौरान आहार'', मंजुल पब्लिशिंग हाऊस, भोपाल। पृ. क्र.53–66।
- सिंह अनीता (2002), ''उपचारात्मक पोषण, गर्भावास्था में आहार नियोजन'', स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ.क्र. 88–97।
- सक्सेना व बी वाट्रिका (2002), ''न्यूट्रीशन स्टेट्स ऑफ रूरल प्रेगनेन्ट विमन'', इण्डियन जनरल ऑफ कम्यूनिटी मेडिसन।
- हांडा, परवेश (2005), ''गर्भवती की देखभाल'', प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।
- पंडित, एन. (2001) ''गर्भवस्था के दौरान आहार'', मंजुल पब्लिशिंग हाऊस, भोपाल। पृ. क्र. 53–66।
- पाण्डेय ,निर्मला 2008 प्रतापगढ जिले के समाजिक आर्थिक विकास हेतु स्थानिक नियोजन।
- https://MPWCDMIS.GOV.IN
- https://www.drishtiias.com
- Ministry of Woman and child Development
- https://wed.nic.in
- रिर्पोट ऑफ नेशनल फैमली हैल्थ सर्वे

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों में उच्च शिक्षा की स्थिति

रविदास
शोध छात्र,समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

उच्च शिक्षा ने विशेषीकरण तथा श्रमविभाजन के रूप में न केवल औद्योगिक विकास में योगदान किया, वरन सामाजिक तथा आर्थिक विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने में भी इसकी एक उपयोगी भूमिका है। शिक्षा, जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त व्यक्ति के समग्र विकास की एक प्रक्रिया है, मनुष्य के जीवन को अच्छा बनाने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है शिक्षा किसी भी राष्ट्र और समाज का विकास करने का सशक्त माध्यम है। यह सामाजिक बदलाव का प्रमुख हथियार है। शिक्षा का उद्देश्य वर्ग विहिन, शोषण विहीन तथा समतामूलक समाज का निर्माण होना चाहिए। ज्ञान की विरासत पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है, चीन के प्रख्यात दार्शनिक कुआनल्सू (551–479इ.पू) ने कहाँ था "अगर आप एक वर्ष योजना बनाना चाहते है तो बीज बोइए अगर दस वर्ष की योजना बना रहे है तो पौधा लगाइये अगर आप सौ साल की योजना बनाना चाहते है तो लोगों को पढ़ाइये कहने का तात्पर्य है कि एक बीज बोने से एक फसल मिलेगी, किन्तु अगर पढ़ाएगे तो हजारो शिक्षित पीढ़िया पाएंगे। जिन राष्ट्रों और सभ्यताओं ने शिक्षा और प्रशिक्षण पर जोर दिया है उन्होंने बौद्धिक और वैज्ञानिक सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है दुर्भाग्य से हमारे देश में शिक्षा की ओर बहुत ध्यान नही दिया गया है। हम लोगों को शिक्षित करने की जगह केवल उनकी साक्षरता पर जोर दे रहे हैं।

स्कूलों की जगह हममें वैकल्पिक केन्द्र, और शिक्षक की जगह शिक्षामित्र, शिक्षा कर्मी गुरूजी इत्यादि)की अवधारणा विकसित कर ली है। देश में सबको समान गुणवत्ता वाली, सार्थक और उपयोगी शिक्षा का पूर्णतया अभाव है। वर्तमान में देश की शिक्षा पूरी तरह 'बाज़ार' की गिरफ्त में है। आज शिक्षा खरीदी और बेची जा रही है। धन की कमी का रोना रोकर सरकार की ओर स्ववित्तपोषित पाठ्यक्रमो को बढ़ावा दिया जा रहा है। उच्च शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों में भारी– भरकम फीस के कारण शक्तिशाली और धनपति ही आगे बढ़ रहे है। तकनीकी और व्यवसायिक पाठ्यक्रमों की बात ही छोड़ दीजिए कला समाज विज्ञान विषयों की सामान्य पढ़ाई भी देश के शोषित–पीड़ित लोगों के लिए एक दिवास्वप्न साबित हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र मे नीजी क्षेत्र का दबदबा बढ़ता जा रहा है। ऐसे में सक्षम और चन्द मुट्ठी भर लोग ही उच्च शिक्षा केंद्रो में प्रवेश प्राप्त कर रहे हैं। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति आदिवासी और अधिकांश अल्पसंख्यक महज साक्षर हो पा रहे है। उच्च शिक्षा केन्द्रो में उनकी पहुंच न के बराबर है। विश्वविद्यालय में रोजगार परक पाठयक्रमों के नाम पर अपार धन उगाहा जा रहा है। यह कहने में कोई हर्ज नहीं कि उच्च शिक्षा अमीर लोगों की जागीर बनती जा रही है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने स्कूली शिक्षा का फार्मूला लागू कर लिया है, कई राज्यों में तो मात्र सात माह के लिए ठेके पर शिक्षकों की नियुक्ती मामूली रकम (6 से 8 हजार) देकर की जा रही है। पत्राचार पाठ्यक्रम और वर्चुअल युनिवर्सिटी की अवधारणा देश की उच्चशिक्षा के पतन का धोतक है। यहाँ विश्वविद्यालय को न कैंपस की जरूरत है और न ही शिक्षको और इन्फ्रास्ट्रक्चर की, जाहिर है ऐसी शिक्षा व्यवस्था में क्लास रूम जैसी बात रही नही जा सकती।

कोठारी आयोग ने कहा था कि यह शिक्षा व्यवस्था की जिम्मेदारी है कि विभिन्न सामाजिक समूहो और तबको को एकत्र करे और इस प्रकार समतामूलक और एकजुट समाज को विकसित होने को प्रोत्साहित करे। लेकिन आज शिक्षा व्यवस्था सामाजिक भेदभाव की जड़ है। एक ओर जर्जर और बदहाल सरकारी स्कूल है जहां अधिकांस अनुसूचित जाति जनजाति, (वंचित–शोषित पीडित) समाज के बच्चे किसी तरह से साक्षर बनाये जा रहे है जहाँ दूसरी ओर पब्लिक, कान्वेंट और इन स्कूल मे पूजीपति धन्नासेठ अभिजात्य के मुठठीभर लोगों के बच्चे पढ़ते है। उच्चशिक्षा में वैज्ञानिक तकनीकी प्रबंधन क्षेत्र मे पूजीपति लोगो का बोलबाला है। क्योंकि वे साधन सम्पन्न है मोटी रकम देकर पढ़ सकते है। अतः वहां योग्यता प्रतिभा अथवा मैरिट को कोई जरूरत नही है प्रवेश में आरक्षण की बात पर हायतौबा मचाने वाले तथाकथित मेरिट धारी प्रतिभा के धनी 20–30 लाख फीस देकर डाक्टर इंजीनियर बन जाते है। वर्तमान में शिक्षा एवं शिक्षा के अवसरों में असमानता का बोलबाला है।

विश्वविद्यालयो की स्थापना एवं संचालन राष्ट्र के बहुमुखी विकास हेतु उत्कृष्ठ कोठी के मानव विकास संसाधन निर्मित कराने के लिए किया जाता है। इनका यह उद्देश्य है कि इनमें प्रवेश लेने वाले छात्र चुने हुये विषय में अधिकाधिक ज्ञान और कौशल अर्जित करें तथा उसमें सेवारत अध्यापक अपने विषय से संबन्धित ज्ञान और कौशल को और अधिक उन्नत बनाकर उसका सर्वाजनिक जीवन में प्रयास करें। किंतु वर्तमान में देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में उच्चशिक्षा के नाम पर केवल उपाधिया बाटी जा रही है। शोध और अनुसंधान की दशा दयनीय बनी हुई है। अधिकांश विश्वविद्यालय शोध अनुसंधान की परीक्षा लेने के और परिणाम तैयार करने में लगे है देश की कुल आबादी के अनुपात में भी हमारे यहां विश्वविद्यालयों की भारी कमी है। दुनिया के नक्से में भारत की उच्च शिक्षा पर नजर डाले तो भारत कही नजर नही आता । देश का कोई विश्वविद्यालय दूनिया के 100 शीर्ष विश्वविद्यालयो मे भी शामिल नही है इस सुची में हांगकांग जैसे छोटे शहर की तीन विश्वविद्यालय शामिल है।

जबकि वर्तमान में चीन में भारत के दस गुना से भी ज्यादा पी. एच.डी छात्र है। भारत में 38-4 लाख कालेजो में पढ़ाते है जो कुल शिक्षक आबादी का 84प्रतिशत हैं इनका शोध से कोई लेना–देना नहीं है यह केवल व्याख्यान देते हैं। 16 प्रतिशत शिक्षक विश्यविद्यालय में कार्यरत है जिन से शोध की उम्मीद की जाती है। 83 हजार शिक्षक है इनमें अनुसूचित वर्गो के नाममात्र के शिक्षक है। एक गम्भीर बात यह है कि हमारे देश में उच्चशिक्षा में दाखिले का राष्ट्रीय औसत 12 प्रतिशत है। विकसित देश की श्रेणी में आने के लिए इस आकडे को 30–35–55 प्रतिशत तक पहुंचना चाहिए लेकिन हम तमाम एशियाई देशो से बहुत पीछे है। कालेज है विश्वविद्यालय है लेकिन संसाधनों के अभाव में प्रयोग शालाएं पुस्तकालय खेल मैदान कक्षा के कमरे या तो नहीं है। या तो नाम मात्र के है यही वजह है कि भारत से प्रतिवर्ष लगभग दो लाख 64हजार छात्र विदेशों में पढ़ने चले जाते है इन सबके लिए आखिर कौन जिम्मेदार है। यह अहम सवाल है एक बड़ा सवाल है आरक्षण का और जब आरक्षण की बात आति है तो सवाल उठाया जाता है मेरिट की अनदेखी और जाति को वरीयता न दिये जाने की बात कहा जाता है कि जाति के आधार पर आरक्षण दिये जाने से प्रतिभावान पीछे रह जायेंगे और यह अन्यायपूर्ण तो है ही इससे शिक्षा व्यवस्था चौपट हो जायेगी। यह बेतुका और हास्यास्पदपूर्ण तर्क है अब तक एस.सी/एस.टी तथा पिछडो का हकमारकर कुण्डली मारे वैठे अभिजात्य/संभ्रात लोगों के रहते ही तो देश की शिक्षा व्यवस्था चौपट हो रही है संसद की आकलन समिति अपनी रिपोर्ट में कहती है कि देश के सिर्फ दस फिसदी कालेज और तीस फीसदी विश्वविद्यालय ही उच्च गुणवत्ता वाले है शोध तथा अनुसंधान के इस प्रकार गिरते स्तरके लिए आखिर कौन जिम्मेदार है क्या वे एस सी / एस टी पिछड़े जिन्हें अब तक शिक्षा केन्द्रों विश्वविद्यालयो और अन्य शोध संस्थानो में प्रवेश

से वंचित रखा गया है निश्चित तौर पर इसके लिए वही लोग जिम्मेदार है जो सदियो से शिक्षा के साथ–साथ जीवन के हर क्षेत्र में एका अधिकार जमाएं वैठे है मेरिड के सवाल पर हमारा स्पष्ट मानना है कि जिसे भी निष्पक्ष रुप से अवसर मिलेगा वह अपनी प्रतिभा और योग्यता के वेहतर प्रर्दशन करते हुए खुद आगे बढ़ जाएगा। आप उन्हें मौका तो दिजीए फिर देखिए होता है क्या ? और फिर आरक्षण की मांग तो करते है लेकिन सही रुप से लागू कहाँ होती है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के मुताबिक 1986की राष्ट्रीय शिक्षा नीति क`तहत गठित जवाहर नवोदय विद्यालय की वर्तमान में कुल संख्या लगभग 576 है। सत्र 2008में 10 वी तथा 12वी वोर्ड के परीक्षा परिणामों पर नगर डाले तो ज्ञात होता है 10वी में अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का उत्त्तीर्ण प्रतिशत क्रमशः 24-97 व 03-93 रहा इस प्रकार 12वीं में इन वर्गो का परीक्षा परिणाम 59-91 व 91-88 प्रतिशत रहा वहीं 10 वी व 12 वी सामान्य वर्ग के छात्र का उत्तीर्ण प्रतिशत क्रमशः 54-97 और 44-92 रहा इसी प्रकार से देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में तथा अनेक प्रतिष्ठित प्रतियोगी परीक्षाओं में अनुसूचित व पिछड़े वर्गों के छात्र बड़ी संख्या में प्रवीण सूची में शीर्ष स्थानों पर अपना नाम दर्ज करवाते है यह आंकडे इस बात के प्रमाण है। कि मेरिट के मुकाबले में दलित और आदिवासी किसी से भी पीछे नहीं है। हमारी यह राय है आप देश में समान शिक्षा व्यवस्था लागू कर दीजिए और अपना आरक्षण तुरन्त वापस ले लीजिए। एक बड़ी समस्या है आरक्षण नियमों की अवहेलना की यह आजादी के बाद से लगातार होता आ रहा है। आरक्षण की अनदेखी के लिए देश की वर्णजाति वादी संस्कृति तरह–तरह के हथकण्डे अपनाती है एक दशक पहले कालेजो तथा विश्वविद्यालयों में दाखिले को लेकर देश का बुद्धिजीवी और मीडिया हाय तौबा मचाया करता था अब–जब शोषित–पीड़ित लोग मेरिट में आ रहे है तो उन्हें यह कहकर जबरदस्ती कोटे में ढकेला जाता है। कि तुम्हे अच्छा विषय नही मिलेगा, हास्टल व स्कालरशिप नहीं मिलेगी आदि। अनिवार्य योग्यता परीक्षा में प्राप्तांक में शासन द्वारा ही दी जाने वाली छूट को भी विश्वविद्यालय नही मानते हैं। मेरिट जन्मजात नहीं होती यह बनाया जाता है। उचित माहौल और प्राप्त सुविधाएँ इसका प्रमुख कारण है जिसे दलित और पिछड़े वर्गों ने कर दिखाया है। अपनी योग्यता और प्रतिभा के बल ही बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर और मान्यवर कांशीराम साहब जैसी विभूतियों ने शून्य से शिखर तक पहुँच कर दुनिया में अपनी अमिट पहचान छोड़ी है देश के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति लोकसभा अध्यक्ष, प्रधान न्यायधीश विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष जैसे महत्वपूर्ण पदों पर बिना आरक्षण के पहुँचकर दबे–कुचले लोगों ने अपनी योग्यता और क्षमता का वेहतर प्रर्दशन कर दिखाया है। इसके बावजूद उच्चशिक्षा में दलित और(पिछडों का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। 31 मार्च 2009 के यूजीसी आकडो के अनुसार देश के कुल 471 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में व्याख्याता के एस.सी.के मात्र 64-6 प्रतिशत और आरक्षितपद भरे जा सके हैं। अनुसूचित अनुसूचित जनजाति में यह प्रतिशत 4-4 प्रतिशत है राज्य विश्वविद्यालय में व्याख्याता के कुछ आरक्षित पदों में अनुसूचीन जनजाति के क्रमशः 06-4 प्रतिशत तथा 19-5 प्रतिशत पद भरे गये है विभिन्न केन्द्रीय तथा राज्य विश्वविद्यालयों में रीडर और प्रोफेसर भले भर्ती किये गये हो लेकिन केन्द्रीय विश्वविद्यालय में अनुसूचित वर्गो के आरक्षण का पालन अब भी नहीं किया गया है आखिर कौन है जिम्मेदार इसका ? क्या वजह है कि आजादी के 75 वर्षो के बाद भी आरक्षण का कोटा पूरा नही किया जा रहा है। अनुभव बनाते है कि वर्णवादी मानसिकता हर हाल में अपना वर्चस्व कायम रखना चाहती है यही कारण है कि वह ज्ञान विज्ञान के सभी संसाधनों पर अपना आधिपत्य और अधिक मजबूत बनाये रखने के लिए तमाम तरह के हथकंडे अपना रही है आधुनिक भारत के महापुरषों विशेषकर ज्योतिबाफूले छत्रपतिशाहू जी महाराज और बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के संघर्षो एवं प्रयासो से दलितो पिछडों के लिए शिक्षा के अवसर मिले।

देश के इतिहास में सबसे पहले ज्योतिबा फूले ने ही सदियों से शोषित पिड़ित जनों एवं महिलाओं के लिए स्कूल खोले ।

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था के अर्न्तगत छ हजार टुकडों (जातियों) में बाटे गये लोगों को अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के रुप में परिभाषित करके सवैधानिक अधिकारो से शक्ति सम्पन्न बनाने की कोशिश की। आजादी के बाद शोषित और पीडित जनों ने आधुनिक शिक्षा के माध्यम से जैसे–जैसे सामाजिक राजनीतिक जीवन में अपनी उपस्थिति दर्ज करवानी शुरु की वैसे ही उन्हें आगे बढ़ने से रोकने का कुत्सित षडयंत्र शुरू कर दिया गया लेकिन वर्तमान समय में धीरे–धीरे बदलाव शिक्षा के माध्यम से देखने को मिल रहा है।

सन्दर्भ ग्रंथ–

1 अम्बेडकर वी.आर. अनटचेवल : हू वेयर दे एण्ड हाउ दे विकेम अनटचेवल अम्रत कुक कम्पनी दिल्ली 1948
2 अम्बेडकर वी.आरः द वुद्धा हिज धम्मा, सिद्धार्थ पब्लिकेशन मुम्बई 1979
3 रदरमुंड इंदिरा महात्मा गांधी हरिजन गांधी मार्ग 1979
4 बाबा साहब अम्बेडकर का जीवन संघर्ष डॉ. जे पी प्रशांत ४६ वी गुईन एण्ड लखनऊ संस्करण, 1990
5 कृष्ण गोपाल, बाबा साहब व्यक्ति और विचार, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

शौचालय से ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव

संजय कुमार
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

ग्रामीण भारत में शौचालयों का अभाव बहुत पहले से रहा है। महात्मा गाँधी जी का सपना यह था, कि हमारा ग्रामीण भारत स्वस्थ एवं स्वच्छ रहे। इसलिए उनकी सोच यह थी, कि ग्रामीण भारत एवँ शहरी क्षेत्रों को किस प्रकार से स्वच्छ एवँ शौच मुक्त बनाया जाये। इस गम्भीर समस्या को अमल में लाने के लिए गाँधी जी ने कहा था, कि स्वतंत्रता से अधिक स्वच्छता जरूरी है। जहाँ वातावरण स्वच्छ है, वहाँ ही स्वस्थ, सामाजिक, आर्थिक विकास एवँ समृद्धि समाज में हो सकता है। हमारा भारत देश स्वतंत्रता के 75वें वर्ष पूर्ण होने के बाद भी शौच मुक्त नहीं हो सका। इन सभी बातों को अमल में लाते हुए माननीय प्रधानमंत्री जी ने देश को स्वच्छ एवं शौच मुक्त बनाने के लिए 2 अक्टूबर 2014 को गाँधी जी के जन्म दिवस के अवसर पर स्वच्छता कार्यक्रम योजनाएं लागू किए और स्वयं अपने हाथों में झाड़ू लेकर स्वच्छता अभियान को प्रारम्भ किये, और लोगों में जनजागरूकता फैलाने का प्रयास भी किया। योजनाएं तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक देश का प्रत्येक नागरिक अपने आस–पास सड़कों, गलियों, नालियों, शौचालयों आदि में निवास करते हैं लेकिन स्वच्छ नहीं रख पाते हैं। तो हमारा वातावरण दूषित व प्रदूषित रहेगा। और इसका हमको खामियाजा भुगतना पड़ेगा। इसलिए स्वच्छता मिशन के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में घर–घर शौचालयों का निमार्ण कर लोगों को शौच मुक्त बनाने का प्रयास सरकार द्वारा किया जा रहा है, कि लोग शौचालय का प्रयोग कर ग्रामीण वातावरण को स्वच्छ रख सकें। विशेष तौर पर ग्रामीण महिलाओं के लिए क्योंकि महिलाओं को परिवार व समाज का इज्जत समझा जाता है। जब शौचालय नहीं था तो महिलाओं को शौच क्रिया में बहुत समस्याएं उनके समक्ष होती हैं।

इन समस्याओं को ध्यान में रखकर हमारी सरकार ने घर–घर में एक–एक शौचालय मुफ्त में प्रदान किया जा रहा है ताकि शौचालय देश के हर घर में बन सके। इसके पहले ग्रामीण भारत में शौचालय नहीं था तो महिलाएं जिस तरह से पुरुष शौच के लिए खेत–खलिहानों में, सड़कों, नदियों आदि के किनारे करते थे। महिलाए भी चाहे रात हो, दिन हो बारिस, आँधी–तूफान हर मौसम में उनको शौच क्रिया के लिए बाहर का मुख देखना पड़ता था।

महिलाएं किसी अवस्था की हो जैसे– युवती, पौढ़ा, वृद्धावस्था आदि सबके समक्ष एक गम्भीर समस्या व चुनौती थी क्यों कि शौच के लिए उन्हें रात का इन्तजार करना पड़ता था। कभी भी उनको शौच क्रिया महसूस होती थी तब तक उनको सहन करके सायं या रात होने का इन्तजार करना पड़ता था। परन्तु यदि उनको बर्दाश्त नहीं होता था तो उन्हें किसी प्रकार से आड़ देखकर शौच क्रिया करके शारीरिक शान्ति का अनुभव करती थी । उनके शरीर को कितनी पीड़ा होती है और कितनी बीमारियों की जड़ें उसमें शुरु होती होगी । माँ, बहनों के इज्जत के लिए कम से कम शौचालय होना चाहिए।

खुले रुप में शौच न जाओ, माँ बहनों की लाज बचाओ, बीमारी को पास न लाओ ।
हो सभ्य सुसंस्कृत यह देश, प्रधानमंत्री का है यह संदेश।

शौचालय है तो स्वच्छता है, स्वच्छता है तो स्वास्थ्य है, स्वास्थ्य है तो समृद्धि है ।

स्वास्थ्य की रक्षा के लिए स्वच्छता का महत्व है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य गरिमा और स्वास्थ्य कल्याण के लिए स्वच्छता तक पहुँच बहुत जरुरी है। क्योंकि संयुक्त प्रयासों के बावजूद लोगों तक बेहतर स्वच्छता सुविधाओं अर्थात शौचालय तक पहुँच नहीं है। खुले में शौच को मानव मल के उचित निपटान के बिना खुले मैदानों, जलमार्गों, खेत–खलिहानों, खुले गढ्ढों व खाइयों में शौच करने के प्रथा को परिभाषित किया गया है। खुले में शौच शब्द का श्रेय **2008** में संयुक्त निगरानी कार्यक्रम को जाता है। खुले में शौच को असिंचित स्वच्छता के रुप में वर्गीकृत किया गया है । आज की दुनियाँ में विशेषतः ग्रामीण परिवेश में, पुरुषों के साथ महिलाएं भी खुले में शौच का अभ्यास कर रही हैं। अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में शौच करती हैं। उनमें से लगभग **70**से **80**प्रतिषत ग्रामीण परिवेश में पुरुष के साथ सहभाग बनकर खुले में शौच करने का प्रयास कर रही हैं। खुले में शौच करने से महिलाओं के स्वास्थ्य पर जोखिम प्रभाव प्रभाव पड़ता है । मानव मल से जुड़े संक्रामक रोग संक्रमित मल में कई हानिकारक जीव होते हैं जो कई स्वास्थ्य समस्याओं से जुड़े होते हैं। संक्रमित मानव मल के एक ग्राम में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीव हो सकते हैं। जिनमें अनेक प्रकार के वायरस और संक्रामक विषाणु, जीवाणु, प्रोटोजोआ, हेलमिन्थ अण्डे शामिल हैं।

अनुचित मानव अपशिष्ट निपटान भी इन रोग जनित के सम्पर्क के जोखिम को बढ़ाता है। संक्रमणीय रोग दस्त, टायफायड, एवं हैजा व वायरल संक्रामक जैसे महत्वपूर्ण स्वास्थ्य जोखिम पैदा कर सकते हैं।

दृष्टि हानि का मूल कारण जो मक्खिओं के माध्यम से फैलता है। जो संक्रमित व्यक्ति के आँखों का निर्वहन के माध्यम से फैलने की प्रवृत्ति के साथ मानव मल पर प्रजनन करते हैं। इसी तरह से स्नेल फीवर से संक्रमित हैं। एक पुरानी परजीवी बीमारी है जो मानव मल के माध्यम से मीठे पानी के घोंघे से फैलता है। यह संक्रमण मनुष्य में तब फैलता है जब त्वचा संक्रमण ले जाने वाले घोंघे या दूषित भोजन के सेवन के सम्पर्क में आती है। पानी और उनकी प्रतिरोधक क्षमता प्रणाली को व्यवस्थित करते हैं । खुले में शौच एक ऐसा मुद्दा है जो हर किसी को प्रभावित कर सकता है लेकिन महिलाओं को अक्सर हिंसा और कई स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करने का अधिक जोखिम होता है।

खराब स्वच्छता सुविधा वाली महिलाएं हुक्म वर्ग संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं, जिसके परिणामस्वरुप मातृ एनिमिया होता है जो सीधे गर्भावस्था के प्रतिकूल परिणामों से जुड़ा होता है। शौचालय तक सीमित या बिना पहुँच वाली महिलाएं मुख्य रुप से डायरिया की बीमारियों से पीड़ित होती हैं। जो कि उनकी प्रजनन के आयु के दौरान महिलाओं में कुपोषण का एक प्रमुख कारण है। बीमारी और कुपोषण के बीच परस्पर क्रिया बिगड़ते संक्रमण और महिलाओं के स्वास्थ्य में गिरावट के दुष्चक्र को आगे बढ़ा सकती हैं खासकर गर्भवती महिलाओं में बेहतर स्वच्छता हस्तक्षेप बीमारी के रोकथाम में रचनात्मक भूमिका निभा सकता है।

जिलेल बाऊर एट अब– जिसमें डायरिया और मिट्टी से फैलने वाले संक्रमण शामिल हैं।

खुले में शौच करने से मौखिक, शारीरिक और यौनिक हिंसा जैसे समस्याएं बढ़ सकती हैं जो महिलाओं को शारीरिक और मनोवैज्ञानिक रुप से प्रभावित करती है । जो अपने निजी घर से शौच के लिए खुले स्थानों पर बहुत ही दूर की यात्रा करने के लिए मजबूर होती हैं । अपनी मासिक धर्म

सम्बन्धी आवश्यकताओं के प्रबन्ध करने लिए जाना पड़ता है । जो कि हिंसा के लिए संवेदनशील करती है । गोपनीयता के विचार, सांस्कृतिक, मानदण्ड या धार्मिक प्रथाएं भी कई महिलाओं को सुबह या सायं तक इन्तजार करने के लिए बाध्य करती हैं। ताकि शौच क्रिया को करते समय दिखायी न दे।

भारत जैसे देश में भी आज युवा लड़कियों एवं निम्न घर की महिलाएं खुले में शौच से अत्यधिक भय, शर्म और लाचारी आयी है। मानव अधिकार का एक प्रमुख पहलू शारीरिक सुरक्षा का अधिकार है।

खुले में शौच से जुड़े स्वास्थ्य निहितार्थ के अतिरिक्त महिलाओं और शारीरिक सुरक्षा के निहितार्थों पर विचार करते हुए खुले में शौच वाली महिलाओं को हिंसा का अधिक खतरा होता है। केवल स्वच्छता को स्वास्थ्य, शिक्षा, आपस के विचार तक समाहित तक समाहित नहीं करना चाहिए। बल्कि मानवीय गरिमा के सन्दर्भ में माना जाना चाहिए खुले में शौच से शर्म की भावना पैदा होती है। खुले में शौच करने से स्वास्थ्य के परिणामों को प्रभावित करती है । और सामाजिक परिणामों की जाँच भी करती है।

विषय–

खुले में शौच करने से महिलाओं के स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जो महिलाएं गर्भवती हैं उनके ऊपर माँ के साथ विकासशील भ्रूण दोनों के लिए हानिकारक प्रभाव पड़ता है । ग्रामीण भारत के गर्भवती महिलाएं खुले में शौच करने से गर्भ अवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव के कारण समय से पहले जन्म और कम जन्म दर होती है । खुले में शौच करने वाली गर्भवती महिलाओं में संक्रमण का प्रसार और शौचालय का प्रयोग करने वाली संक्रमण का प्रसार के अपेक्षा अधिक जोखिम होता है । खराब स्वच्छता के साथ मातृ सम्बन्धित खतरा अधिक बढ़ जाता है। गर्भवती महिलाओं में मल मौखिक संक्रमण के कारण खराब पोषण के प्रभाव को बढ़ा देता है। महिलाएं जो खुले में शौच करती हैं उसके अपेक्षा जो महिलाएं शौचालय का प्रयोग करती हैं हीमोग्लोबिन की कमी होती है । खुले में शौच करने वाली महिलाओं की अपेक्षा खुले में शौच करने वाले पुरुषों में संक्रमण अधिक होता है।

ग्रामीण महिलाओं के प्रति खतरा–खुले में शौच करने से महिलाओं एवं लड़कियों के प्रति हिंसा एवं बलात्कार की घटनाएं घटित होती रहती हैं । क्योंकि जिस घर में शौचालय का अभाव है उस घर की महिलाएं जब बाहर शौच करने के लिए रात या दोपहर या सायं और भोर में निकलती हैं तो अपने घर से शौच करने के लिए बहुत ही दूर की यात्रा तय करना पड़ता है । यहाँ तक की चारों ओर खुला वातावरण रहता है। तो वह आड़ की चक्कर में बहुत ही दूर का चक्कर काटने के पश्चात झाड़ियो, जंगलों, नदी, तालाबों आदि सुन–सान क्षेत्रों में जाने के लिए विवश होती है।

उनके मजबूरी का फायदा उठाकर अगल–बगल महिलाओं के प्रति हिंसा अंजाम देने के लिए बलकारियों एवं अपराधिक प्रकृति के लोग उनसे फायदा उठाने के मकसद से उनके ऊपर टूट पड़ते हैं असहाय एवं मजबूर महिलाएं हिंसा की शिकार हो जाती हैं।

फिर उसके बाद जब रात के समय आँधी, तूफान, बारिस होती है, तो उस समय भी उनको अंधकार में शौच क्रिया के लिए जाना पड़ता है जिससे उनके साथ अनेक प्रकार का खतरा एवं जीवन समाप्त होने वाला खतरा बरकरार रहता है। जैसे बारिस, गर्मी के दिनों में, आँधी–तूफान में चप्पल या नंगे पैर से खेतों, जंगलों, पहाड़ों में जाने से उनके साथ जैसे सर्प, बिच्छू, चुड़ैल, जंगली

जानवरों से खतरा बना रहता है। इसलिए शौचालय के अभाव में विशेषतः ग्रामीण महिलाओं के प्रति खतरा बना रहता है।

सुझाव –

राष्ट्रीय स्वच्छता मिशन कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण परिवेश को स्वच्छ एवं शौच मुक्त बनाने के लिए स्वच्छता अभियान चलाया जा रहा है। इसके बावजूद भी ग्रामीण क्षेत्रों में खुले में शौच प्रक्रिया रोकने में अभियान नाकाम साबित हो रहा है। क्योंकि खुले में शौच की सामाजिक मान्यता मिली हुयी है।

आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालय को महंगी एवं विलासिता की वस्तु माना जा रहा है। शौचालय निर्माण के फैसले प्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं। जिनका स्वास्थ्य की चिन्ता से वास्ता है। आज भी जो लोग सामाजिक एवं आर्थिक रुप से उच्च स्थिति में हैं साथ ही वे शौचालय से लाभ के विषय में जागरुक हैं। निम्न व मध्यम वर्ग के लोग न तो स्वास्थ्य के प्रति जानकारी और न शौचालय के निर्माण से सहमति है। उनके घर के पुरुष एवं बच्चे तथा महिलाएं खुले में शौच क्रिया को चुनौती देने में सक्षम हो रही हैं। क्योंकि शौचालय न था तो वे मजबूरी में खुले में शौच के लिए जाती थी। लेकिन घर–घर में शौचालय निर्मित होने के बावजूद भी ग्रामीण महिलाएं एवं पुरुष चुनौती देने में आगे हैं। क्योंकि न तो उनको स्वास्थ्य का खयाल है और न ही स्वच्छ वातावरण का ध्यान है।

इसलिए विशेशतः आज भी महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों में खुले स्थानों पर शौच क्रिया करने में माहिर हैं। लेकिन इतना कहना जरुर है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में जागरुकता आयी है। और अपने मान–सम्मान एवं मान– मर्यादा को ध्यान में रख कर अब कुछ सुधार हुआ है। महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा खुले में शौच क्रिया में कमी आयी है।

जैसे–जैसे ग्रामीण महिलाओं एवं लड़कियों में शिक्षा का प्रसार एवं प्रचार हो रहा है वैसे ही महिलाओं में स्वास्थ्य व शौचालय के प्रति जागरुकता बढ़ी है। अब वे नहीं चाह रही हैं कि शौचालय रहते बाहर खुले स्थानों में शौच क्रिया करें लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता है कि ग्रामीण महिलाएं पूर्ण रुप से खुले में शौच नहीं कर रही हैं।

सुझाव यह है कि अभियान के द्वारा लोगों में स्वच्छता एवं शौचालय के प्रति प्रसार एवं प्रचार करके ग्रामीण क्षेत्रों में चाहे कोई भी पुरुष, महिला व बच्चे हों उनमें इसके प्रति सोच विकसित करने और स्वास्थ्य के प्रति अमल करने तथा वातावरण को स्वच्छ बनाये रखने के लिए उन्हें शिक्षा, उपदेश, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के सन्दर्भ में अधिक से अधिक जानकारी प्रदान करें।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दैनिक समाचार पत्र 28 नवम्बर 2019
2. ncbi.nim.nin.gov/pmc/
3. drishtiias.com
4. ni.vikash.pedia.in(पेयजल एवं स्वच्छता विभाग झारखण्ड दिनेश चन्द्र भारती)

स्वयं सहायता समूह : महिलाओं की दशा एवं दिशा

डॉ0 कंचन
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र
हेमवती नन्दन बहुगुणा राजकीय पी.जी. कालेज
नैनी, प्रयागराज

डॉ0 सतीश चन्द्र जैसल
असिस्टेंट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार,
उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश–

स्वयं सहायता समूह के सदस्य प्रायः समान हित, समान लिंग,समजातीय,समवर्गीय तथा परस्पर एक–दूसरे को जानने वाले होते है, अर्थात् इनमें विषमता नहीं पाई जाती है। समूह की कार्यप्रणाली, नियमावली तथा पदाधिकारियों का निर्णय सामूहिक रूप से स्वयं–सहायता समूह करता है। प्राथमिक गतिविधि के रूप में समूह के सदस्य छोटी–छोटी बचत करके उन्हे समूह के खाते में जमा करते है, तथा आवश्यकता पड़ने पर उस बचत में से समूह के सदस्य को ऋण देते है इस प्रकार स्वयं–सहायता समूह बचत एवं साख समूह के रूप मे कार्य करते है।

स्वयं–सहायता समूह के सदस्यो को निर्धनता से मुक्ति तथा आर्थिक स्वालम्बन के विकसित रास्ता दिखाते है, साथ ही ये समूह निर्धन व्यक्तियो के लिए एकता, भाईचारा, साहस, सबल, कुरीति निवारण तथा समस्याओं का साझा मंच भी उपलब्ध कराते है। स्वयं–सहायता समूह के माध्यम से सदस्यों की न सिर्फ लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली की जानकारी एवं उपादेयता का पता चलता है, बल्कि समूह के सदस्यों की चेतना, ज्ञान–कौशल एवं आत्मविश्वास में भी वृद्धि होती है। इन समूहों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों एवं सामान्य समस्याओं पर चर्चा के साथ सुधार के भी कदम उठाए जाते है।

मुख्य शब्द –स्वयं सहायता समूह, बचत,सामाजिक कुरीतियां, निर्धन व्यक्ति, उपादेयता, समस्या, सुधार, महिला,आर्थिक, सामाजिक।

प्रारम्भ में महिलाओं के मन में यह भावना रहती है कि, परिवार में उनका जन्म लड़की के रुप में होना खेदमंद है। उन्हें उनके परिवार वालों के द्वारा समाजीकरण के माध्यम से सहने की प्रवृत्ति बचपन से ही विकसित कराई जाने लगती है एवं उन्हें सामंजस्य कैसे स्थापित करना है, सिखाया जाने लगता है। उन्हें अनिवार्य रुप से यह संदेश दिये जाने का प्रयास किया जाता है कि, उनका परिवार में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। जब उनके जीवन के नये ढंग को अपनाने की चाह, परम्पराओं के तर्क जो,कुछ वास्तविक और कुछ काल्पनिक चिन्ता और भय के कारण उन्हे असहाय बनाया जाता है। उन्हे अपने परिवार तथा पति की मर्यादाओ को ध्यान में रखना होता है। कुछ स्त्रियाँ ऐसी रही है जिन्होने बार–बार स्त्रियों की दयनीय स्थितियों को समाज के सामने प्रकट किया है। ऐसी संघर्षमय स्थिति में वे दूसरों के लिये जीती है एवं अपना सारा जीवन न्यौछावर करती है। यहाँ भारत का उदाहरण लिया जा सकता है। यहाँ पितृ प्रधान समाज की व्यवस्था है, जो सामाजिक सम्बन्धो एवं भौतिक प्रधान अवयवों पर आधारित है। जिसके कारण पुरुष महिला पर वर्चस्व बनाए रखता है। इस व्यवस्था में पुरुष महिला से अधिक शक्तिशाली है। क्योंकि सभी सम्पत्तियों पर पुरुष का सर्वप्रथम हक बनता है। परन्तु वर्तमान समय में ऐसा नहीं है, सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही है, जो महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक रुप से उन्हें परिपक्व

बनाती है। जिससे वह समाज के साथ मिलकर चल सके एवं समाज में अपना भी योगदान दे सके। वर्तमान समय में महिलाओं को पुरुष के बराबर से माना जा रहा है। जिससे वह समाज में अपनी भागीदारी को अहम बना सकें और जो अशिक्षित वर्ग की महिलाएं है, इन्हें सरकार द्वारा प्रशिक्षण दिया जा रहा है। जिससे वे प्रशिक्षण प्राप्त कर अपना रोजगार स्थापित कर सकें। स्वयं–सहायता समूह उसी दिशा में सरकार द्वारा एक सार्थक प्रयास है। इस प्रयास के द्वारा समूह के व्यक्तियों को अपनी ताकत तथा कमजोरियों का ज्ञान होता है, इसका आशय यह है कि उद्यमी के निजी व्यवहार का अवलोकन करना एवं इसे सुधारने के उपाय निश्चित् करना, प्रमुख उद्यम कौशल का विकास करना, प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान व्यवसाय की योजना बनाना है। इसमें महिलाओं की विकासात्मक गतिविधियों में काफी महत्वपूर्ण भूमिका है। महिलाओं के बिना खुशहाली और प्रगति के लक्ष्यों की प्राप्ति करना सम्भव नहीं है। विकासात्मक गतिविधियों में शारीरिक और मानसिक अर्थात् दोनों किस्म की सहभागिता का होना आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ शारीरिक श्रम के कामों में जुटी हो सकती है लेकिन निर्णयन प्रक्रिया मे अक्सर महिलाओं की सहभागिता की अनुमति नहीं होती। दरअसल निर्णयन प्रक्रिया मे अक्सर महिलाओं की सहभागिता नाम मात्र की या उतनी नहीं होती जितनी कि खेतीबाड़ी के क्षेत्र में उनका योगदान है। ग्रामीण क्षेत्र मे महिलाएँ सभी कृषि कार्यों में काफी मेहनतकस कार्य करती है। इसके अलावा घर की और बच्चो की देखभाल की जिम्मेदारी भी उन्हीं की कंधो पर होती है। परिवार के लिए विकासशील देश में महिलाएं बुनियादी सेवाओं की मूल प्रबन्धक है इसी तरह परिवार में किसी भी किस्म की क्षति या नुकसान का सर्वाधिक असर भी सबसे पूर्व महिलाओं पर ही पड़ता है।

स्वयं–सहायता समूहो'' के गठन को कृषि प्रयोग के विस्तार के रुप में देखा जा रहा है। यह कृषकों का प्रयोगकर्ताओ का समूह है जो अपनी कृषि सम्बन्धी तकनीकी समस्याओं के निपटाने के लिए मिलजुल कर सामने आए हैं। ऐसे समूहों का कम से कम ग्राम स्तर पर महिलाओं में नेतृत्व के विकास के लिए और तकनीकी कार्यक्रमों के लिए अवश्य ही सहयोग दिया जाना चाहिए। स्वयं–सहायता समूहों को जबर्दस्ती गठित नहीं किया जा सकता। कार्यक्रम को लागू करने के लिए सहायताकर्ता को महिलाओं का भरोसा हासिल करना होगा। समूह प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए ताकि सभी सदस्य पूरी गर्मजोशी से इस कार्य में भाग लें। इसके अलावा इस कार्य में सिर्फ महिलाओं की सहभागिता ही जरुरी नहीं है, बल्कि इस मुहिम में ग्राम में रहने वालों और समूह गतिविधियों मे भाग लेने वाली महिलाओं के परिवारों के सदस्यों को भी विशेष रुप से अपना सहयोग देने की जरुरत है। सहायताकर्ता की सहायता से स्थिर समूहों को गठित करना सम्भव है। यद्यपि ऐसा करने में भी बहुत सी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। इसलिए समूहों का सदैव बुद्धिमत्ता से गठन करना चाहिए स्वयं सहायता समूह के सदस्य अपने समूह सदस्यों के सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए बचत कर सामूहिक निधि में एकत्रित करते हैं और इस प्रकार वे सक्रिय कार्य कर रहे हैं। समूह के सदस्य इस बचत के माध्यम से पारस्परिक आवष्यकताओं की पूर्ति करते हैं और आपसी लेन–देन करते है। स्व सहायता समूह द्वारा की गई बचत एक ऐसा नींव का पत्थर है जिस पर साख वितरण की पूरी इमारत खड़ी होती है ।

समाजशास्त्रीय महत्व की दृष्टि से देखा जाए तो महिलाएं स्वयं–सहायता समूह से जुड़ने के साथ–साथ परिवार की एक महत्वपूर्ण अर्थोपार्जन कड़ी भी बन गई हैं। महिलाओं को परिवार में सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा है तथा परिवार के छोटे–बड़े फैसले में उनकी राय ली जाने लगी है। स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं के आत्म विश्वास में वृद्धि हुई है तथा उनकी स्थिति में प्रर्याप्त सुधार हुआ है। सभी बातों को ध्यान में रखते हुए विशेष रूप से स्वयं सहायता से जुड़ी महिलाओं के पारिवारिक पहलुओं का विस्तार

पूर्वक अध्ययन के निष्कर्ष बताते है कि महिलाएँ स्वयं से सुदृढ़ तथा स्वावलंबी होने लगी है। यह व्यक्तित्व परिवर्तन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महिलाएं मेहनत कर अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करने लगी है। तथा परिवार की छोटी छोटी जरूरतों को भी पूरा करने में सक्षम होने के साथ कुछ बचत भी करने लगी है। घरेलू महिलाएँ घर के साथ–साथ बाहर भी अपना आर्थिक अस्तित्व तलाशने में सफल होते दिख रहीं हैं।

निर्णय लेने में भागीदारी – स्वयं–सहायता समूह से जुड़ने के पश्चात महिलाओं में स्वयं निर्णय लेने की शक्ति का विकास होता है, सहकारी संस्था एवं बैंको के साथ सम्पर्क बनाने में, गतिविधियों में भाग लेने, बैठक में शामिल होने वार्तालाप करने आदि क्षमता का विकास हुआ है। महिला स्वयं–सहायता समूहों ने अपनी सूझ–बूझ व एकता से कर दिखाया कि संगठन में शक्ति निहित होती हैं, संगठन में शक्ति की विचारधारा को अपनाते हुए महिलाओं ने समूह बनाकर छोटे–छोटे कार्य प्रारंभ किया, उन्होंने संगठन की शक्ति एवं सफलता को वास्तव में पहचान कर अपने (समूह) तथा परिवार के विकास हेतु संगठनात्मक कार्य प्रारंभ किए। सामूहिक रूप से कार्य प्रारंभ करने से सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक स्थिति मे बदलाव हुआ।

आर्थिक आत्म निर्भरता– आर्थिक आत्मनिर्भरता स्वयं–सहायता समूह से जुड़ने के पश्चात् महिलाओं की आर्थिक स्थिति और अधिक मजबूत होती है जिससे परिवार की आर्थिक दशा मे बदलाव आया है, समूह से प्राप्त धन का उपयोग वह अपने निजी उपयोग अथवा बच्चों के शिक्षा के लिए उपयोग करती है। महिलाओं ने समूह बनाकर एंसे कई जनहित के कार्य भी किए है, जो सराहनीय है। अनेक महिला स्वयं–सहायता समूहों के द्वारा अपने श्रमदान से विद्यालय निर्माण किया गया है एवं गरीब परिवार से जुड़ी महिला को सबल बनाने में भी सहयोग किया है। महिला स्वयं–सहायता समूह अपने समूह के शिक्षित महिलाओं की सहायता से गावं/शहर में शिक्षा की ज्योति जलाई है।

महिलाओं में स्वावलम्बन– ग्रामीण महिलाओं को स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाने में स्वयं–सहायता समूह अहम भूमिका निभा रहे हैं। ग्रामीण महिलाएं इन समूहों से जुड़कर न केवल आर्थिक रुप से सशक्त हो रही हैं, बल्कि इससे उनमें स्वावलम्बन की प्रवृत्ति भी बढ़ी है। स्वयं–सहायता समूह कार्यक्रम ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बनकर ग्रामीण महिलाओं के लिये वरदान साबित हो रहा है। इस कार्यक्रमकी वजह से महिलाओं की स्थिति एवं दशा में सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक दृष्टिकोण से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये हैं। स्वयं–सहायता समूह के जरिऐ लघु वित्त प्राप्त करके महिलाऐं गरीबी, बेरोजगारी एवं निरक्षरता के चक्रव्यूह से निकलकर सशक्तिकरण की दिशा में कदम बढ़ा रही है।

महिलाओं का समूह से जुड़ना – जब महिलाएं अपने या किसी अन्य समूह के सम्पर्क में आती है तो इससे अन्ततः उन्हें विविध दृष्टिकोणों और मनोवृत्तियों का पता चलता है। इस सन्दर्भ में सम्प्रेषण विधियों और जन संचार माध्यमों का इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण प्रभाव है और अन्य समूहो की कार्य प्रणाली से भी अवगत हो सकता है। इससे सदस्यों में जागरुकता सृजित की जा सकती है और इस प्रकार उन्हें विविध दृष्टिकोणों और विविध नजरियों से जीवन पर नजर डालने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। सीखने का अभ्यास एक सतत् प्रक्रिया है। स्वयं–सहायता समूह का अपने सदस्यों की वित्तीय और सामाजिक स्थिति पर गहरा प्रभाव होता है। समूह की अधिकांश गतिविधियाँ आमतौर पर प्रत्यक्ष रुप से समूह सदस्यों की वित्तीय स्थिति को बेहतर बनाने से जुड़ी हैं।गतिविधियों से समूह के सदस्यों की आय में बढ़ोत्तरी होगी और इस आय मे सदस्यों का जीवन स्तर पूर्व से बेहतर बनेगा। वर्तमान समय में महिलाओं को पुरुष के समान माना जा रहा है। जिससे वह समाज में अपनी भागीदारी को अहम बना सकें और अशिक्षित महिलाओं को भी सरकार द्वारा

प्रशिक्षण दिया जा रहा है। जिससे वे प्रशिक्षण प्राप्त कर अपना रोजगार स्थापित कर सकें। स्वयं–सहायता समूह उसी दिशा में सरकार का एक सार्थक प्रयास है।

कार्यरत महिलाओं की **दोहरी भूमिका** –स्वयं सहायता समूह में कार्यरत महिलाओं की दोहरी भूमिका सदैव से ही उनके सामाजिक, आर्थिक एवं वैयक्तिक जीवन को जटिल स्वरूप प्रदान करने में सहायक सिद्ध होती आयी है। इसलिए स्वयं सहायता समूह में कार्यरत महिलाओं की दोहरी भूमिका से सम्बन्धित विविध पक्षों के संदर्भ में उनके वैयक्तिक अनुभव का विश्लेषण आवश्यक है। आर्थिक गतिविधियों कार्योजन में संलग्न महिलाओं को जहाँ अपनी समस्त पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन से सम्बन्धित भूमिका करनी होती है वहीं उन्हें घर से बाहर रहकर कार्य करने के माध्यम से प्रदत्त भूमिका भी करनी पड़ती है, इसलिए उन्हें सदैव अधिक क्रियाशील रहते हुए प्रदत्त दोहरी भूमिकाओं के साथ न्याय करने की एक कठिन चुनौती का सामना करना होता है। दोहरी भूमिका के निर्वहन करने में वे महिलाएँ ज्यादा सफल रहती है जो शैक्षिक रूप से योग्य होने के साथ सामाजिक जीवन के अनुभव के आधार पर अपने मनोवृत्तियों एवं कार्य कुशलता को भी विकसित कर लेने में सक्षम होती है।

दोहरी भूमिका का दबाव महिलाओं को अन्य महिलाओं की तुलना में सशक्त तो बनाता है किन्तु वैयक्तिक आकांक्षाओं एवं अभिरूचियों का ऐसी महिलाओं के जीवन में कोई महत्व नहीं रह जाता है। कार्यरत महिलाएँ दोहरी भूमिका के निर्वहन के लिए विविध प्रकार के अत्याचारों, शोषणों एवं उत्पीड़नों से समझौता करने को विवश होती है। अपने मान–सम्मान एवं प्रतिष्ठा की चिन्ता किये बगैर कार्य करने मे महिलाओं को दिन–रात निरन्तर कठिन श्रम की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। ऐसी स्थिति में वे अपनों के प्यार, सहानुभूति एवं सहयोग पर निर्भर रहती है किन्तु अपनों से जब उन्हें उचित मान सम्मान, प्रतिष्ठा, प्यार, सहानुभूति एवं सहयोग नहीं प्राप्त होता तो वे अन्दर से टूट जाती है और निराशावाद की शिकार बनकर अपने सम्पूर्ण जीवन से कुंठित एवं विचलित हो जाती है। इसलिए कार्यरत महिलाओं में दोहरी भूमिका से सम्बन्धित उनके अनुभव को विश्लेषित किया जाना महत्वपूर्ण है। कार्यरत महिलाओं की दोहरी भूमिका से सम्बन्धित विविध पक्षों पर उनके वैयक्तिक अनुभव के विवेचन से कार्य स्थल क्षेत्र में प्रवेश करने वाली महिलाएं इन अनुभवों का लाभ उठाकर अपने भावी जीवन की योजना एवं रणनीति को रचनात्मक स्वरूप प्रदान कर अपने सम्पूर्ण जीवन को सफल बना सकती है।

निष्कर्ष– उक्त विश्लेषणों से यह दृष्टिगत होता है कि आज पुरूष प्रधान देश में महिलाओं को अपनी अलग पहचान बनाना एक बहुत बड़ी चुनौती है यद्यपि महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए सरकार द्वारा अथक प्रयास किये गये है। वर्तमान समय में स्त्रियों की स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ है। महिलायें अपनी स्थिति व अपने अधिकारों के विषय में सचेत होने लगी है। इसी चेतना ने उन्हें आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक न्याय तथा पुरूषों के साथ सामानता के अधिकारों की मांग करने को प्रेरित किया है। **आर0 ए0 देसाई** के अनुसार, भारतीय समाज में महिलाओं में नई संवेदना व चेतना का विकास हो रहा है। अब उन्हे अधिक समय तक पारिवारिक संस्थागत, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक मानदण्डों की घुटन में नही रहना पड़ेगा जिनके कारण उनकी स्थिति सदैव अपमान जनक रही है। इस संदर्भ में भारतीय संविधान में महिलाओं को प्रदत्त संवैधानिक अधिकारों और इन अधिकारों को संरक्षित करने में सरकार की नीतियों एवं प्रयासों की निरन्तरता भारतीय समाज के लिए आज भी आवश्यक है।

सन्दर्भ –

- Khatri, B.S.; (1994) Panchayat Raj in India Rural Local Self Government, Deep and Deep Publications, New Delhi,
- Bhatt, G.D.; (1994) Emerging Leadership Patterns in Rural India, M.D. Publications, New Delhi,
- Devasiya-(2011). Empowering women for Sustainable Development C.A. Shish Publishing House (Panjabi Bagh) New Delhi.
- Jain Sudhir K. (2010) Biotechnological advancement is isolation of anti neoplastic Compounds from natural origin a horal Source of Las Paraginase Acta Bimed.
- Ramdutt Tripathi .at.l′′¹ (2012). POK NGOs combination art and Education to raise Literacy.the tribune, Chandigarh, April 15.
- Goode, William J. and Paul K. Hatt (1952). Methods in Social Research. McGraw-Hill, New York.
- Ghosh, B.N. (1982). Scientific Methods and Social Research. Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi.
- Wilkinson, T.S. and Bhandarkar, P.L. (1987**).** Methodology and Techniques of Social Research. Himalaya Publishing House, Bombay.
- Joshi, N.C. (1998). Restructuring Credit System for Rural Development. Kurukshetra**,** 46 (12), September

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

भारत में नारी शिक्षा की स्थिति

डॉ. धर्मेन्द्र कुमार बघेल
मॉ भारती महाविद्यालय कुशलगढ, राजस्थान

प्राचीनकाल से आज तक विश्व के सभी विचारकों, दार्शनिकों तथा शिक्षाविदों ने नारी शिक्षा के महत्व को सदैव अनुभव किया है। भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा परंपरा में नारियों को सदैव ही सम्मानजनक स्थान दिया जाता था। उन्हें देवी मॉ या सहचरी कहकर पुकारा जाता था। यह भी कहा गया है ''यत्र नारिस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता''। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में भी वर्गभेद और लिंग भेद को समाप्त कर सभी को समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है परंतु इसके बावजूद भी कतिपय रूदिवादी कारणों से एक लंबे समय तक महिलाओं को सदियों तक विद्या की देवी मॉ सरस्वती की आराधना करने से विमुख रखा गया। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में :–''महिलाओं को सदैव असहायता तथा दूसरों पर दासवत निर्भरता का प्रशिक्षण दिया गया''। वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन तथा मध्यकालीन समाज में स्त्रियों को अज्ञानता के आवरण में रखकर पिता, पति या पुत्र के दासत्व को स्वीकार करके ही कार्यक्रम के कर्तव्य का ज्ञान देने मात्र को ही उस समय की स्त्री शिक्षा की इतिश्री समझा जाता था। परंतु आज परिस्थितियॉ बदल गयी है। आज स्त्रियॉ शिक्षा प्राप्त करके समाज के महत्वपूर्ण कार्यो में पुरूषों के साथ योगदान कर रही है। वे आज घर की चहारदिवारी के अंदर घुटकर भाग्य के भरोसे बैठी अनपढ़ कठपुतली मात्र नहीं है वरन वे अज्ञानता के आवरण से बाहर आकर तथा ज्ञान के आलोक में परिपूर्ण होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों से स्पर्धा करने के लिए तत्पर है। वास्तव में वर्तमान समय में स्त्रियों में क्रांतिकारी परिवर्तन तथा महिला सशक्तिकरण का प्रमुख स्त्री शिक्षा के प्रचार प्रसार को है।

प्राचीनकाल में नारी की स्थितिः– भारत में प्राचीन काल से स्त्रियों की शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता था क्योंकि स्त्री जीवन के हर पहलू में पुरूष का साथ देती है । वैदिक साहित्य में गार्गी, मैत्रयी, आत्रेय, शकुन्तला आदि अनेक विदुषी स्त्रियों की चर्चा मिलती है। इस समय नारी शिक्षा अत्यंत सीमित थी तथा केवल समाज के संभ्रात परिवारों की लड़कियॉ ही शिक्षा प्राप्ति के अवसरों का सदुपयोग कर पाती थी। उस समय स्त्रियों के लिए पृथक शिक्षा संस्थाओं की कोई व्यवस्था नहीं थी और न ही उस काल में स्त्रियों की शिक्षा के लिए कोई सुसंगठित व्यवस्था थी। फिर भी प्राचीन काल में मैत्रयी, लोपमुद्रा, अपाला, शैव्या, सीता, उर्मिला, विद्योत्तमा, चुडाला जैसी अनेक नारियों ने अपनी विद्वता, त्याग एवं समर्पण का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। बौद्धकाल में प्रांरभिक वर्षो में स्त्रियों को प्रवेश नहीं दिया जाता था, पंरतु बाद में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ के रूप में प्रवेश करने की अनुमति देकर स्त्री शिक्षा को एक नया आयाम दिया, जिसके कारण स्त्री शिक्षा को एक नया जीवन मिला। उस समय के संघमित्रा जैसी विदुषी नारियों के नाम विशेष उल्लेखनीय है। शिक्षा केवल धनी–मनी व कुलीन घरानों तक ही सीमित थी।

मुस्लिम काल में नारी शिक्षाः– मुस्लिम काल में भी स्त्रियॉ शिक्षा से उपेक्षित ही रहीं। उस काल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा जैसी प्रथा प्रचलित होने के कारण छोटी–छोटी बालिकाओं के अतिरिक्त अन्य स्त्रियॉ शिक्षा से वंचित रह जाती थी। शाही घरानों तथा समाज के धनी वर्गो की बालिकायें अपने घरों से शिक्षा प्राप्त करती थी। मुस्लिम बालिकायें मस्जिद से जुड़े मकतबों में तथा संभ्रात, कुलीन तथा शाही परिवार प्रायः अपना घरों में मौलवी को बुलाकर स्त्रियों की शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। मुस्लिम काल में सामान्य

वर्ग की स्त्रियॉ में रजिया सुल्ताना, चॉद बीबी, नूरजहॉ, गुलबदन बेगम, जेबुनिसा, रानी दुर्गावती, जीजाबाई, अहिल्याबाई के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

ब्रिटिश काल में नारी शिक्षाः– ब्रिटिश काल में कंपनी को भारत में अपना प्रशासन चलाने के लिए स्त्री लिपिकों अथवा प्रशासकों की आवश्यकता नहीं थी। समाज एवं धर्म में अनेक प्रकार के अंधविश्वास प्रचलित होने के कारण कंपनी ने स्त्री शिक्षा में कोई रूचि नहीं ली। फिर भी कंपनी शासन के दौरान स्त्री शिक्षा का प्रसार मिशनरियों तथा अन्य सामाजिक संस्थानों के द्वारा किये गये प्रयासों से प्रारंभ हुआ।

सन् 1854 में वुड के आदेश पत्र में अधिकारिक तौर पर सबसे पहले स्त्री शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया तथा स्त्रियों की शिक्षा के प्रसार के सभी संभव प्रयास किये गये। परिणामस्वरूप प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गयी। सन् 1902 ई0 तक स्त्री शिक्षा में एक आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया था। आर्य समाज, ब्रह्म समाज जैसी संस्थाओं ने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया।

भारत में अंग्रेजी शासन के दौरान कस्तूरबा गॉधी, मीरा बहन, भीखा जी कामा जैसी अनेक बिदुषी महिलाएॅ ने अपने देश प्रेम, त्याग व योग्यता से महिलाओं की उन्नति की मार्ग प्रशस्त किया। सन् 1917 से सन् 1947 तक स्त्री शिक्षा का विकास अत्यंत तीव्र गति से हुआ। इस काल में स्त्रियों ने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू कर दिया। इसी समय भारतीय नारी संगठन तथा राष्ट्रीय महिला परिषद् की स्थापना हुई। 1927 में अखिल भारतीय नारी सम्मेलन हुई। शारदा एक्ट के द्वारा बाल विवाह पर प्रतिबंध लगा दी गयी। परिणामस्वरूप नारी शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढ़ी साथ ही बड़ी संख्या में नारियॉ शिक्षा ग्रहण करने लगी।

नारी शिक्षा की वर्तमान स्थितिः– सन् 1947 में स्वाधीनता प्राप्त करने के उपरांत महिलाओं की सामाजिक तथा शैक्षिक स्थिति में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। अज्ञानता, परतंत्रता, रूढिवादिता तथा असहायता के बंधनों से मुक्त होकर भारतीय स्त्रियॉ आज एक सम्मानजनक जीवन जी रही है। स्त्रियों से संबधित सामाजिक मान्यताएं बदल रही है। भारतीय संविधान में पुरूषों तथा स्त्रियों को पूर्ण स्वरूप सम्मान दर्जा देते हुए भी शिक्षा के प्रसार पर बल दिया गया। स्वतंत्रता के उपरांत नारी शिक्षा के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को जानने तथा उसका समाधान प्रस्तुत करने हेतु अनेक समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया।

नारी शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्वः– मानव समाज में नारी शिक्षा का विशिष्ट महत्व है क्योंकि कोई भी काम चाहे सामाजिक हो या आर्थिक या सांस्कृतिक या राजनैतिक हो, बिना स्त्री के पूर्ण नहीं होता। एक अच्छे समाज के निर्माण का आधार भी नारी है। नारी समाज निरंतरता तथा उत्पादकता का भी प्रमुख आधार है। वास्तव में संपूर्ण समाज के निर्माण एवं विकास की संभावनाएॅ नारी पर ही निर्भर है। इसलिए नारी शिक्षा की अवहेलना करना समाज के प्रति अन्याय करना है।

नारी शिक्षा के महत्व के संबंध में कुछ प्रमुख विचारकों, विद्वानों तथा शिक्षाविद्रों ने निम्न प्रकार के विचार व्यक्त किये हैः–

1. नेपोलियन के अनुसार :– ''मुझे सुशिक्षित माताएॅ दो, मैं एक सुशिक्षित राष्ट्र का निर्माण कर दूॅगा''।
2. जगजीवन राम ने एक बार विचार व्यक्त कियाः– ''एक कन्या को पढ़ा देने से आगे आनेवाली पीड़ी सुशिक्षित होगी''।
3. पंडित नेहरू के अनुसार :–'' लड़के की शिक्षा केवल एक व्यक्ति की शिक्षा हे परंतु एक लड़की की शिक्षा संपूर्ण परिवार की शिक्षा है''।
4. राष्ट्रपति लिंकन ने कहा है किः– ''मैं जो कुछ भी हूॅ और जो कुछ होने की आशा करता हूॅ उसके लिए मैं अपनी माता का कृतज्ञ हूॅ''।

5. फोरेबल के अनुसारः– ''माताएँ आदर्श अध्यापिकाएँ है''।

उपरोक्त कथनों से यह स्पष्ट है कि स्त्रियां परिवार का मेरूदंड है। वे अपने परिवार, समाज तथा राष्ट्र के गौरव को उॅचा उठाती है। बच्चे वैसा ही बनते है जैसा मॉ उन्हें बनाती है। बच्चों के विकास में सर्वाधिक योग मॉ का होता है। अतः वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा की आवश्कता और महत्व काफी बढ़ गया है।

स्त्री शिक्षा की आवश्यकता निम्नलिखित दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है :–

1. स्त्री का नारीत्व शिक्षा से निखर जाता है।
2. शिक्षित स्त्री ही गौरवांवित अस्तित्व को समझ सकती है।
3. स्त्री शिक्षा परिवार के लिए विशेष उपयोगी होता है।
4. शिक्षित स्त्री परिवार का उत्थान करने में सफल हो सकती है।
5. अपने संतानों की सुशिक्षा एवं सुसंस्कार शिक्षित स्त्री से ही संभव है।
6. शिक्षित स्त्री अपने तथा आनेवाली पीढ़ी के भविष्य को उज्जवल बनाने में सफल होती है।
7. सहिष्णुता, साहस, निष्ठा, शिष्टाचार, सहनशीलता जैसे गुणों का व्यक्तित्व में शामिल करने हेतु स्त्री शिक्षा की आवश्यकता है।
8. स्त्री शिक्षा नारियों को पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय दायित्वों एवं कर्तव्यों का बोध करती है।
9. स्त्री के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास के लिए।
10. व्यक्तित्व विकास के लिए समुचित अवसरों की प्राप्ति हेतु
11. जगत और जीवन के संबंधों को अवबोधित करने में सहायता प्रदान करने हेतु।

इस प्रकार, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा लोकतंत्र दृष्टि से स्त्री शिक्षा का विशेष महत्व है।

नारी शिक्षा की समस्याएँः– निःसंदेह स्वतंत्र भारत में स्त्रियों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए है । इसके बावजूद भी स्त्री शिक्षा की वर्तमान स्थिति को संतोषप्रद स्वीकार नहीं किया जा सकता है। वर्तमान में नारी शिक्षा के मार्ग में निम्नलिखित समस्याएँ है।

1.शैक्षिक अवसरों की समानता की समस्याः– लडकियों की शिक्षा के मार्ग उनकी सबसे बडी बाधा लड़कियों को लड़कों के समान शिक्षा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध नहीं हो पाता है। हमारे यहॉ शिक्षा के सभी स्तरों और लगभग सभी पक्षों और लडके तथा लड़कियों की शिक्षा में असमानताएँ पायी जाती है। लड़कियों की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर लड़कों के अपेक्षा कम मिल पाते हैं।

2. कन्याओं के शिक्षा के प्रति उचित दृष्टिकोण :– आज के विज्ञान और प्राद्योगिकी के इस युग में यधपि रूढिवादी विचारों, अंधविश्वासों तथा दोषपूर्ण रीति रिवाजों की उपयोगिता को नकार दिया गया है। फिर भी अनेक भारतीय अब भी इन रूढिवादियों, अंधविश्वासों तथा परंपराओं का पोषण एव समर्थन करते है। यही कारण है कि हमारे देश की जनसंख्या के एक बड़े वर्ग में लड़कियों की शिक्षा के प्रति अभी भी सीमित, संकुचित एवं रूढिवादी तथा एकांकी विचार पाये जाते है। छुआछुत, बाल–विवाह, पर्दा प्रथा जैसी रूढियों के कारण अनेक बालिकाओं को शिक्षा से वंचित रह जाना पड़ता है। रूढिवादी व्यक्ति के विचार में लड़कियॉ शिक्षा प्राप्त करके समानता व स्वतंत्रता की मांग करती है जो स्त्री चरित्र हीनता का सूचक होती है, ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार की समस्या और भी अधिक उग्र प्रतीत होती है।

3. अपव्यय तथा अवरोधन की समस्या :–अपव्यय तथा अवरोधन स्त्री शिक्षा की एक गंभीर समस्या है। अन्य राष्ट्रों की तुलना में स्त्री शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन अधिक पाया जाता है। प्रायः देखा गया है कि कक्षा एक में प्रवेश लेनेवाली प्रत्येक 100 लड़कियों में से केवल 35 लड़कियॉ ही कक्षा पॉच में पहुंच पाती है तथा लगभग 20 ही कक्षा आठ में पहुंच पाती है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में व शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा

ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या अधिक पायी जाती है। निर्धनता, अशिक्षित माता, पिता रूढिवादिता,लड़कियों के प्रति संकुचित एवं नकारात्मक दृष्टिकोण, नीरस पाठयक्रम, अनाकर्षक विद्यालयी वातावरण, परामर्श व निर्देशन का अभाव, दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली, अध्यापिकाओं का अभाव यदि लड़कियों में अपव्यय एवं अवरोधन के लिए मुख्य रूप से उतरादायी है।

4. दोषपूर्ण पाठयक्रम :– स्त्री शिक्षा की एक बड़ी समस्या उचित पाठयक्रम का अभाव है। हमारे यहॉ लड़के तथा लड़कियों का एक समान पाठयक्रम है। प्रचलित पाठयक्रम नीरसता तथा अरूचिकर है। ज्ञान प्रधान, पुस्तक प्रधान तथा अव्यवहारिक होने के कारण वर्तमान पाठयक्रम परिस्थितियों को अपनी बदलती परिस्थितियों से समायोजन करने के लिए तैयार करने में असफल रहता है।

5. दोषपूर्ण प्रशासन :– स्त्री शिक्षा का समुचित विकास न होने का एक प्रमुख कारण दोषपूर्ण प्रशासन है। स्त्रियों की शिक्षा के विकास में अनेक प्रशासनिक कठिनाईयों तथा बाधायें अनुभव की जाती है। लगभग सभी राज्यों में स्त्री शिक्षा का प्रशासनिक भारत पुरूष अधिकारियों पर है। पुरूष होने के कारण संभवतः वे न तो स्त्रियों को विशिष्ट आवश्यकताओं को समझ पाते है और न ही स्त्री शिक्षा में विशेष रूचि लेते हैं। स्त्री शिक्षा के प्रशासन व पर्यवेक्षण का उतरदायित्व स्त्रियों को सौंपा जाना चाहिए।

6. अध्यापिकाओं का अभाव :–

स्त्री शिक्षा के प्रसार में एक बहुत बड़ी बाधा अध्यापिकाओं की कमी भी है। न केवल उच्चस्तर पर वरन् प्राथमिक स्तर पर भी प्रशिक्षित अध्यापिकाओं की कमी है। जिसके कारण अनेक माता–पिता अपने लड़कियों को विद्यालय नहीं भेजना चाहते हैं। महिला शिक्षा की कमी, शिक्षित महिलाओं को पारिवारिक कारणों से नौकरी न करना, सुरक्षा, आवास आदि वजह से अन्य शहरों या गॉवों में नौकरी न करना पाना आदि कुछ ऐसे कारण है जिसकी वजह से अध्यापिकाओं का अभाव रहता है।

7. आर्थिक समस्या :–

स्त्री शिक्षा के विकास का एक कारण समुचित धन का अभाव है। वर्तमान समय में शिक्षा एक निवेश हे जिसके लिए समुचित मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। सरकार की जितनी रूचि लड़कों की शिक्षा में है उतनी रूचि लड़कियों की शिक्षा में नहीं है। स्त्री शिक्षा के लिए अलग से धनराशि निर्धारित करनी होगी जिसे केवल लड़कियों की शिक्षा पर ही व्यय किया जाय।

8. व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की कमी :–

स्त्रियों के लिए व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की कमी एक गंभीर समस्या है । स्त्रियों के उत्थान के लिए विकास करने का भार अपने उपर लेना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए विशेष प्रयास किये जाने चाहिए। स्त्री शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए राष्ट्रीय महिल शिक्षा परिषद् नामक पृथक इकाई का गठन करना चाहिए जबकि स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतु राज्यों में लड़कियों की शिक्षा की राज्य परिषदें् गठित करनी चाहिए। यह आवश्यक है कि उन्हें विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा उपलब्ध करायी जाय। लड़कियों के लिए उनकी रूचि के अनुरूप विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक तथा तकनीकी पाठयक्रम चलाये जाने चाहिए।

स्त्री शिक्षा की समस्याओं के समाधान तथा स्त्री शिक्षा के प्रचार प्रसार हेतु विभिन्न आयोगों एवं समितियों के सुझावः–

स्वतंत्रता के उपरांत स्त्री शिक्षा के मार्ग मे ंआनेवाली बाधाओं को जानने तथा उसका समाधान प्रस्तुत करने हेतु अनेक समितियों तथा आयोगों का गठन किया गया। इनमें कुछ प्रमुख आयोगों तथा समितियों के सुझाव निम्नलिखित हैः–

1. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोगः–

इस आयोग ने स्त्री शिक्षा को बल देते हुए लिखा है कि शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित स्त्री नहीं हो सकती। स्त्रियों की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे वे सुमाता एवं गृहिणी बन सके। शिक्षा प्राप्त करने में स्त्रियॉ दूसरों का अनुकरण न करें अपितू स्त्रियोचित शिक्षा प्राप्त करें। शिक्षा संस्थानों का पाठयक्रम ऐसा होना चाहिए जिसे स्त्रियॉ सामान्य समाज में अपना सम्मानजनक स्थान ग्रहण कर सके।

2. माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952):–

इस आयोग ने बालक–बालिकाओं के पाठयक्रम में विभिन्नता लाने पर विशेष जोर नहीं दिया किंतु बालिकाओं को गृह विज्ञान के अध्ययन की सुविधा प्रदान करने का विशेष बल दिया। अध्यापिकाओं को सेवा सुविधा देने का भी सुझाव दिया।

3. दुर्गाबाई देशमुख समिति (1958):–

स्त्री शिक्षा की समस्या तथा समाधान करने पर विचार करने के लिए सन् 1958 में भारत सरकार ने दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में राष्ट्रीय महिला शिक्षित समिति का गठन किया जिसे समिति का अध्ययन के नाम पर इसे दुर्गाबाई देशमुख समिति कहकर भी पुकारा जाता है। इस समिति का प्रमुख कार्य स्त्री से संबंधित विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करके उनके समाधान हेतु सुझाव देना है।

इस समिति ने यह सुझाव दिया कि भारत सरकार को एक निश्चित अवधि के अंतर्गत निश्चित योजना के अनुरूप स्त्री शिक्षा का विकास करने का भार अपने उपर लेना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में इसके लिए शिक्षा के प्रसार के लिए विशेष प्रयास किये जाने चाहिए। स्त्री शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के लिए राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद् नामक पृथक इकाई का गठन करना चाहिए, जबकि स्त्री शिक्षा के प्रसार हेतु राज्यों में लड़कियों की शिक्षा की राज्य परिषदें गठित करनी चाहिए।

4. हंसा मेहता समिति :–

सन् 1962 में राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद् ने विद्यलय स्तर पर बालक तथा बालिकाओं के पाठयक्रम में अंतर होने अथवा नहीं होने की महत्वपूर्ण समस्या पर विचार करने हेतु श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया जिसे अध्यक्षा के नाम पर हंसा मेहता समिति कहा जाता है। इस समिति ने सुझाव दिया है कि विद्यालय स्तर पर बालक तथा बालिकाओं के पाठयक्रम में अंतर नहीं होना चाहिए। शिक्षा का संबंध व्यक्तिगत क्षमताओं तथा रूचियों से होना चाहिए न कि यौन भेद से। अतः यौन के आधार पर पाठयक्रम में अंतर करने की आवश्यकता नहीं है।

5. भक्त वत्सलम् कमेटी रिपोर्ट (1963) :–

भक्त वत्सलम् कमेटी ने स्त्री शिक्षा के संदर्भ में कई प्रकार के सुझाव दिये। बालिकाओं के विद्यालयों में यथासंभव अध्यापिकाऍ नियुक्त हो, अध्यापिकाओं की कार्य परिस्थिति आकर्षक बनाई जाए, ग्रामीण क्षेत्रों में अंशकालीन अध्यापिकाओं को लगाया जाए, महिला निरीक्षक का प्रबंध हो तथा एच्छिक विषय की व्यवस्था लड़कियों की रूचि एवं कार्य क्षेत्र के अनुरूप हो।

6. कोठारी कमीशन (1964–66) :–

सन् 1964 में डॉ0 दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग, जिसने अपने प्रतिवेदन सन् 1966 में दिया था, ने भी महिला शिक्षा की समस्या पर विचार किया तथा अपने सुझाव प्रस्तुत किया। कोठारी आयोग ने मानव संसाधनों को विकास परिवारों की उन्नति तथा बालकों की चरित्र निर्माण में पुरूषों की अपेक्षाओं महिलाओं की शिक्षा को अधिक महत्वपूर्ण माना। उच्च प्राथमिक स्तर पर लड़कियों के लिए अलग अलग स्कूल खोलने, निःशुल्क छात्रावास एवं छात्रवृतियों की व्यवस्था करने, लड़कियों के लिए पार्ट टाइम

एजुकेशन, अल्पकालीन शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था करने, लड़कियों के लिए पृथक कॉलेज खोलने, नारी शिक्षा अनुसंधान इकाई खोलने तथा केंद्र एवं राज्य स्तर पर स्त्री शिक्षा के संचालन से संबंधित प्रासंगिक तंत्र का गठन जैसे महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986):–

सन् 1986 में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महिलाओं की शिक्षा में व्यापक परिवर्तन लाने की संकल्पना की गयी है। नये राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत कार्यान्वयन कार्यक्रम (POA 1992) में स्त्री शिक्षा से संबंधित निम्नलिखित बातें सम्मिलित की गयी हैः–

(प) विभिन्न पाठयक्रमों के अंग के रूप में स्त्री अध्ययनों को बढ़ावा दिया जायेगा।

(पप) शिक्षा संस्थाओं को स्त्री विकास के कार्यक्रम को संचालित करने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा।

(iii) विभिन्न स्तरों के व्यवसायिक तकनीकी तथा वृतिक शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किया जायेगा।

(पअ) यौन विभेद की नीति को समाप्त किया जायेगा।

(अ) स्त्री शिक्षा के मार्ग के बाधाओं को निराकरण से संबंधित प्रयासों को प्राथमिकता दी जाएगी।

(vi) पाठय पुस्तकों, नीति निर्धारकों, प्रशासकों तथा शिक्षा संस्थाओं की सक्रिय सहभागिता के द्वारा नये मूल्यों को बढ़ावा दिया जायेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के उपरांत भारत में नारी शिक्षा के प्रति कुल प्रचलित संकुचित दृष्टिकोण को समाप्त करने का प्रयास किया गया है। आज भारत में पुरूषों के समान स्त्रियों को शैक्षिक अधिकार प्राप्त है। आज महिलाएं, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में पुरूष के समान सक्रिय रूप से भाग ले रही है। केंद्र व राज्य सरकार के द्वारा बालिकाओं के शिक्षा के संदर्भ में अनेक प्रकार की योजनाओं को लागू किया गया है जिससे बालिकाओं की सुव्यवस्थित शिक्षा की राह में आ रही कठिनाईयों का निवारण हो।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. रावत, प्यारे लाल (1975)–प्राचीन और भारतीय शिक्षा का इतिहास, आगराः भारत पब्लिकेशन्स।
2. गुप्ता, एस0पी0 तथा अल्का गुप्ता, (2008)– भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायेंः इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
3. अग्निहोत्री , रविन्द्र (2006)– आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याऍ और समाधान, जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
4. प्रोग्राम ऑफ एक्शन : नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986
5. योजना, जनवरी 2016 अंक, लोधी रोड, नई दिल्ली।
6. Jain,S. (2003) -Gender equality in education, Community based initiatives in India.
7- http:/hi.m.wikipedia.org

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

उक्ति वैचित्रय और अप्रस्तुत योजना

डॉ0 चेतना सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी
फेंकू सिंह पी0जी0 कालेज,
चेवार, आजमगढ़

सारांश–

उक्ति की वक्ता रस की प्रतीति कराने का साधन है। इसलिए उक्ति–वैचित्रय अथवा वकोक्ति का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया गया है। एक अत्यन्त व्यापक अर्थ जिसमें वकोक्ति सम्पूर्ण कवि कौशल का पर्याय माना गया और जिसके प्रवर्तक आचार्य कुन्तक है, दूसरा भोजराज और मम्मट आदि का अति सीमित अर्थ जिसमें वकोक्ति एक शब्दालंकार मात्र ही है। कवि ने कथन को सीधे ढंग को छोड़कर वकता का सहारा लिया है सूर के उक्ति वैचित्रय का अधिकांश चमत्कार सूर सागर के बिखरे हुए संवादों में वचन चातुरी के रूप में देखने को मिलता है। सूर अपने प्रभु के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से अपनी वाक्पटुता प्रदर्शित करते है। वे अपने पाप कर्मो के कारण प्रभु के समक्ष जाते हुए घबराते नहीं, बल्कि उन्हीं का सहारा लेते है।

गज गनिका अरू विप्र अजामिल, अगनित अधम उखारे
यहै जानि अपराध कर मैं, किनहुं सौ अति मारे।

इस प्रकार सूर को पाप करने की प्रेरणा मानो भगवान ने ही दी जिसमें सूर बड़ी चतुराई से आत्मनिवेदन प्रस्तुत करते है।

मुख्य शब्द– उक्ति, वैचित्रय,अलंकारो, काव्यात्मक

अनुभूति की रमणीयता को स्थूल रूप देने के लिए कवि जिस प्रसाधनों का उपयोग करता है। उनमें सबसे सरल साधन अप्रस्तुत योजना है। वह प्रस्तुत की श्री वृद्धि के लिए अप्रस्तुत का उपयोग करता है। उक्ति को काव्य–शिल्प का सौन्दर्य प्रसाधन मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। इससे भाषा एक विशेष प्रकार का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है और आकर्षण बढ़ जाता है। अनेक अलंकारों के मूल में उक्ति वैचित्रय मूलक ही रहता है।

विरोधाभास, विभावना, असंगति, विशेषोक्ति तथा वैचित्रय मूलक अलंकार, पर्यायोक्ति, काव्यलिंग, कारणमाला, एकावली, परिसंरण्या आदि उक्ति में वैचित्रय ही उपस्थित करते है। उक्ति के बांकपन से ध्वनि में चमत्कार उत्पन्न होता है, और कविता की रमणीयता बढ़ जाती है। स्वभावोक्ति में चतपतावन नहीं होता है विषय का महत्व बढ़ जाता है। इसलिए काव्य में उक्ति वैचित्रय को शिल्प का महत्वपूर्ण प्रसाधन माना जाता चाहिए। कवि अपनी रचना से अपने काव्य तत्व की सिद्धि करता है। अलंकारों से काव्य की शोभा बढ़ती है। उक्तियों में रूचितता आती है। सहज सुन्दर मनोवृत्तियां उदेूलित होकर भाव को प्रकट करती है। जैसे सहज सुन्दर युवती अलंकृत होकर अधिक आकर्षक बन जाती है। उसी प्रकार से कविता में भी स्वाभाविक शब्दों को अलंकृत कर देने से आकर्षकता आती है। जिस सौन्दर्य की परिकल्पना वाक् के अन्तस्तल में अभिव्यक्ति करके प्रदान किया जाता है। परन्तु उसके साथ ही सौन्दर्य वर्धनकारी अलंकारों की योजना हो जाती है तो उसमें रमणीयता और अधिक आ जाती है। आचार्य कुन्तक उक्ति वैचित्रय को काव्य

में प्रमुख स्थान देते है, जबकि मम्मट ने अलंकृत कवित्व की कविता मान लिया है और जयदेव अलंकारों विहीन कविता को भी कविता कहने से अति संकोच करते है।

डॉ0 मुंशीराम शर्मा के अनुसार–

''साहित्यशास्त्र में हमने अलंकारों को काव्यात्मक शैली के अन्दर स्थान दिया और लिखा है कि शैली की एक विधा कलात्मक शैली के अन्दर स्थान दिया और लिखा है कि शैली की एक विधा कलात्मक भी हो सकती है, जिसमें एकाध अलंकार भाव के प्रवाह में अपने आप तो आ जाते है, पर कवि को उन्हें लाने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता।''

अलंकार शब्द एवं अर्थ दोनों में ही होते है, जो कवि जन्मजात होते है उनकी कविता में अलंकारों का नियोजन स्वतः हो जाता है। जब कवि काव्यगत विषय को प्रौढ़ता देना चाहता है तो वह शास्त्रीयविहित अलंकारों का विधान करता है। उसको रचना कला कौशल से और अधिक कमनीयता को प्राप्त हो जाती है। सूर चूंकि उच्चकोटि के कवि है अतः उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोजन उत्कर्षता को प्राप्त है।

भक्ति भावना है तो कविता कला है। साहित्यशास्त्र में जिस अलंकार सम्प्रदाय की मान्यता है, वह रस, ध्वनि, गुण आदि को अपने में ही सम्मिलित करता है शब्द सौन्दर्य एवं अर्थ सौन्दर्य एवं भाव प्रकाशन की साधना में ही होती है।

सूरदास जी ने शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों के प्रयोग में अधिक सफलता प्राप्त की है केवल चमत्कार विधायक शब्दालंकारों के प्रति उन्होंने अधिक मोह नहीं दिखाया है। सूरदास मुख्यतया भाव जगत के कवि है। उनका काव्य वास्तव में रस का सागर है। उनका प्रत्येक पद रस के ओत–प्रोत है। उन्होंने रस का ही कविता में सर्वोपरि स्थान दिया है और अलंकारों को निष्पत्ति के लिए साधन रूप में अपनाया है। अलंकार योजना में उन्होंने केशव की तरह पाण्डित्य प्रदर्शन की चेष्टा नहीं की।

सूरदास का अलंकार योजना के सम्बन्ध में डॉ0 हरवंशलाल शर्मा ने ठीक ही कहा है–

''वास्तव में सूर का वाग्वैदग्ध्य सहृदयता से समन्वित है यही कारण है कि उनके काव्य में अलंकारों के घटारोप के दर्शन नहीं होते और वे अपने रूप–चित्रण में सर्वत्र संवदेनशील दीख पड़ते है। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग विशेषकर सौन्दर्य बोध के लिए ही किया है। किसी वस्तु के साक्षात्कार से जब कवि की सौन्दर्यानुभूति सजग हो उठती है, हृदय तल्लीन हो जाता है तो उसकी कल्पना उस वस्तु के सौन्दर्य को अधिक हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अप्रस्तुत व्यवहार योजना का सन्निवेश करने लगती है, उस समय कवि की रचना में अलंकारों का समावेश स्वतः हो जाता है।

भारतीय साहित्य शास्त्र में अलंकार अपना विशिष्ट स्थान और महत्व रखते है। साहित्य का सुसज्जित करने वाले आदान के रूप में अलंकारों का व्यावहारिक विवेचन वैदिककाल से ही होता आया है। इसका निरूपण भरत के नाट्यशास्त्र से मिलता है। अलंकार किसी भी विषय को उक्ति वैचित्रय रूप में कहने का एक साधन है। अलंकारों का प्रयोग उक्ति को रोचक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए होता है, ऐसा करने के लिए हम सदृश लोक प्रसिद्ध वस्तुओं से तुलना के द्वारा अपने कथन को स्पष्ट बनाकर उसे श्रोता के मन में अच्छी तरह बैठाते है बात को बढ़ा–चढ़ाकर उसके मन का विस्तार करते है। वाह्य वैषम्य आदि का नियोजन करके उसमें आश्चर्य की उद्भावना करते है।

सूर की अप्रस्तुत योजना और उक्ति वैचित्रय के परिशीलन के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि सूरदास जी को काव्य परम्परा का पूर्ण परिज्ञान का और उन्होंने यथासम्भव काव्य परम्परा के निर्वाह में योग भी दिया किन्तु परम्परा की परिधि से घिरा रहना उनकी प्रकृति और परिस्थिति के विपरीत था। इसलिए उन्होंने परम्परा से मुक्ति लेकर नवीन काव्य शैली का मार्ग प्रशस्त किया उनकी काव्य शैली का

मुख्य प्रयोजन रस का उत्कर्ष करना था। ऐसे स्थल बहुत ही कम है, जहां उनकी अप्रस्तुत योजना तथा उक्ति वैचित्रय रसोत्कर्ष में बाधक सिद्ध हुआ हो।

सादृश्यमूलक अप्रस्तुत योजना में सूर ने प्रायः परम्परा का अनुसरण करने का प्रयत्न किया है। सूरदास जी ने अपने काव्य में प्रचुर मात्रा में सांगरूपक प्रस्तुत है। रूढ़ रूपकों में कवि का उद्देश्य भिन्न–भिन्न अंगों के लिए उपमानों की गणना करनी होती है। उसकी दृष्टि इस तथ्य की ओर नहीं होती कि उपमेय और उपमान में किसी प्रकार का सादृश्य है या नहीं। इन रूपकों में अप्रस्तुत योजना परम्परा के क्रम है, किन्तु इनका उपयोग सूर ने अपने ढंग से किया है। प्रत्येक पद के अन्त में वे रूपक को इस प्रकार डालते है कि उसकी सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

सादृश्यमूलक अलंकारों ने सबसे अधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा का मिलता है। इसलिए कि इसमें कल्पना की उड़ान और वैचित्रय विक्षेप का अवसर अधिक है। उपमा, प्रतीप, व्यतिरेक, रूपक आदि में उत्प्रेक्षा सहायक रूप में मिलती है। सूर की नवीन कल्पनाएं अधिकतर उत्प्रेक्षाओं में ही है। अलंकार काव्य सौन्दर्य में वृद्धि करते है, परन्तु यदि अलंकार का आधिक्य हो जाता है तो कविता–कामिनी की सुन्दरता समाप्त हो जाती है। अलंकारों का प्रयोग किसी भाव, गुण, विचार या क्रिया को उत्कर्षता प्रदान करने के लिए ही किया जाता है जहां पर सौन्दर्य में इससे बांधा हो, वहां अलंकारों को त्याज्य कर देना चाहिए।

सूरदास ने शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों के प्रयोग में अधिक सफलता प्राप्त की है केवल चमत्कार विधायक शब्दालंकारों के प्रति उन्होंने अधिक मोह नहीं दिखाया है। उनके काव्य में अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों के प्रति उन्होंने अधिक मोह नहीं दिखाया है।

सूरसागर में आये हुए अलंकारों की सुन्दरता का अवलोकन करेंगे। शब्दालंकारों द्वारा रचना में शब्द की सुन्दरता दृष्टिगोचर होती है। इसके द्वारा कवि अपने भावों को प्रकट करने के लिए अक्षरों को तोड़–मरोड़ कर शब्द की सुन्दरता के यत्र–तत्र विन्यास करता हैं कवि का शब्द चातुर्य यहां देखने योग्य होता है। शब्दालंकार में सर्वप्रथम हम अनुप्रास अलंकार की ओर ध्यान देते है। इसमें वर्ण की मैत्री पर बल होता है वर्ण मित्रता के साथ ही शब्द की भी मित्रता होती है। कभी–कभी अक्षर ही नहीं, वाक्यों की जब आवृत्ति हो जाती है, तब विशिष्टता दिखायी पड़ती है।

यमक अलंकार में जहां कुछ वर्ण समूह कुछ निरर्थक एवं सार्थक हो वहां यमक मध्यम श्रेणी का होता है।

उक्ति वैचित्रय का अर्थ होता है, बात को कुछ विचित्र या असाधारण रूप से कहना। उक्ति वैचित्रय का यह खेल संकलित दोहों में अनेक स्थानों पर उपस्थित है।

''हरि न बनाओ सुरसरी, कीजौ इन्दव भाल''

इस पंक्ति में कवि ने भगवान शिव में अपनी आस्था सीधे–सीधे व्यक्त नहीं की है, लक्षणा और व्यंजना की सहायता लेने पर ही भाव का आनन्द प्रकट होता है।

अलंकार वो काव्य सौन्दर्य में वृद्धि करते है, परन्तु यदि अलंकार का आधिक्य हो जाता है तो कविता कामिनी की सुन्दरता समाप्त हो जाती है। अलंकारों का प्रयोग किसी भाव, गुण, विचार या क्रिया को उत्कर्षता प्रदान करने के लिए ही किया जाता है जहां पर सौन्दर्य में इससे बांधा हो, वहां अलंकारों को त्याज्य कर देना चाहिए।

डॉ0 गोविन्द राम शर्मा का यह कथन उचित है कि सूरदास ने अलंकारों को साध्य नहीं माना है, वे भावयंजकता एवं रस परिपाक के साधन मात्र है। वे परम्परागत अलंकार विधान से परिचित थे, इसमें कोई संदेह नहीं। फिर भी उनकी प्रकृति शास्त्रीय परम्परा में बंधकर चलने की नहीं थी। परम्परागत अलंकारों का

प्रयोग भी सूर के काव्य में अनेक स्थलों पर मौलिक ढंग से हुआ है। उन्होंने अंलकारों का साहाघ्य वहीं तक किया है, जहां तक कि वे भावोदीप्ति एवं रसोद्रेक में योग दे सकते है।

हम मूरख तुम चतु हौ कु लाज न आवै

इसमें उक्ति को वैचित्रयता ही होती है– वक्रोक्ति के द्वारा इसका अर्थ हुआ इस मूर्खता पर लज्जा नहीं आनी चाहिए। भ्रमरगीत प्रसंग में वक्रोक्ति अलंकार की सबसे अधिकता है।

निष्कर्ष–

सूर की अप्रस्तुत योजना और उक्ति वैचित्रय के परिशीलन के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि सूरदास जी को काव्य परम्परा का पूर्ण परिज्ञान था और उन्होंने यथासम्भव काव्य परम्परा के निर्वाह में योग भी दिया, किन्तु परम्परा की परिधि से घिरा रहना उनकी प्रकृति और परिस्थिति के विपरीत था इसलिए उन्होंने परम्परा से मुक्ति लेकर नवीन काव्य शैली का मार्ग प्रशस्त किया उनकी काव्य शैली का मुख्य प्रयोजन रस का उत्कर्ष करना था। ऐसे स्थल बहुत ही कम है जहां उनकी अप्रस्तुत योजना तथा उक्ति वैचित्रय रसोत्कर्ष में बाधक सिद्ध हुआ हो।

भक्ति भावना है तो कविता कला है। साहित्यशास्त्र में जिस अलंकार सम्प्रदाय की मान्यता है, वह रस, ध्वनि, गुण आदि को अपने में ही सम्मिलित करता है शब्द सौन्दर्य एवं अर्थ सौन्दर्य की साधना में ही काव्य की सुन्दरता होती है। अक्षर की शक्ति सूर की रचना का जब अलंकारिक अध्ययन किया जाता है तो रस पर सर्वप्रथम ध्यान जाता है। सूर की रचनाओं में रसों की आलंकारिकता को कौन अपनी दृष्टि से ओझल कर सकता है।

सूरदास मुख्यता भाव जगत के कवि है। उनका काव्य वास्तव में रस का सागर है। उनका प्रत्येक पद रस से ओत–प्रोत है। उन्होंने रस का ही कविता में सर्वोपरि स्थान दिया है और अलंकारों को निष्पत्ति के लिए साधन रूप में अपनाया है।

सन्दर्भ सूची–

1. काव्यादर्श– आचार्य दण्डी, वी0ओ0आर0 पूना, 1938 ई0
2. काव्यालंकार– आचार्य भामह, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी 1928
3. ध्वन्यालोक– आचार्य आनन्दवर्धन व्याख्याकार, आचार्य विश्वेश्वर, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, 1957 ई0
4. काव्य के रूप– श्री गुलाब राय प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली 1950 ई0
5. काव्य निर्णय– आचार्य भिखारीदास, वेलवेडियर प्रेस प्रयाग, 1926 ई0
6. काव्यालोक– पं0 रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला, कार्यालय बांकीपुर
7. रस मीमांसा– आचार्य शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 2006
8. सूरदास– डॉ0 ब्रजेश्वर शर्मा, हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय, प्रयाग 1950 ई0

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

उत्तर वैदिककाल में सामाजिक स्तरीकरण का प्रारम्भिक विकास

रमेश कुमार
शोधछात्र–प्राचीन इतिहास
डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या
प्रोफेसर उपमा वर्मा
विभागाध्यक्ष : प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या

सारांश

उत्तरवैदिक काल में समाज वर्ण–व्यवस्था पर आधारित था, जिसे प्रारम्भिक विकास की अवस्था माना जाता था। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय सम्पन्न थे, जिसके कारण उन्हें महत्व दिया गया। यह व्यवस्था आगे भी गतिशील रही। इस काल के बाद भी समाज में सम्पन्न व्यक्तियों को महत्व दिया गया। शूद्र की स्थिति काफी कमजोर होने के कारण उन्हें निम्न माना गया, यह सामाजिक स्तरीकरण के बाद के समयों में भी देखा गया। अतः उत्तरवैदिक काल में जिस सामाजिक व्यवस्था का प्रारम्भिक विकास हुआ था, वह कुछ परिवर्तनों के साथ सभी युगों एवं समयों में देखने को मिला है।

मुख्य शब्द– ऋग्वैदिक, उत्तरवैदिक, पुरातात्त्विक, वैदिक संहिता, मृण्पात्र, सामाजिक जीवन, मृद्भाण्ड, कुटुम्ब, राजनीतिक क्रियाविधि, अहिच्छत्र।

ऋग्वेद के बाद का समय उत्तरवैदिक काल माना जाता है। ऋग्वेद के अन्तिम समय से लेकर महात्मा बुद्ध के आविर्भाव तक (1000 ई. पूर्व से 500 ई. पूर्व तक) उत्तरवैदिक समय रहा।[1] इस युग में अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेद तथा सूत्र ग्रन्थों की रचना हुई। ये तीनों वेद एवं ग्रन्थ के समय को अधिकांश विद्वानों ने 1200 ई. पूर्व से लेकर 200 ई. पूर्व माना है। उत्तर वैदिक काल की सभ्यता एवं संस्कृति का काल निर्धारण स्पष्ट रूप से नहीं किया जा सकता है, लेकिन फिर भी आर्यों का विस्तार उत्तरवैदिक काल का समय ही माना जाता है। आर्य अफगानिस्तान से लेकर गंगा नदी घाटी के क्षेत्र तक बस गये थे।[2] कुछ समय पूर्व पुरातत्त्ववेत्ताओं ने हस्तिनापुर नगर का उत्खनन किया है।[3] यहाँ से विशेष प्रकार की मिट्टी के बर्तन, तांबे के उपकरण तथा कच्ची ईंटों के बने मकानों के अवशेष मिले हैं। इस प्रकार की सामग्री पश्चिम में सरस्वती से लेकर पूर्व में अहिच्छत्र तक यत्र–तत्र मिलती है। इस सामग्री का समय भी 1000 ई. पूर्व से 700 ई. पूर्व तक निर्धारित किया गया है।[4]

उत्तर वैदिक काल की जानकारी के कुछ स्रोत रहे हैं। इस में साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक साक्ष्य मुख्य रूप से रहे हैं। ऋग्वेद के प्रथम नौ मण्डलों के बाद दसवें मण्डल की रचना हुई। यह भाषा शैली तथा विषय में अलग है। लगभग इसी समय में ऋग्वेद के मन्त्रों को चुनकर दूसरे वेद का संकलन हुआ, जिसे सामवेद कहा गया। ऋग्वेद के ही कुछ मन्त्रों को चुनकर तीसरे वेद की रचना हुई जो यजुर्वेद कहलाया। यज्ञों के समय इस का पाठ किया जाता था। इसके दो संस्करण हैं– कृष्ण और शुक्ल। कृष्ण की एक पूर्ण और तीन अधूरी संहिता है। तैत्तिरीय, काठक, मैत्रायणी तथा कपिष्ठल संहिता– शुक्ल यजुर्वेद की संहिता है। इसी समय अथर्ववेद की रचना हुई जिसे चौथा वेद माना जाता है। कई विद्वानों का कहना है कि अथर्ववेद में आर्यों पर अनार्य प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।[5]

वैदिक संहिताओं के बाद ब्राह्मणों की रचना हुई। इनमें वैदिक कर्मकाण्ड का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। प्रत्येक ब्राह्मण का सम्बन्ध प्रत्येक वेद से है।[6] इस काल के विशद साहित्य में उपनिषदों को विशेष महत्त्व प्राप्त था। इनमें दर्शन की व्याख्या की गयी है। उत्तरवैदिक काल की जानकारी का एक अन्य स्रोत वेदांग है। ये क्रमानुसार शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष कहलाते हैं। यद्यपि उपरोक्त ग्रन्थों का उद्देश्य इतिहास की उपलब्धि का गुणगान करना नहीं था, यद्यपि उनमें प्रतिपाद्य विषयों से तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति का इतिहास निःसन्देह आलोकित हो उठता है।

ईसवी पूर्व 1000 से 600 के मध्य ऊपरी गंगा घाटी में उपर्युक्त वैदिक ग्रन्थों की रचना की गयी। इसी समय इस क्षेत्र में उत्खनन से लगभग तीन सौ स्थल प्राप्त हुए जहाँ लोग रहते हैं। इसे चित्रित धूसर मृण्पात्र स्थल कहते हैं। ऐसा इसलिए कि इस क्षेत्र के निवासी मिट्टी से निर्मित कटोरे और तश्तरियों का व्यवहार करते थे जो मुख्य रूप से धूसर मिट्टी के बने होते थे। वे लौह हथियारों का भी प्रयोग करते थे। वैज्ञानिक परीक्षण के परिणामों में सांकलिया इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गंगा नदी की घाटी में एक प्राचीन आर्य संस्कृति थी, जिसमें लोग गेरूए रंग के मृद्भाण्डों का प्रयोग करते थे और दूसरी आर्य संस्कृति वह थी जिसमें लोग चित्रित भूरे रंग के मृदभाण्डों का प्रयोग करते थे। ऐसे प्रमाण पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में मिलते हैं। उत्तर वैदिक कालीन आर्य इन्हीं प्रदेशों में रहते थे और उनका समय भी यही था। काली पॉलिश वाले मृद्भाण्ड उत्तर में उदयग्राम तथा तक्षशिला से लेकर दक्षिण में अमरावती तक, पूर्व में बालगढ़ तथा शिशुपालगढ़ से पश्चिम में नासिक तक अनेक स्थानों पर मिले हैं। इसका समय 800 ई. पूर्व से 400 ई. पूर्व के मध्य माना जाता है।[7]

हस्तिनापुर, आलमगीरपुर, अतरंजीखेड़ा, बटेसर आदि स्थानों पर लोहे के युद्ध के अस्त्र–शस्त्र के अवशेष मिले हैं। इस समय लोग शीशे के मनके और चूड़ियां भी बनाते थे। सम्भवतः इस समय लोग चावल और मांस खाते थे तथा कच्चे मकान में रहते थे, जो घास, फूस के बने छप्पर होते थे। इस प्रकार के अवशेषों का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है।[8] इस युग में कृषि का विकास हुआ तथा मुद्रा प्रणाली का प्रचलन हुआ।

उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भ होने तक नगरीय जीवन का विकास नहीं हुआ था, लोग ग्रामीण जीवन व्यतीत कर रहे थे। हस्तिनापुर उत्खनन से पता चलता है कि 900 से 500 ई. पूर्व के मध्य शहरी जीवन का उदय हो चुका था। परन्तु इससे महाभारत में वर्णित हस्तिनापुर के सन्दर्भ में कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। बहुत समय बाद चौथी शताब्दी में महाभारत का अन्तिम संस्करण निकला था। उत्तर वैदिक काल में लोग पक्की ईंट के बारे में नहीं जानते थे। हस्तिनापुर के उत्खनन में मिट्टी के घर मिले हैं। अनुश्रुतियों से पता चलता है कि बाढ़ से हस्तिनापुर नष्ट हो गया था, शेष जो लोग बचे थे वे इलाहाबाद के समीप कौशाम्बी चले आये। वही कुरू राज्य की राजधानी बना। पांचाल राज्य के बरेली, बदायूं और फरीदाबाद क्षेत्र था, जो दार्शनिक राजाओं और ब्राह्मण धर्मशास्त्रियों के लिए प्रसिद्ध था।[9]

उत्तर वैदिक काल के अन्तिम समय में लगभग 600 ई. पूर्व आर्य दोआब से और दूर जाकर बसने लगे। वे उत्तर प्रदेश के कोशल और बिहार के विदेह तक फैल गये। यहाँ आर्यों को स्थानीय लोगों से संघर्ष भी हुआ। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में उन्हें उन लोगों का सामना करना पड़ा जो लाल रंग के बर्तनों और ताम्र औजारों का प्रयोग करते थे। आर्य यहाँ 1500 ई. पूर्व से रहने वाले लोगों को पराजित किये। आर्य इस समय तक यमुना, ऊपरी गंगा, गंडक के मैदानी क्षेत्रों पर कब्जा कर चुके थे। दक्षिण में विदर्भ तक उन का विस्तार हो चुका था।[10] सरस्वती से गंगा यमुना के दोआब तक आर्य संस्कृति का केन्द्र बन चुका था।

किसी भी संस्कृति की गति निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया होती है। पुरानी संस्कृति पूरी तरह समाप्त नहीं होती और नई पूरी तरह से नया नहीं होता है। उनमें एक संक्रमण काल होता है, जिनमें दोनों विचारधाराएँ मिली–जुली होती हैं। ऋग्वेदकालीन संस्कृति के उपरान्त जिस नई भारतीय संस्कृति के विकास का क्रम प्रारम्भ हुआ उसे उत्तरवैदिक काल कहा जाता है। इन दोनों युगों के मध्य कोई निश्चित सीमा रेखा खींचना सम्भव नहीं है, फिर भी इस युग की दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम उत्तरवैदिक युग की संस्कृति अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत तथा समृद्ध थी। दूसरा ऋग्वैदिक संस्कृति की अपेक्षा अब सिद्धान्त और व्यवहार में और अधिक परिपक्वता आ गयी थी।[11]

उत्तर वैदिक युग में आर्य संस्कृति का केन्द्र सप्त सिन्धु के प्रदेश से हटकर कुरूक्षेत्र हो गया। महाभारत युद्ध के बाद कुरू प्रदेश में पहला राजा परीक्षित हुआ। उसके समय में प्रजा पूर्णतया सुखी थी। अथर्ववेद में परीक्षित को सार्वभौम राजा कहा गया है। यह राज्य सरस्वती नदी से गंगा तक फैला हुआ था।[12] इस राज्य की राजधानी मेरठ के निकट हस्तिनापुर थी। परीक्षित के बाद उसका बेटा जनमेजय राजा बना। उत्तर भारत में राजा जनक ने विदेह में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। इसकी राजधानी मिथिला थी। शतपथ ब्राह्मण में जनक को एक सम्राट बतलाया गया है। इन सभी महान राजाओं के सामने चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने का आदर्श था। इस काल में कई राजाओं ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ किया।

उत्तरवैदिक काल में मुख्य रूप से दस राज्यों[13] का उल्लेख मिलता है–

1. गान्धार– यह राज्य पश्चिमी पंजाब रावलपिंडी और पेशावर के मध्य में स्थित था और सिन्धु नदी के दोनों तरफ फैला था। इसके दो प्रसिद्ध नगर तक्षशिला और पुष्कलावती थे।

2. केकय– यह राज्य गांधार राज्य की सीमा से लेकर पंजाब के व्यास नदी तक फैला था। जनक के समय इस राज्य का राजा अश्वपति था। उस समय जनता के बीच और भेदभाव नहीं था, लोग शान्तिप्रिय थे।

3. मद्र– यह राज्य सियालकोट से पंजाब के रावी नदी तक फैला था। कश्मीर, कांगड़ा और अमृतसर क्षेत्र इसी में था।

4. उशीनगर– यह राज्य आधुनिक हरिद्वार के पार्श्ववर्ती प्रदेश में था।

5. मत्स्य– यह एक विशाल राज्य था। इसमें राजस्थान के अलवर, जयपुर और भरतपुर के क्षेत्र शामिल थे। यहाँ का शक्तिशाली राजा विराट था जिसके समय में पाण्डवों ने यहाँ अज्ञातवास का समय व्यतीत किया था।

6. कुरु– यह राज्य कुरूक्षेत्र या आधुनिक दिलली के आस–पास फैला था। परीक्षित और जनमेजय के शासनकाल में कुरू राज्य अपनी चरमोन्नति पर था। कुरुओं की राजधानी आधुनिक हस्तिनापुर थी। राजा निचक्षु के समय राजधानी बाढ़ में बह गयी, जिसके कारण प्रयास से लगभग 60 मील पश्चिम एक नगर कौशाम्बी बसाया गया और उसे कुरु राज्य की राजधानी बनाया गया।

7. पांचाल– यह राज्य उत्तर प्रदेश के रूहेलखण्ड क्षेत्र में था, जिसमें बरेली, बदायूं और फर्रूखाबाद के जिले शामिल थे।

8. काशी– इस राज्य की राजधानी वाराणसी थी। जनक के समय में यहाँ अजातशत्रु नाम का राजा राज्य करता था।

9. कोशल– पांचाल राज्य के पूर्व कोशल राज्य था। ऐसा माना जाता है कि यह राज्य अवध क्षेत्र में था, अयोध्या इस की राजधानी थी।

10. विदेह– यह राज्य आधुनिक उत्तर बिहार के क्षेत्र में था। यहाँ के राजा जनक अपने ज्ञान और दार्शनिक विचारों और विद्वता के लिए काफी प्रसिद्ध थे। कोशल, काशी और विदेह उत्तरवैदिक काल की संस्कृति और सभ्यता के केन्द्र माने जाते थे।

उत्तरवैदिक काल की राजनीतिक परिस्थितियाँ तेजी से एक सुसंगठित साम्राज्य निर्माण की तरफ प्रवृत्त हुई। राजनीतिक संगठनो के आधार पर उत्तर वैदिक काल के सम्पूर्ण साहित्य में हम राजाओं तथा राजतन्त्रात्मक राज्यों का वर्णन पाते हैं। गणराज्यों का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु यह प्रारम्भिक अवस्था थी। एतेरेय ब्राह्मण में राज्य स्वराज्य, महाराज्य, आधिपत्य तथा साम्राज्य शब्द मिलते हैं।[14] सब से अधिक योग्य, सबल और प्रतिष्ठित व्यक्ति को ही राजा पद मिलता था। राज प्रतिष्ठा के पीछे जनमत का भी महत्त्व था।[15] राजा के दैविक उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रचलित था।[16] अथर्ववेद में राजा प्रार्थना करता है कि प्रजापति की पुत्रियाँ सभा और समिति मेरे ऊपर कृपा करें।[17]

उत्तरवैदिक काल में राज्य के विस्तार, व्यवस्था तथा सामाजिक जीवन में उत्तरोत्तर विकास हो चुका था। यह युग सामाजिक जीवन के उत्तरोत्तर विकास का युग था। इस बात के प्रमाण पूरी तरह से उपलब्ध हैं। इसी समय सामाजिक जीवन में स्थिरता आने लगी थी। ऋग्वैदिक काल में आर्य प्रायः ग्रामों में निवास करते थे। उस समय नगर का विकास नहीं हुआ था। आर्यों के बढ़ते हुए विस्तार से जंगलों का विनाश हुआ, जनसंख्या में वृद्धि हुई। जिसके कारण बड़े–बड़े ग्राम नगर में परिवर्तित हो गये। गंगा–यमुना के मैदान में उर्वरा भूमि में आर्यों के अनेक नगर बस गये। ये नगर सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक क्रियाविधियों के केन्द्र बन गये।

उत्तरवैदिक काल में नगरों का विकास हो गया था, लेकिन अधिकांश जनसंख्या गाँवों में ही निवास करती थी। आर्यों का जीवन उस समय भी गाँवों में सुसंगठित था। प्रत्येक गाँव में कई घर होते थे। उनके मकान पक्के एवं कच्चे ईंटों के बने थे, जिसमें लकड़ी, बांस, मिट्टी, घास का सहारा लिया जाता था। घरों में परिवार के सदस्य रहते थे तथा पशुओं के लिए अलग से व्यवस्था की जाती थी।

उत्तर वैदिक काल में कुटुम्ब लगभग ऋग्वेद के समान था। पितृसत्तात्मक परिवार का प्रचलन था। पिता घर का स्वामी होता था, उसकी आज्ञा का पालन परिवार के अन्य सदस्य करते थे। परिवार का प्रधान होने के नाते पिता ग्राम परिषद् या पंचायत में परिवार का प्रतिनिधित्व करता था। माता को भी परिवार में सम्मान की स्थिति प्राप्त थी।[18] उस समय समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा प्रचलित थी। परिवार का वयोवृद्ध व्यक्ति ही मुखिया होता था। उसकी आज्ञा का पालन सभी लोग करते थे। परिवार में एकता एवं सहयोग की भावना दिखलाई देती थी। अपने जीवनकाल में ही पिता अपनी सम्पत्ति को पुत्रों में विभाजित कर देता था। पिता को पुत्रों से विशेष प्रेम था। प्रमाणों से पता चलता है कि पुत्र के चरित्रहीन होने पर उसे पिता द्वारा दण्ड दिया जाता था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार विश्वामित्र ने अपने परिवार के पचास सदस्यों को आज्ञापालन न करने के कारण दण्डकारण्य वन में निस्कासित कर दिया था।

सन्दर्भ सूची–

1. ईश्वरी प्रसाद, शैलेन्द्र शर्मा : प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 80; शतपथ ब्राह्मण, 132,5,42
2. बी.एन. लूनिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 117
3. शतपथ ब्राह्मण, 13, 5, 42
4. ईश्वरी प्रसाद, शैलेन्द्र शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 80–81
5. पूर्वोक्त
6. एतरेय ब्राह्मण का ऋग्वेद से, पंचविंश ब्राह्मण का सामवेद से, गोपथ ब्राह्मण का अथर्ववेद से।

7. डॉ. बेनीप्रसाद : हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ. 11; ईश्वरी प्रसाद, शैलेन्द्र शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 81
8. पूर्वोक्त, पृ. 82
9. पूर्वोक्त, पृ. 82, हस्तिनापुर (आसन्दीवत) कुरू राज्य की राजधानी था, लेकिन अन्तिम शासक निचक्ष के समय बाढ़ से यह नगर नष्ट हो गया। इसके बाद कौशाम्बी यहाँ की राजधानी बनायी गयी।
10. पूर्वोक्त, पृ. 82
11. पूर्वोक्त, पृ. 80; डॉ. राधाकृष्णन : पूर्व और पश्चिम, पृ. 116
12. बी.एन. लूनिया, प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ. 118
13. पूर्वोक्त, पृ. 118–19
14. ऋग्वेद, 10, 28, 9
15. अथर्ववेद, 3, 4, 1–2
16. तै.सं. 1, 8, 16
17. अथर्ववेद, 7, 2, 1
18. ऋग्वेद, 10, 86, 10

The Opinion V.12, N. 23 J-J 2023 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal, Impact Factor 4.875(IIFS)

भारतीय लोकतंत्र में गठबन्धन सरकारें : उद्‌भव और विकास

डॉ0 अर्चना सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0,
गंगापुर, वाराणसी

सारांश–
आज लोकतांत्रिक शासन का ढाँचा उसकी सफलता और अफसलता, राजनीतिक दलों के संगठन, उनकी कार्य–पद्धति और सदस्यों के व्यवहार पर अधिक निर्भर करती है। उल्लेखनीय बात यह है कि भारतीय राज्य शासन की एक बड़ी सफलता यह है कि अपेक्षाकृत थोड़े ही समय में इसने एक स्पष्ट स्वरूप व आकार ग्रहण कर लिया है। जड़ता के अर्थ में नहीं, बल्कि विनियमित गति के अर्थ में स्थायित्व प्राप्त कर लिया है। भारत में आज राजनीति एक ऐसे मोड़ पर आ चुकी है, जिसमें किसी एक दल का प्रभुत्व समाप्त हो चुका है। इन सभी कारणों से जिसमें कि किसी एक दल को पूर्ण बहुमत का न मिल पाना भी एक महत्वपूर्ण कारण है जिसने एक नई प्रवृत्ति को जन्म दिया है, जिसमें विचारधारा गौण हो चुकी है और किसी भी प्रकार से सरकार में बने रहने की प्रवृत्ति ने गठबन्धन को जन्म दिया है। गठबन्धन के सदस्यों के आपसी व्यवहार पर अध्ययन करते हुए राजनीति विज्ञान डी मेस्क्यूटा ने उन कारकों को पहचाना, जो कारण एक जीते हुए दल के प्रभाव को गठबन्धन में बढ़ाते है। इसके लिए उन सांख्यिकी गणनाओं का उपयोग किया गया जो ये दिखाते हैं कि दलों का आकार गठबन्धन के फायदों को लेने में बहुत ही कम रही।

मुख्य शब्द–लोकतान्त्रिक शासन, राजनतिक दल, गठबन्धन,

आधुनिक राजनीतिक प्रणालियों में लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली को सबसे अच्छी शासन प्रणाली के रूप में माना जाता है। लोकतंत्र का दुनिया में कोई एक स्वरूप नहीं है। देश–विदेश की परिस्थिति, वहाँ की सामाजिक संरचना, लोगों का आधार, व्यवहार आदि के द्वारा शासन प्रणाली का ढाँचा कार्य करता है। इसके निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका रही सदस्यों के मांग से सम्बन्धित दबाव और उनकी सहनशक्ति की। बड़े–बड़े दल अपनी पहचान और जनमत खोते जा रहे है जिसे लोकतंत्र के लिए अच्छा संकेत नहीं माना जा सकता है।

भारतीय संसदीय राजनीति की परम्परा में दो या दो से अधिक राजनीतिक दलों की मिली–जुली सरकारों के लिए गठबन्धन, संयुक्त व संविद आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है। सामान्य रूप से इन शब्दों के अर्थ परिस्थिति विशेष में बनी सरकारों के सन्दर्भ में सन्दर्भित भिन्नता प्रकट करते है किन्तु ये सभी राजनतिक शब्दावली के अनुसार ऑग्ल भाषा के एक ही शब्द 'कोएलिशसन' की ओर संकेत करते है।

कोएलिशन शब्द लैटिन के 'कोलेसियों' से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है, एक साथ जाना, एक साथ उगना या मिलना। इंग्लिश शब्दकोष में इसे विभिन्न दलों, व्यक्तियों या राज्यों का स्थायी रूपसे एक में विलीन हुए बिना किसी संयुक्त कार्य के लिए किया गया समझौता बताया गया है। गठबन्धन वस्तुतः संसदीय राजनीति की राजनीतिक प्रक्रिया की उपज है। संसदीय शासन में सरकार के गठन के लिए लोकप्रिय सदन में बहुमत की अपरिहार्यता गठबन्धन की राजनीति को प्रेरित करती है। इसलिए राजनीति की यह प्रक्रिया बहुदलीय–व्यवस्था वाले संसदीय लोकतंत्र में ही प्रायः दृष्टिगोचर होती है।

दूसरी ओर गठबन्धन जिसे अंग्रेजी में Colition कहते है कि उत्पत्ति लैटिन भाषा के Coalition से हुई है जिसका अर्थ है–सम्मिलित होना, साथ एकत्र होना,साथ जाना साथ–साथ विकास करना है।

साधारणतया गठबन्धन का अर्थ एक ऐसे समूह से होता है जो किसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु विशेष रूप से अस्थायी तौर पर संयुक्त होते है। राजनीति विज्ञान में इस शब्द का प्रयोग उस अर्थ में होता है जबकि विभिन्न राजनीतक दल, निहित स्वार्थ समूह अथवा गुट नीति–निर्णयों को निश्चित करने अथवा सत्त प्राप्ति के लिए राजनीतिक समूह बनाते है। राजनीतिक अर्थ में गठबन्धन का अर्थ सामान्य रूप से एक सामूहिक व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत राजनीतिक दलों अथवाँ उसके सदस्य अथवा मंत्रिपरिषद गठित करने के लिए साथ होते है।

विलियम एच0 रिकर ने ईस्टन को उद्धत करते हुए स्पष्ट किया है कि गठबन्धन सामान्यतया राजनीतिक निर्णय–निर्माण के लिए एक विशेष प्रकार का सामाजिक संगठन है। राजनीति को मूल्य के अधिकारिक बंटवारे के रूप में परिभाषित किया जाता रहा हैं–बंटवारा गठबन्धन निर्माण की प्रक्रिया है, यह स्पष्ट है कि गठबन्धन का सिद्धान्त राजनीति के सिद्धांत का केन्द्रीय भाग है।

रोजन स्क्रटन में ''गठबन्धन'' शब्द को परिभाषित करते हुए ''ए डिक्शनरी ऑफ पॉलिटिकल थॉट'' में लिखा है कि ''विभिन्न राजनीतिक दलों या राजनीतिक पहचान रखने वाले प्रमुख व्यक्तियों का आपसी समझौता गठबन्धन कहलाता है।'' गठबन्धन सरकार का निर्माण दो या दो से अधिक राजनीतिक दलों के निर्वाचित उम्मीदवारों के समूह तथा अन्य किसी दल के निर्वाचित उम्मीदवारों के समभवं से होती है। विलियम ए0 गैम्सन का कहना है कि गठबन्धन का निर्माण तभी सम्भव है जब संघर्ष और सामान्य हित दोनों साथ–साथ विद्यमान हो और दोनों साथ–साथ चुने जाने वाले मार्ग का निर्धारण करें।

संयुक्त सरकारे अथवा साक्षा सरकारों का अनुभव सभी संसदीय प्रणाली के देशों को रहा है। डेविड बटलर ने अपनी पुस्तक ''Governiong without a Majerity'' में 1900 से 1982 तक ब्रिटिश सरकारों के स्वरूप का विवेचन किया है, जिसमें वे बताते है कि इस अवधि के 53 प्रतिशत भाग में ही एक दल का स्पष्ट बहुमत रहा है। संयुक्त सरकारें अच्छी है या बुरी यह बहस का विषय हो सकता है। परन्तु सरकार का निर्णय इस प्रकार की सरकार के लिये है तब यह उचित ही होगो कि प्रतिनिधि सरकार को समन्वय से चलाये।

साधारणतया मिश्रित मंत्रिमंडल का गठन उन देशों में होता है जहाँ अनेक छोटे–छोटै दल हों और ऐसा कोई प्रभावशाली राजनीतिक दल न हो जो सदन में स्पस्ट बहुमत प्राप्त कर सके। इसका अर्थ हुआ कि मंत्रिमण्डल का स्वस्प दल–प्रणाली पर निर्भर करता है।

वस्तुतः विश्व के परिदृश्य पर देखा जाए तो फ्रांस को साझा सरकार या मिश्रित सरकार का घर कहा जा सकता है। पंचम गणतंत्र के संविधान के निर्माण से पहले फ्रांस में आये दिन सरकारें बनती और टूटती थी, इसलिए कि यह सरकारें अनेक राजनीतिक दलों को मिलाकर बनाया जाता था। और उसमें मदभेद उत्पन्न होने के बाद उसका हो जाता था। 1924–1931 के बीच लगभग आठ वर्षो से फ्रांस में 16 मंत्रिमण्डल का निर्माण और अन्त हुआ। ''यूरोप के अन्य देशों के भी साझा–सरकारों के उदाहरण मिलते है। 1931 में उत्पन्न हुए विश्व आर्थिक संकट का सामना करने के लिए भी इंग्लैण्ड में सर्वदलीय मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया गया था। फ्रांस और इंग्लैण्ड के अतिरिक्त जर्मनी, इटली, स्पेन आदि देशों में भी मिश्रित मंत्रिमण्डलों के निर्माण के उदाहरण मिलते है।

वस्तुतः गठबन्धत से आशय दो या दो से अधिक दलों द्वारा मिलकर गठित उस समूह से हैं जो किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्मिलित किया गया हो। गठबन्धन और अल्पमत सरकार को

समनार्थी नहीं समझाना चाहिए। जब दो या दो से अधिक दल संयुक्त रूप से सरकार का निर्माण करते है तो उसे गठबन्धन सरकार कहते है। गठबन्धन के सहयोगी प्रत्येक दल अलग–अलग अल्पमत में होते है, किन्तु सम्मिलित रूप से संसद में बहुत प्राप्त कर लेते है। इस प्रकार संसदीय नियमों के अनुसार सत्ता प्राप्ति का अधिकारी हो जाते है जैसे 1996 से श्री एच0डी0 देवगौड़ा के नेतृत्व वाली संयुक्त मोर्चा सरकार गोर्चा सरकार, 1997 में श्री गुजराल के नेतृत्व वाली संयुक्त मोर्चा सरकार,1998 और 1999 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली राजग सरकार तथा 2004 में डॉ0 मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली संप्रग सरकार। इसके विपरीत अल्पगत सरकार के केवल एक ही दल सत्तारूढ़ रहता है। किन्तु एक या एक से अधिक दल संसद में उसका बाहर से समर्थन करते है। और व्यवस्थापिका में उसका बहुमत बनाये रखते है। जैसे 1989 में श्री बी0पी0सिंह के नेतृत्व में जनता दल सरकार 1990में श्री चन्द्रशेखर के नेतृत्व में बनी सरकार और 1991में श्री पी0वी0 नरसिंहराव राव के नेतृत्व में बनी कांग्रेस सरकार इस तरह क सत्तारूढ़ दल की सरकार को अल्पमत सरकार रहते है।

सभी राजनीतिक दल चुनाव–पूर्व किसी न किसी राजनीतिक दल से गठबन्धन या समझौता करते है। स्पस्ट है कि यहाँ गठबन्धन और समझौता में भी अन्तर है। समझौता वस्तुतः गठबन्धन निर्माण की प्रारंभिक प्रक्रिया है। गठबन्धन की राजनीति अथवा सरकार मुख्य रूप से निम्न तीन कारणों से प्रारंभ होती है। जो अस्तित्व में आती है।

1. बहुदलीय व्यवस्था के अन्तर्गत संसद के निम्न सदन में मंत्रिपरिषद् गठित करने के लिए निश्चित बहुमत प्राप्त करने में किसी एक दल की असमर्थता।
2. द्विदलीय व्यवस्था के अन्तर्गत जब दलों में सन्तुलन हों और दो में से एक कोई एक किसी एक छोटे गुट के साथ मिलकर सत्ता प्राप्त चाहता हों,
3. राष्टीय आपात काल में जबकि सभी शाक्तियाँ सामान्य सुरक्षा की दृष्टि से एक ही दिशा में कार्य करने को तत्पर हों।

भारत में राज्यों अथवों केन्द्र में बनी गठबन्धन सरकारें मूलतः पहले कारण के चलते अस्तित्व में आई। संसदीय शासन की अपरिहार्यता, सरकार गठन के लिए निचले सदन में बहुमत की आवश्यकता पड़ने पर गठबन्धन की भावना को प्रेरित किया है। जहाँ तक भारत में संघीय सरकार का प्रश्न है, वहाँ भी गठबन्धन की राजनीति के पीछे लोकसभा में किसी एक दल को पूर्ण बहुमत न मिल पाना है।

वस्तुतः भारतीय राजनीति में केन्द्र और राज्यों दोनों ही स्तर पर कांग्रेस पार्टी का वर्चस्व रहा है और केन्द्र में काँग्रेस ही एक ऐसा राजनीतिक दल रहा है जिसने पूर्ण बहुमत के साथ सरकार बनाई। 1977 में बनी जनता पार्टी की सरकार को हम इस श्रेणी में शामिल नहीं कर सकेते, क्योंकि जनता पार्टी का जन्म स्वयं एक बहुत बड़े गठबन्धन के आधार पर हुआ था। किन्तु 1967 कें आम–चुनावों से ही कांग्रेस का यह वर्चसव टूटने लगा और क्षेत्रींय राजनीतिक दलों का राजनीति में प्रभाव बढ़ने लगा। इसके लिए स्वयं कांग्रेस की शक्ति के केन्द्रीयकरण और केन्द्र द्वारा राज्यों के मामलों में अधिकाधिक हस्तक्षेप की नीति उत्तरदायी है।

कांग्रेस के साथ ही राष्ट्रीय दलों के लिए जाति पर आधारित राजनीतिक दलों ने कम मुश्किलें नहीं खड़ी की है। बिहार में राष्ट्रीय जनता दल,उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी,सामाजवादी पार्टी के प्रभाव ने भी राष्ट्रीय दलों के एक दलीय बहुमत वाली सरकार के मार्ग में रोड़े अटकाये है और गठबन्धन धर्म के विकास को प्ररित किया है। यह सब सामाजिक न्याय के नाम पर संभव हो पाया है। किसी एक दल को लोकसभा में पूर्ण बहुमत न मिल पाने के कारण नित नये उगने वाले सिद्धांत विहीन

राजनीतिक दल भी बनते जा रहे है। स्वार्थी व महत्वांकाक्षाओं के कारण दलों में विखण्डन हो रहा है। और नये राजनीतिक दल अस्तित्व में आ रहे है। ये राजनीतिक दल मतों के विभाजन का खेल खेलकर राजनीति के वास्तविक खिलाड़ी के रूप में नही बल्कि खेल बिगाड़ने वाले की भूमिका में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे है।

आधुनिक युग का प्रतिनिधि लोकतंत्र का युग है। जिसमें जनता अपने प्रतिनिधियों कें माध्यम से भाग लेती है। किसी देश का लोकतंत्र विचारों की प्रतियोगिता और विकल्प की स्वतंत्रता पर आधारित होता है आज राजनीतिक दल जनमत को संगठित करने में प्रेरक शाक्ति का कार्य करते है।

आज किसी भी संसदीय लोकतंत्र में एक दल की प्रमुखता धीरे–धीरे समाप्त होते प्रतीत हो रहे है। आज राज्यों और केन्द्र में गठबन्धन व साक्षा सरकारों का बोल–बाला रहा है। यह एक जटिल समस्या है। आज भारत ही नहीं बल्कि यूरोपिय देशों में साझा सरकार या संविद सरकारों का दौर प्रारंभ हो गया है। उन देशों में जहाँ द्विदलीय–व्यवस्था है वहाँ गठबन्धन सरकारों की सम्भावना कम रहती है। आज फ्रांस, हॉलैण्ड, बेल्जियम, पश्चिमी जर्मनी, इटली, स्विट्जरलैण्ड, कनाडा, हालैण्ड, बेल्जिमय, पश्चिमी जर्मनी,इटली, स्विट्जरलैण्ड,कनाडा, आस्ट्रेलिया की तरह भारत में भी बहुदलीय व्यवस्था परिलक्षित होती है जिसके कारण आये दिन दलों में टूट–फूट होती रहती है जिससे अस्थिर सरकार या गठबन्धन सरकार की सम्भावना बनी रहती है। बहुदलीय व्यवस्था वाले कुछ अन्य दशों जैसे स्वीडेन, डेनमार्क में एक दलीय या साझा सरकार दोनो का ही गठन समय–समय पर होता रहा है। ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था में प्रचलित अभिसमय सरकार के गठन में सहायक सिद्ध होते है। वहा यदि किसी राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त नहीं होता तब साझा सरकार के स्थान पर सबसे बड़ा राजनीतिक दल अल्पमत सरकार बनाता है। इसका आधार यह है कि संदीय प्रणाली में सरकार को हाउस ऑफ कामन्स में विश्वास प्राप्त हो या उनके विरोधियों के पास बहुमत का समर्थन हों। गत शताब्दी में 1900–2000 तक ब्रिटेन में 26आम चुनाव हो चुके दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिल है। 1910, 1923, 1928, 1929 तथा 1974 के चुनाव में किसी को बहुमत नहीं मिला था,परन्तु इन सभी अवसरों पर अल्पमत सरकार ही रही न कि साझा सरकार। यूरोप का अन्य उदाहरण नीदरलैण्ड्स में भी सामान्य बहुमत प्राप्त दल की ही सरकार गठित की जाती है। परन्तु डेनमार्क में अल्पमत सरकार का गठन आम बात है। यूरोम में स्वीडन की स्थिति इसमें भिन्न है। स्वीडन में 1971ई0 में हुए संविधान–संशोधन के बाद सम्राट की भूमिका समाप्त कर दी गई है और यह अधिकार रिक्सडैश (संसद) के अध्यक्ष को दे दी गई है। चुनावी अस्पष्टता में 4 दिन बाद भीतर अध्यक्ष किसी राजनीतिक दल के पक्ष में प्रस्ताव रखता है जो आधे से अधिक सदस्यों द्वारा अमान्य करने पर ही अस्वीकृत किया जाता है, अथवा उसी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है, जिसे अन्य राजनीतिक दल समर्थन देते है।

अमेरिकी अर्थशास्त्री जेफरी सैक्स के अनुसार दो तीन राजनीतिक दलों की एक निश्चित कार्यक्रम के आधार पर बनने वाली गठबन्धन सरकार जर्मनी तथा फ्रांस जैसे देशों में काफी सफल रही है, परन्तु छः सात दलों कों मिलाकर बनने वाली साझा सरकार स्थायित्व तथा आर्थिक विकास में बाधा पहुँचाती है।

उदाहरण के लिए इटली को लिया जा सकता है जहाँ पिछले 50वर्षो में 55सरकारें गठित हुई है। फ्रांस में भी नये संविधान 1985 कें पूर्व सरकार की औसत आयु 9 महीने से अधिक कभी नहीं रही। एशियाई देशों में जापान, मलेशिया, तुर्की, इसराइल, श्रीलंका में साझा–सरकार समय–समय पर बनती

रही है। भारतीय महाद्वीप में भारत के अतिरिक्त नेपाल में राजशाही के अर्न्तगत 1990के बाद संसदीय पद्धति अपनायी गयी जहाँ गठबन्धन सरकारों की अस्थिरता का परीक्षण हों चुका है।

भारत में राजनीति एक ऐसे मोड़ पर आ गया है जिसमें एक दल की प्रमुखता समाप्त हो चुका है। बड़े–बड़े दल अपनी पहचान खोते जा रह है जिसे लोकतंत्र के लिए अच्छा संकेत नही माना जा सकता है। हमारा लोकतंत्र निश्चित एक ठोस आधार पर खड़ा है लेकिन इसक दो अंधेरे पक्ष भी है– प्रथम जो कभी वी0पी0 सिंह के सरकार के गिरते समय तो कभी अटल वाजपेयी के सरकार गिरते समय नजर आता है। द्वितीय किसी भी दल का स्पष्ट या पूर्ण बहुमत का प्राप्त न होना।

आधुनिक राजनीति प्रणालियों में लोकतांत्रिक शासन–प्रणाली को सबसे अच्छी और महत्वपूर्ण शासन प्रणाली माना जाता है। लोकतंत्र का दुनिया में एक सा स्वरूप नहीं है। देश–विदेश की परिस्थिति वहां की सामाजिक संरचनाओ,लोगों के आचार–व्यवहार आदि के द्वारा शासन प्रणाली का ढाँचा तैयार करती है।

सन्दर्भ सूची–

1. तिवारी, रजनी (2003), ''भारत में दलीय व्यवस्था और संसदीय लोकतंत्र, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,पृ047
2. जोन्स, मोरिश, 1971,''भारतीय शासन और राजनीति ''एच0 के0 छाबड़ा, पब्लिकेशन, सुरजीत दिल्ली, पृ0 268।
3. Mesquitar De Bueno (1975), "Strategy risk and perdonality in coaition polities: The case of India, Coubridge university press, London, p.662-663.
4. "An Alliance for coubined of distices, Parsons or states, without permanent in corporation itno one body" आक्सफोर्ड डिक्शनरी, द्वितीय संस्करण, आक्सफोर्ड, 1989, पृ0 389।
5. Sahni, NC., (1971), "Coalition Polities in India, New Academic Publishing Company, Page-18-20.
6. विलियम एच0 रिकर, (1968) ''द थ्योरी ऑ पोलिटिकल कोएलीशन, न्यू हैवेन, मेल यूनिवर्सिटी, प्रेस, पृ05
7. गैम्सन, ए0 विलियम, (1961), ''ए थ्योरी ऑफ कोमलीशन इन इण्डिया'', अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू, नई दिल्ली, पृ0153।
8. Butler, David, (1983), "Governing of without a majerity, "Collins Publiocaition, Londan, p-26.
9. सईद, एस0 एमस0,(2010),''भारतीय राजनीतिक
10. एडिटर, चीफ इडविन आर0 ए0 सेलिंगमैन, एसोसिशन एडीटर न्यूयार्क, 1963, पृ0 600–605
11. थामस, मैरी, (2001), ''पोलिटिकल पार्टीय इन इण्डिया'' लिवरल टाइम्स वाल्यूम, न0 1,पृ020

12. सिंह, डी0एन0, (2001), भारत में संसदीय लोकतंत्रः चुनौतियाँ एवं सम्भावनायें, मयंक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ027।

13. तिवारी, रजनी, (2003), भारत में दलीय–व्यवस्था और संसदीय लोकतंत्र'', अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ003

14. रजनी, तिवारी (2003), भारत में दलीय समस्या और संसदीय क्षेत्र, अर्जुन पब्लिकेशन, नई दिल्ली।